ऋग्वेद

(सायण-भाष्यावलम्बी सरल हिन्दी भावार्थ सहित)

द्वितीय-खण्ड



सम्पादक :

वेदमूर्ति तपोनिष्ठ

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

चारों वेद, १०८ उपनिषदें और षट् दर्शन के भाष्यकार
गायत्री महाविद्या के विशेषज्ञ तथा हिन्दी के
लगभग १५० ग्रन्थों के रचयिता



प्रकाशक :

संस्कृति संस्थान, बरेली

(उत्तर प्रदेश)

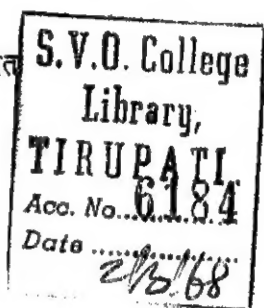
तृतीय संस्करण] १९६५ [मूल्य ६ रुपया

प्रकाशक :
संस्कृति संस्थान
बरेली (उ० प्र)

★

सम्पादक :
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

★



★

संशोधित संस्करण
१६६५ ई०

★

मुद्रक :
जगदीश प्रसाद भरतिया
बम्बई भूषण प्रेस, मथुरा

★

मूल्य
६) रुपया

२० सूक्त

(ऋषि—कौशिको गाथी । देवता—विश्वेदेवा: । छन्द—त्रिष्टुप्)

अग्निमुषसमश्विना दधिक्रां व्युष्टिषु हवते वह्निरुक्थैः ।
सुज्योतिषो नः शृण्वन्तु देवाः सजोषसो अध्वरं वावशानाः ॥१॥
अग्ने त्री ते वाजिना त्री षधस्था तिस्रस्ते जिह्वा ऋतजात पूर्वीः ।
तिस्र उ ते तन्वो देववातास्ताभिर्नः पाहि गिरो अप्रयुच्छन् ॥२॥
अग्ने भूरीणि तव जातवेदो देव स्वधावोऽमृतस्य नाम ।
याश्च माया मायिनां विश्वमिन्व त्वे पूर्वीः सन्दधुः पृष्टबन्धो ॥३॥
अग्निर्नेता भग इव क्षितीनां दैवीनां देव ऋतुपा ऋतावा ।
स वृत्रहा सनहो विश्ववेदाः पर्षद्विश्वाति दुरिता गृणन्तम् ॥४॥
दधिक्रामग्निमुषसं च देवीं बृहस्पतिं सवितारं च देवम् ।
अश्विना मित्रावरुणा भगं च वसून्रुद्राँ आदित्याँ इह हुवे ॥५॥२०

वे हविवाहक अग्निदेव उषाकाल में, अन्धकार को दूर करते हुए उषा अश्विद्वय और दधिका नामक देवों को ऋचाओं से आहूत करते हैं। देवगण हमारे यज्ञ में आने की कामना करते हुए उन ऋचाओं को श्रवण करें ॥१॥ हे अग्ने ! तुम्हारा तीन प्रकार का अन्न तथा तीन प्रकार का ही वास-स्थान है। तुम यज्ञ का सम्पादन करने वाले हो। देवताओं को तृप्त करने वाली तीन जिह्वाओं से युक्त हो। तुम्हारे शरीर के तीन रूप हैं, जिनकी देवता कामना किया करते हैं। तुम आलस्य से रहित हुए अपने तीनों रूपों से हमारे स्तोत्र के रक्षक बनो ॥ २ ॥ हे अग्ने ! तुम प्रकट होते ही ज्ञानी, प्रकाशमान, अमर और अन्नयुक्त हो। देवताओं ने तुमको तेज प्रदान किया है। तुम विश्व को तृप्त करने वाले, अभीष्ट फल देने वाले हो। देवताओं ने तुमको जिन शक्तियों से युक्त किया है, वे शक्तियाँ सदा तुममें विद्यमान रहती है ॥३॥ ऋतुओं को प्रकट करने वाले आदित्य के समान विश्व के नियंता, सत्य कर्मों में प्रवृत, वृत्र-संहारक, पुरातन, सर्वज्ञाता और प्रकाशमान् अग्नि-

देव, स्तुति करने वाले को सब पापों से पार करें ॥४॥ दधिक्रा, अग्नि, उषा, बृहस्पति, तेजस्वी सूर्य, दोनों अश्विनी कुमार, भग, वसु, रुद्र और सभी आदित्यों का इस यज्ञानुष्ठान में आह्वान करता हूँ ॥५॥ [२०]

२१ सूक्त

(ऋषि—कौशिको गाथी। देवता—अग्निः। छन्द—त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्, बृहती)

इमं नो यज्ञममृतेषु धेहीमा हव्या जातवेदो जुषस्व ।
स्तोकानामग्ने मेदसो घृतस्य होतः प्राशान प्रथमो निषद्य ॥१॥
घृतवन्तः पावक ते स्तोकाः श्चोतन्ति मेदसः ।
स्वधर्मन्देववीतये श्रेष्ठं नो धेहि वार्यम् ॥२॥
तुभ्यं स्तोका घृतश्चुतोऽग्ने विप्राय सन्त्य ।
ऋषिः श्रेष्ठः समिध्यसे यज्ञस्य प्राविता भव ॥३॥
तुभ्यं श्चोतन्त्यध्रिगो शचीवः स्तोकासो अग्ने मेदसो घृतस्य ।
कविशस्तो बृहता भानुनागा हव्या जुषस्व मेधिर ॥४॥
ओजिष्ठं ते मध्यतो मेद उद्भृतं प्र ते वयं ददामहे ।
श्चोतन्ति ते वसो स्तोका अधि त्वचि प्रति तान्देवशो विहि ॥५॥२१

हे अग्ने ! हमारे इस यज्ञ को देवों के प्रति पहुँचाओ। हमारी हवियों का भक्षण करो। तुम होता रूप हो। तुम हमारे यज्ञ में बैठ कर प्राणवान घृत का भक्षण करो ॥१॥ हे अग्ने ! तुम पवित्र हो। इस यज्ञ में तुम्हारे तथा देवताओं के पान के निमित्त घृत की बूदें टपक रही है। तुम हमको वरण करने योग्य उत्तम धन प्रदान करो ॥२॥ हे अग्ने ! तुम मेधावी और यजन योग्य हो। घृत की टपकती हुई सभी बूदें तुम्हारे लिए हैं। तुम ऋषियों में श्रेष्ठ हो। तुम स्वयं प्रदीप्त होते हो। हमारे यज्ञ की रक्षा करो ॥३॥ हे अग्निदेव ! तुम सदा गतिमान रहने वाले सर्वशक्ति सम्पन्न हो। स्नेह रूप हवि की बूदें तुमको सींचती हैं। मेधावीजन तुम्हारा स्तवन करते हैं। तुम महान् तेजस्वी एवं प्रज्ञावान हो। हमारी हवियों को ग्रहण करो ॥४॥ हे

अग्ने ! हम अत्यन्त साररूप स्नेह तुम्हें प्रदान करेंगे। हे निवासदाता अग्निदेव ! हवि की जो बूंदें तुम्हारे लिए गिरती हैं, उनमें से बाँटकर देवताओं को पहुँचाओ ॥५॥ [२१]

२२ सूक्त

(ऋषि—कौशिको गाथी। देवता-पुरीष्या अग्नयः। छन्द-त्रिष्टुप्, पंक्तिः, अनुष्टुप्)

अयं सो अग्निर्यस्मिन्त्सोममिन्द्रः सुतं दधे जठरे वावशानः।
सहस्रिणं वाजमत्यं न सप्तिं ससवान्त्सन्त्स्तूयसे जातवेदः ॥१॥
अग्ने यत्ते दिवि वर्चः पृथिव्यां यदोषधीष्वप्स्वा यजत्र।
येनान्तरिक्षमुर्वाततन्थ त्वेषः स भानुरर्णवो नृचक्षाः ॥२॥
अग्ने दिवो अर्णमच्छा जिगास्यच्छा देवाँ ऊचिषे धिष्ण्या ये।
या रोचने परस्तात्सूर्यस्य याश्चावस्तादुपतिष्ठन्त आपः ॥३॥
पुरीष्यासो अग्नयः प्रावणेभिः सजोषसः।
जुषन्तां यज्ञमद्रुहोऽनमीवा इषो महीः ॥४॥
इळामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥५॥२२

सोम की कामना करने वाले इन्द्र ने निचोड़े हुए सोम को जिस अग्नि रूप उदर में रखा था, वह यह अग्नि ही हैं। हे अग्निदेव ! तुम सर्वज्ञ हो। तुम उस अश्व के समान वेगवती हवि का सेवन करो। विश्व के सब प्राणी तुम्हारा स्तवन करते हैं ॥१॥ हे अग्ने ! तुम यजन योग्य हो। तुम्हारा जो तेज प्रकाश, पृथिवी, औषधि और जल में व्याप्त है तथा तुम्हारे जिस तेज के द्वारा अन्तरिक्ष भी व्याप्त हुआ है, वह तेज समुद्र के समान गंभीर, सूर्य के समान प्रकाशित एवं मनुष्यों के लिए अद्भुत है ॥२॥ हे अग्ने ! तुम आकाशीय जल के समान प्रवाहमान हो। प्राण-भूत देवगण को संगठित करने वाले हो। सूर्य के ऊपर के लोक में अथवा अन्तरिक्ष में जो जल है, उसे प्रेरित करने वाले हो ॥३॥ हे अग्ने ! युद्ध क्षेत्र में हथियारों की संगति करते हुए रणस्थल को प्राप्त होओ। तुम ऐसा अन्न हमें दो जिसके बल से

हम शत्रुओं को दबाने वाले बनें तथा निरोग रह सकें ॥४॥ हे अग्ने ! स्तुति करने वाले को कर्मों की प्रेरक और गवादि धन से युक्त भूमि तुम देते हो । हमारे वंश को बढ़ाने वाला, संतानोत्पादन में समर्थ पुत्र हमको दो । यह अनुग्रह हमारे प्रति होना चाहिये ॥५॥ [२२]

२३ सूक्त

(ऋषि—देवश्रवा देववातश्च भारतौ । देवता— अग्निः । छन्द—त्रिष्टुप्)

निर्मथितः सुधित आ सधस्थे युवा कविरध्वरस्य प्रणेता ।
जूर्यत्स्वग्निरजरो वनेष्वत्रा दधे अमृतं जातवेदाः ॥१॥
अमन्थिष्टां भारता रेवदग्निं देवश्रवा देववातः सुदक्षम् ।
अग्ने वि पश्य बृहताभि रायेषां नो नेता भवतादनु द्यून् ॥२॥
दश क्षिपः पूर्व्यं सीमजीजनन्त्सुजातं मातृषु प्रियम् ।
अग्निं स्तुहि दैववातं देवश्रवो यो जनानामसद्वशी ॥३॥
नि त्वा दधे वर आ पृथिव्या इळायास्पदे सुदिनत्वे अह्नाम् ।
दृषद्वत्यां मानुष आपयायां सरस्वत्यां रेवदग्ने दिदीहि ॥४॥
इळामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥५॥२३

घर्षण से उत्पन्न, यजमान के गृह में स्थापित, सर्वज्ञाता, यज्ञ कर्म के सम्पन्नकर्त्ता, स्वयं प्रज्ञावान्, घोर वन का विनाश करने वाले अग्निदेव जरा-रहित हैं । वे इस यज्ञ में अमृत धारण करने वाले हैं ॥१॥ भरत के पुत्रों ने इन धन-सम्पन्न अग्निदेव को अरणि-मंथन द्वारा प्रकट किया । हे अग्ने ! बहुत से धन सहित तुम हमारी ओर देखो और हमको नित्यप्रति अन्न प्राप्त कराओ ॥२॥ यह प्राचीन, रमणीय अग्निदेव दशों अँगुलियों द्वारा उत्पन्न होते हैं । हे देवश्रवा ! अरिण से उत्पन्न दिव्य वायु से प्रकट हुए अग्निदेव का स्तवन करो । वे अग्नि स्तुति करने वालों के ही वशीभूत होते हैं ॥३॥ हे अग्ने ! श्रेष्ठ दिन की प्राप्ति के निमित्त हम इस पृथिवी के पवित्र स्थान में तुम्हें प्रतिष्ठित करते हैं । तुम दृषद्वती, आपया और सरस्वती इन तीनों

नदियों के निकट वास करने वालों के घरों में धन सहित प्रदीप्त होओ ॥४॥ हे अग्ने ! तुम स्तुति करने वाले को कर्मयुक्त तथा गवादियुक्त पृथिवी दो। हमारे वंश को बढ़ाने वाला, सन्तानोत्पादन में समर्थ पुत्र हमको दो। यह अनुग्रह हम पर अवश्य करो ॥५॥ [२३]

२४ सूक्त

(ऋषि—विश्वामित्रः। देवता—अग्निः। छन्द-अनुष्टुप्, गायत्री।)

अग्ने सहस्व पृतना अभिमातीरपास्य।
दुष्टरस्तरन्नरातीर्वर्चो धा यज्ञवाहसे ॥१॥
अग्न इळा समिध्यसे वीतिहोत्रो अमर्त्यः। जुषस्व सू नो अध्वरम् ॥२॥
अग्ने द्युम्नेन जागृवे सहसः सूनवाहुत। एदं बर्हिः सदो मम ॥३॥
अग्ने विश्वेभिरग्निभिर्देवेभिर्महया गिरः। यज्ञेषु य उ चायवः ॥४॥
अग्ने दा दाशुषे रयिं वीरवन्तं परीणसम्।
शिशीहि नः सूनुमतः ॥५॥२४

हे अग्निदेव ! इस शत्रु-सेना को हराओ। विघ्न कराने वालों को भगा दो। तुम्हें कोई पराजित नहीं कर सकता। तुम शत्रुओं को हराकर अपने यजमान को अन्न प्रदान करो ॥ १ ॥ हे अग्ने ! तुम यज्ञ में प्रीति रखते हो। तुम मरण-रहित हो। तुम उत्तर वेदी पर प्रज्वलित होते हो। तुम हमारे यज्ञ को भले प्रकार से सम्पादन करो ॥२॥ हे अग्ने ! तुम अपने तेज से चैतन्य होते हो। तुम बल के पुत्र का मैं आह्वान करता हूँ। मेरे कुश पर विराजमान होओ ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! तुम अपनी पूजा करने वालों के यज्ञ में सभी प्रदीप्त अग्नियों के सहित स्तुतियों की मर्यादा को सुरक्षित करो ॥४॥ हे अग्ने ! तुम हवि देने वाले को पौरुषयुक्त धन प्रदान करो। हम सन्तान युक्त हैं। हमारी वृद्धि करो ॥५॥ [२४]

२५ सूक्त

(ऋषि—विश्वामित्रः । देवता—अग्निः, इन्द्राग्नी । छन्द—अनुष्टुप् त्रिष्टुप्)

अग्ने दिवः सूनुरसि प्रचेतास्तना पृथिव्या उत विश्ववेदाः ।
ऋधग्देवाँ इह यजा चिकित्वः ॥१॥
अग्निः सनोति वीर्याणि विद्वान्त्सनोति वाजममृताय भूषन् ।
स नो देवां एह वहा पुरुक्षो ॥२॥
अग्निर्द्यावापृथिवी विश्वजन्ये आ भाति देवी अमृते अमूरः ।
क्षयन्वाजैः पुरुश्चन्द्रो नमोभिः ॥३॥
अग्न इन्द्रश्च दाशुषो दुरोणे सुतावतो यज्ञमिहोप यातम् ।
अमर्धन्ता सोमपेयाय देवा ॥४॥
अग्ने अपां समिध्यसे दुरोणे नित्यः सूनो सहसो जातवेदः ।
सधस्थानि महयमान ऊती ॥५॥२५

हे अग्ने ! तुम अद्भुत, सर्वज्ञाता, आकाश-पृथिवी के पुत्र तथा चैतन्यतायुक्त हो । तुम इस देव-यज्ञ में पृथक्-पृथक् यजन कर्म करो ॥१॥ अग्नि मेधावी हैं, सामर्थ्यदाता हैं और स्वयं सुसज्जित होकर देवताओं को हवि पहुँचाते हैं । उनका अन्न विविध प्रकार का है । हे अग्ने ! देवगण को इस यज्ञ में ले आओ ॥२॥ सर्वज्ञानी, संसार के स्वामी, प्रदीप्तवान्, हवि और अन्न से सम्पन्न अग्निदेव, विश्व-माता तेजस्विनी मरण-रहित आकाश पृथिवी को प्रकाशमान बनाते हैं ॥३॥ हे अग्ने ! तुम इन्द्र सहित यज्ञ रक्षा करते हुए सोम छानकर अर्पण करने वाले के इस घर में सोम पीने निमित्त पधारो ॥४॥ हे बलोत्पन्न अग्निदेव ! तुम सर्वज्ञानी और नित्य हो । तुम अपने आश्रय में प्राणियों को सुशोभित करते हुए जल के आश्रय स्थान अन्तरिक्ष में प्रतिष्ठित होते हो ॥५॥ [२

२६ सूक्त

(ऋषि—विश्वामित्रः, आत्मा । देवता—वैश्वानरः, मरुत आदि ।
छन्द—जगती, त्रिष्टुप्)

वैश्वानरं मनसाग्निं निचाय्या हविष्मंतो अनुषत्यं स्वर्विदम् ।
सुदानुं देवं रथिरं वसूयवो गीर्भी रण्वं कुशिकासो हवामहे ॥१॥
तं शुभ्रमग्निमवसे हवामहे वैश्वानरं मातरिश्वानमुक्थ्यम् ।
बृहस्पतिं मनुषो देवतातये विप्रं श्रोतारमतिथिं रघुष्यदम् ॥२॥
अश्वो न क्रन्दञ्जनिभिः समिध्यते वैश्वानरः कुशिकेभिर्युगेयुगे ।
स नो अग्निः सुवीर्यं स्वश्व्यं दधातु रत्नममृतेषु जागृविः ॥३॥
प्र यन्तु वाजास्तविषीभिरग्नयः शुभे सम्मिश्लाः पृषतीरयुक्षत ।
बृहदुक्षो मरुतो विश्ववेदसः प्र वेपयंति पर्वताँ अदाभ्याः ॥४॥
अग्निश्रियो मरुतो विश्वकृष्टय आ त्वेषमुग्रमव ईमहे वयम् ।
ते स्वानिनो रुद्रिया वर्षनिर्णिजः सिंहा न हेषक्रतवः सुदानवः ॥५॥ २६

हम कौशिक जन धन की इच्छा से हवि एकत्रित करते हुए वैश्वानर अग्नि का आह्वान करते हैं। वे सत्यपथगामी स्वर्ग के सम्बन्ध में जानने वाले हैं। यश का फल देने वाले हैं। वे अपने रथ से यज्ञ-स्थान को प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥ उन उज्ज्वल वर्ण वाले वैश्वानर, विद्युतरूप, यज्ञ के स्वामी, प्रज्ञावान्, अतिथि शीघ्र कार्यकारी अग्निदेव को यजमान के यज्ञ में आश्रय प्राप्त करने के निमित्त आहूत करते हैं ॥ ३ ॥ उच्च शब्द करने वाले अश्व का बच्चा जैसे अपनी माता के आश्रय में वृद्धि प्राप्त करता है, वैसे ही कौशिकों के द्वारा वैश्वानर अग्नि की वृद्धि की जाती है। हे अग्ने ! तुम देवताओं में चैतन्य हो। हमको श्रेष्ठ अश्व, पौरुष और महान् धन दो ॥ ३ ॥ अग्निरूप अश्व, बलवान् मरुद्गण से संयुक्त हुए पृषती वाहनों को मिलायें। सर्वज्ञाता, किसी के द्वारा भी हिंसित न होने वाले मरुद्गण जलराशियुक्त तथा पर्वत के समान मेघ को कम्पायमान करते हैं ॥४॥ अग्नि के आश्रित मरुत संसार को आकर्षित करते हैं। हम उन्हीं मरुतों के उत्कृष्ट आश्रय की याचना करते

हैं। वे वर्षा रूप वाले, सिंह के समान गर्जनशील मरुद्गण जलदाता के रूप में प्रसिद्ध हैं ॥ ५ ॥ [२६]

व्रातंव्रातं गणंगणं सुशस्तिभिरग्नेर्भामं मरुतामोज ईमहे ।
पृषदश्वासो अनवभ्रराधसो गंतारो यज्ञं विदथेषु धीराः ॥६॥
अग्निरस्मि जन्मना जातवेदा घृतं मे चक्षुरमृतं म आसन् ।
अर्कस्त्रिधातू रजसो विमानोऽजस्रो घर्मो हविरस्मि नाम ॥७॥
त्रिभिः पवित्रैरपुपोद्ध्य र्कं हृदा मतिं ज्योतिरनु प्रजानन् ।
वर्षिष्ठं रत्नमकृत स्वधाभिरादिद् द्यावापृथिवी पर्यपश्यत् ॥८॥
शतधारमुत्समक्षीयमाणं विपश्चितं पितरं वक्त्वानाम् ।
मेळि मदन्तं पित्रोरुपस्थे तं रोदसी पिपृतं सत्यवाचम् ॥९।२७

बहुत से स्तोत्रों द्वारा हम अग्नि के तेज और मरुद्गण के बल की कामना करते हैं। वे बिन्दु चिह्न वाले अश्व युक्त मरुद्गण, नष्ट न होने वाले धन के सहित हवि के निमित्त यज्ञ को प्राप्त होते हैं ॥६॥ मैं अग्नि जन्म से ही मेधावी हूँ। अपने रूप को स्वयं प्रकट करता हूँ। प्रकाश मेरा नेत्र है। मेरी जिह्वा में अमृत है। मैं त्रिविध प्राणयुक्त एवं अन्तरिक्ष का मापक हूँ। मेरे ताप का कभी क्षय नहीं होता। मैं ही साक्षात् हवि हूँ ॥ ७ ॥ सुन्दर ज्योति को हृदय से जानने वाले अग्निदेव ने अग्नि, वायु और सूर्य रूप धारण कर अपने को समर्थ बनाया। अग्नि ने इन रूपों से प्रकट होकर आकाश-पृथिवी के दर्शन किये थे ॥ ८ ॥ हे आकाश-पृथिवी ! सौ धार वाले मेघ की तरह अक्षुण्ण प्रवाहयुक्त मेधावी, पालनकर्त्ता, वाक्यों को मिलाकर बताने वाले माता-पिता की गोद में प्रसन्न सत्य स्वरूप अग्नि को पूर्ण करो ॥९॥ [२७]

२७ सूक्त

(ऋषि—विश्वामित्रः । देवता—ऋतवोऽग्निर्वा अग्नि । छन्द–गायत्री)

प्रवो वाजा अभिद्यवो हविष्मंतो घृताच्या । देवाञ्जिगाति सुम्नयुः ॥१
ईळे अग्निं विपश्चितं गिरा यज्ञस्य साधनम् ।
श्रुष्टीवानं धितावानम् ॥२

अग्ने शकेम ते वयं यमं देवस्य वाजिनः । अति द्वेषांसि तरेम ॥३
समिध्यमानो अध्वरेग्निः पावक ईड्यः । शोचिष्केशस्तमीमहे ॥४
पृथुपाजा अमर्त्यो घृतनिर्णिक्स्वाहुतः । अग्निर्यज्ञस्य हव्यवाट् ॥५।२८

हे ऋत्विजो ! स्रुकयुक्त हवि वाले देवता, मास, अर्द्धमास आदि यजमान के निमित्त सुखी करने के इच्छुक हैं। वह यजमान देवताओं की कृपा प्राप्त करता है ॥ १ ॥ यज्ञ सम्पन्नकर्त्ता, प्रज्ञावान्, ऐश्वर्यवान्, वेगशाली अग्निदेव को मैं स्तोत्रों सहित पूजता हूँ ॥ २ ॥ हे अग्ने ! तुम प्रकाशमान् हो । हव्य तैयार कर हम तुम्हारी सेवा करेंगे और पाप से बच सकेंगे ॥ ३ ॥ यज्ञ-काल में प्रकट होने वाले, ज्वालायुक्त केश वाले, पवित्रकर्त्ता पूज्य, अग्नि-देव के समीप उपस्थित होकर इच्छित फल मांगते हैं ॥ ४ ॥ उत्पन्न तेज से युक्त, अमर, घृत के शुद्ध करने वाले और समान रूप से पूजा किए गए अग्नि-देव यज्ञ के हवि को वहन करें ॥ ५ ॥

तं सबाधो यतस्रुच इत्था धिया यज्ञवन्तः । आ चक्रुरग्निमूतये ॥६
होता देवो अमर्त्यः पुरस्तादेति मायया । विदथानि प्रचोदयन् ॥७
वाजी वाजेषु धीयतेऽध्वरेषु प्र णीयते । विप्रो यज्ञस्य साधनः ॥८
धिया चक्रे वरेण्यो भूतानां गर्भमा दधे । दक्षस्य पितरं तना ॥९
नि त्वा दधे वरेण्यं दक्षस्येळा सहस्कृत ।
अग्ने सुदीतिमुशिजम् ॥१०।२९

यज्ञ में उपस्थित विघ्नों को नष्ट करने वाले, हवियुक्त ऋत्विजों ने स्रुक को उठाकर आश्रय के निमित्त स्तोत्रों द्वारा अग्निदेव की पूजा करते हुए बढ़ाया ॥ ६ ॥ यज्ञ-सम्पादक, मरण-रहित, प्रकाशयुक्त अग्निदेव यज्ञा-नुष्ठान में सबको प्रेरणा देते हुए, सहयोगपूर्वक यज्ञ में अग्रणि बनते हैं ॥७॥ अग्नि शक्तिशाली हैं। वे युद्ध में सब से आगे स्थान ग्रहण करते हैं। यज्ञ के समय अपने स्थान पर प्रतिष्ठित होते हैं। वे यज्ञ कार्यों के सम्पादनकर्त्ता और प्रज्ञावान् हैं ॥८॥ कर्मों के द्वारा वरण करने योग्य, भूतों के कारण रूप, पिता तुल्य अग्निदेव को दक्ष-पुत्री (पृथिवी) धारण करती है ॥ ९ ॥

हे बलोत्पन्न अग्निदेव ! तुम श्रेष्ठ प्रकाश वाले, हवियों की कामना वाले और वरण करने योग्य हो। तुम्हें दक्ष-पुत्री इला धारण करती है ॥१० [२६]

अग्निं यन्तुरमप्तुरमृतस्य योगे वनुषः । विप्रा वाजैः समिन्धते ॥११
ऊर्जो नपातमध्वरे दीदिवांसमुप द्यवि । अग्निमीळे कविक्रतुम् ॥१२
ईळेन्यो नमस्यस्तिरस्तमांसि दर्शतः । समग्निरिध्यते वृषा ॥१३
वृषो अग्निः समिध्यतेऽश्वो न देववाहनः । तं हविष्मंत ईळते ॥१४
वृषणं त्वा वयं वृषन्वृषणः समिधीमहि ।
अग्ने दीद्यतं बृहत् ॥१५।३०

विश्व के नियामक और जल को प्रेरित करने वाले अग्नि को यज्ञ कार्य सम्पन्न करने के निमित्त ज्ञानी जन हवि द्वारा भले प्रकार प्रदीप्त करते हैं ।११। मनुष्यों को अन्न से विहीन न होने देने वाले, अन्तरिक्ष के निकट प्रकाशमान अग्निदेव का मैं स्तवन करता हूँ ॥ १२ ॥ वे अग्नि नमस्कार करने योग्य, पूज्य, दर्शनीय तथा कामनाओं की वर्षा करने वाले हैं । वे प्रज्वलित होते ही अँधेरे को नष्ट करते हैं ॥ १३ ॥ घोड़े के समान हवि वहन करने वाले, कामनाओं के वर्षक अग्निदेव प्रज्वलित होते हैं । मैं उन अग्नि का पूजन करता हूँ ॥ १४ ॥ हे अग्ने ! तुम कामनाओं की वर्षा करने वाले हो । हम घृतादि सींचते हैं, तुम जल सींचते हो । हम तुम्हें प्रदीप्त करते हैं । तुम प्रकाशमान और महान् हो ॥ १५ ॥ [३०]

२८ सूक्त

(ऋषि–विश्वामित्रः । देवता–अग्निः । छन्द—गायत्री, त्रिष्टुप्, उष्णिक् जगती)

अग्ने जुषस्व नो हविः पुरोळाशं जातवेदः । प्रातःसावे धियावसो ॥१
पुरोळा अग्ने पचतस्तुभ्यं वा घा परिष्कृतः । तं जुषस्व यविष्ठ्य ॥२
अग्ने वीहि पुरोळाशमाहुतं तिरोअह्न्यम् ।
सहसः सूनुरस्यध्वरे हितः ॥३

माध्यन्दिने सविने जातवेदः पुरोळाशमिह कवे जुषस्व ।
अग्ने यह्वस्य तव भागधेयं न प्र मिनन्ति विदथेषु धीराः ॥४॥
अग्ने तृतीये सवने हि कानिषः पुरोळाशं सहसः सूनवाहुतम् ।
अथा देवेष्यध्वरं विपन्यया धा रत्नवंतममृतेषु जागृविम् ॥५॥
अग्ने वृधान आहुतिं पुरोळाशं जातवेदः ।
जुषस्व तिरोअह्न्यम् ॥६॥३

हे अग्ने ! तुम जन्म से ही दीप्तियुक्त हो। तुम्हारे स्तोत्र से ध मिलता है। तुम हमारे पुरोडाश और हव्य का प्रातः सवन में सेव करो ॥ १ ॥ हे अग्ने ! तुम अत्यन्त युवा हो।। तुम्हारे निमित्त ही पुरोडा पक्व किया और सिद्ध किया गया है। उसका सेवन करो ॥ २ ॥ हे अग्ने उत्तम प्रकार से दिन के अन्त में दिये गये पुरोडाश का सेवन करो। तुम ब के पुत्र हो। यज्ञ कार्य में लगो ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! तुम विज्ञानी हो। मध सवन में पुरोडाश ग्रहण करो। अध्वर्युगण तुम्हारे यज्ञ भाग को नष्ट नह करते ॥ ३ ॥ हे बलोत्पन्न अग्निदेव ! तुम तीसरे सवन में दिए जाने वा पुरोडाश की कामना करो। फिर इस ऐश्वर्यवान्, अमर, चैतन्य सोम क देवगण के निकट स्तुतिपूर्वक प्रतिष्ठित करो ॥ ५ ॥ हे विज्ञानी अग्निदेव तुम पुरोडाश रूप आहुति को दिवस के अन्त में ग्रहण करो ॥ ६ ॥ [३१

२६ सूक्त

(ऋषि—विश्वामित्रः । देवता—अग्निः । छन्द—अनुष्टुप्, पंक्तिः, त्रिष्टुप्, जगती)

अस्तीदमधि मन्थनमस्ति प्रजननं कृतम् ।
एतां विश्पत्नीमा भराग्निं मन्थाम पूर्वथा ॥
अरण्योर्निहितो जातवेदा गर्भ इव सुधितो गर्भिणीषु ।
दिवेदिव ईड्यो जागृवद्भिर्हविष्मद्भिर्मनुष्येभिरग्निः ॥

उत्तानायामव भरा चिकित्वान्त्सद्यः प्रवीता वृषणं जजान ।
अरुषस्तूपो रुशदस्य पाज इळायास्पुत्रो वयुनेऽजनिष्ट ॥३॥
इळायास्त्वा पदे वयं नाभा पृथिव्या अधि ।
जातवेदो नि धीमह्यग्ने हव्याय वोळ्हवे ॥४॥
मन्थता नरः कविमद्वयन्तं प्रचेतसममृतं सुप्रतीकम् ।
यज्ञस्य केतुं प्रथमं पुरस्तादग्निं नरो जनयता सुशेवम् ॥५॥३२

अरणि संसार की रक्षा में समर्थ है, उसे लाओ। इसी के मं
द्वारा अग्नि की उत्पत्ति होती है। पूर्वकाल के समान हम अग्नि को मं
द्वारा प्रकट करेंगे ॥ १ ॥ अरणियों में अग्निदेव गर्भवती स्त्री के गर्भ
समान स्थापित हैं। वे अपने कर्म में सदा तत्पर रहते हैं। उन हविर्यु
अग्नि को मनुष्य नित्य-प्रति पूजते हैं ॥ २ ॥ हे ज्ञानवान् अध्वर्युओ ! ऊ
मुख वाली अरणि पर नीचे मुख वाली अरणि रखो। तत्काल गर्भ धार
अरणि ने कामनाओं की वर्षा करने वाले अग्नि को प्रकट किया। उस अग्नि
दाहक गुण था। उत्तम प्रकाश वाले इला-पुत्र अग्नि अरणि द्वारा उत्प
हुए ॥ ३ ॥ हे विज्ञानी अग्नि देव ! हम तुम्हें पृथिवी की नाभि रूप उस
वेदी में हवि-वहन करने के निमित्त प्रतिष्ठित करते हैं ॥ ४ ॥ हे अध्वर्युओ
श्रेष्ठ ज्ञानी, अविनाशी, कवि, प्रदीप्तियुक्त देह वाली अग्नि को अरणि मंथ
से प्रकट करो। तुम यज्ञ कर्म में मनुष्य का नेतृत्व करने वाले हो। जो अग्नि
यज्ञ-सूचक, सुख देने वाले, प्रथम पूज्य हैं, उन्हें प्रारम्भ में ही प्रकट
करो ॥ ५ ॥
[३२

यदी मंथन्ति बाहुभिर्वि रोचतेऽश्वो न वाज्यरुषो वनेष्वा ।
चित्रो न यामन्नश्विनोरनिवृतः परि वृणक्त्यश्मनस्तृणा दहन् ॥६॥
जातो अग्नी रोचते चेकितानो वाजी विप्रः कविशस्तः सुदानुः ।
यं देवास ईड्यं विश्वविदं हव्यवाहमदधुरध्वरेषु ॥७॥
सीद होतः स्व उ लोके चिकित्वान्त्सादया यज्ञं सुकृतस्य योनौ ।
देवावीर्देवान्हविषा यजास्यग्ने बृहद्यजमाने वयो धाः ॥८॥

कृणोत धूमं वृषणं सखायोऽस्रेधन्त इतन वाजमच्छ ।
अयमग्निः पृतनाषाट् सुवीरो येन देवासो असहन्त दस्यून् ।।९।।
अयं ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातो अरोचथा ।
तं जानन्नग्न आ सीदाथा नो वर्धया गिरः ।।१०।।३३

हाथों द्वारा अरणि मंथन करने पर काष्ठ द्वय से वह अग्नि अश्व के समान शोभायमान तथा अश्विनीकुमारों के रथ के समान द्रुतगामी होकर सुशोभित होते हैं। उनके मार्ग को रोकने की सामर्थ्य किसी में नहीं है। वे अग्नि ऊपले और फूंस को जला कर उस स्थान को त्याग देते हैं ।। ६ ।। अग्नि उत्पन्न होते ही अपने कर्म में विज्ञ होते हैं। वे सर्व कर्मों के ज्ञाता तथा तेजस्वी हैं। अतः ज्ञानीजन उनका स्तवन करते हैं। वह कर्मों का फल देते हुए सुशोभित होते हैं। उन पूज्य और सर्वज्ञ अग्निदेव को देवताओं ने यज्ञ-कर्म में हवि वहन करने वाला नियुक्त किया ।। ७ ।। हे अग्ने ! तुम गृह सम्पादक हो। अपने स्थान पर विराजमान होओ। तुम सब को जानने वाले हो। यजमान को दिव्यलोक प्राप्त कराओ। तुम देवताओं की रक्षा करने वाले हो। हवि द्वारा देवताओं की पूजा करो और मुझ यज्ञकर्त्ता को इच्छित अन्न दो ।। ८ ।। हे अध्वर्युओं ! तुम कामनाओं की वर्षा करने वाले धूम को उत्पन्न करो उससे बलवान होकर युद्ध में पहुँचो। अग्नि देव वीरों में श्रेष्ठ हैं। वे शत्रु-सेना के विजेता हैं। देवताओं ने उन्हीं की सहायता से दैत्यों पर विजय प्राप्त की थी ।। ९ ।। हे अग्ने ! यह काष्ठ वाली अरणि तुम्हारा प्राकट्य स्थान है। तुम इससे प्रकट होकर सुशोभित होओ। उसे जानते हुए विराजमान होओ और हमारी स्तुति को बढ़ाओ ।। १० ।।　　　　[३३]

तनूनपादुच्यते गर्भ आसुरो नराशंसो भवति यद्विजायते ।
मातरिश्वा यदमिमीत मातरि वातस्य सर्गो अभवत्सरीमणि ।।११।।
सुनिर्मथा निर्मथित सुनिधा निहितः कविः ।
अग्ने स्वध्वरा कृणु देवान्देवयते यज ।।१२।।
अजीजनन्नमृतं मर्त्यासोऽस्रेमाणं तरणिं वीळुजम्भम् ।

दश स्वसारो अग्रुवः समीचीः पुमांसं जातमभि सं रभन्ते ॥१३॥

प्र सप्तहोता सनकादरोचत मातुरुपस्थे यदशोचदूधनि ।
न नि मिषति सुरणो दिवेदिवे यदसुरस्य जठरादजायत ॥१४॥

अमित्रायुधो मरुतामिव प्रयाः प्रथमजा ब्रह्मणो विश्वमिद्विदुः ।
द्युम्नवद्ब्रह्म कुशिकास एरिर एकएको दमे अग्निं समीधिरे ॥१५॥
यदद्य त्वा प्रयति यज्ञे अस्मिन्होतश्चिकित्वोऽवृणीमहीह ।
ध्रुवमया ध्रुवमुताशमिष्ठाः प्रजानन्विद्वाँ उप याहि सोमम् ॥१६॥३४

जिस अग्नि का व्यापक रूप कभी नष्ट नहीं होता, उसे तनूनपात् कहते हैं। जब वह साक्षात् होते हैं तब आसुर और नराशंस कहलाते हैं और जब अन्तरिक्ष में अपने तेज को फैलाते हैं, तब मातरिश्वा होते हैं। जब वह प्रकट होते है, तब वायु के समान होते हैं॥ ११ ॥ हे अग्ने! तुम ज्ञानी तथा मंथन से उत्पन्न हो। तुम श्रेष्ठ स्थान में प्रतिष्ठित हो। हमारे यज्ञ को निर्विघ्न पूर्ण करो। हम, देवताओं की कामना करने वालों के निमित्त देवताओं का पूजन करो॥ १२ ॥ मरणधर्मा ऋत्विजों ने अक्षय, अविनाशी, दृढ़ दांतों वाले और पाप से उद्धार करने वाले अग्नि को प्रकट किया। सन्तान के समान उत्पन्न हुए उस अग्नि के प्रति, भगिनीरूपिणी दसों अंगुलियाँ हर्ष-सूचक ध्वनि करती हैं॥ १३ ॥ अग्नि प्राचीन हैं। सप्त होताओं द्वारा किये जाने वाले यज्ञ में अत्यन्त सुशोभित होते हैं। जब वे वेदी में क्रीड़ा करते हैं तब अत्यन्त कांतियुक्त लगते हैं। वे सदा चैतन्य रहते हैं। वे असुर के मध्य से उत्पन्न हुए हैं॥ १४ ॥ शत्रुओं से मरुद्गण के समान युद्ध करने वाले ब्रह्मा द्वारा प्रथम उत्पन्न कौशिक ऋषियों ने सम्पूर्ण विश्व को जाना। वे अपने गृह में अग्नि को प्रदीप्त करते और उनके प्रति हवि देते हुए स्तुतियाँ करते हैं॥ १५ ॥ यज्ञ-कार्य सम्पन्न करने वाले, मेधावी, सर्वज्ञाता अग्नि को हम इस यज्ञ में स्थापित करते हैं। हे अग्ने! इस यज्ञ में देवताओं को हवि दो। उनकी नित्य प्रति स्तुति करो। साम को सिद्ध हुआ जानकर उसको प्राप्त होओ॥ १६ ॥ [३४]

तुम्हारी प्रेरणा से जल पृथिवी को प्राप्त हो ॥ ९ ॥ हे इन्द्र ! जलों का गोष्ठभूत मेघ वज्र प्रहार से पूर्व ही खण्ड-खण्ड होगया । जल रूप गौ के निकलने का मार्ग तुमने सरल किया । शब्द करता हुआ रमणीय जल अनेकों द्वारा पूजित होकर इन्द्र के समक्ष उपस्थित हुआ ॥ १० ॥ [२]

एको द्वे वसुमती समीची इन्द्र आ पप्रौ पृथिवीमुत द्याम् ।
उतान्तरिक्षादभि नः समीक इषो रथीः सयुजः शूर वाजान् ॥११
दिशः सूर्यो न मिनाति प्रदिष्टा दिवेदिवे हर्यश्वप्रसूताः ।
सं यदानळध्वन आदिदश्वैर्विमोचनं कृणुते तत्त्वस्य ॥१२॥
दिदृक्षन्त उषसो यामन्नक्तोर्विवस्वत्या महि चित्रमनीकम् ।
विश्वे जानन्ति महिना यदागादिन्द्रस्य कर्म सुकृता पुरूणि ॥ १३
महि ज्योतिर्निहितं वक्षणास्वामा पक्वं चरति बिभ्रती गौः ।
विश्वं स्वाद्म सम्भृतमुस्रियायां यत्सीमिन्द्रो अदधाद्भोजनाय ॥१४
इन्द्र दृह्य यामकोशा अभूवन्यज्ञाय शिक्ष गृणते सखिभ्यः ।
दुर्मायवो दुरेवा मर्त्यासो निषङ्गिणो रिपवो हन्त्वासः ॥१५ । ३

इन्द्र ने अपने ही कर्म द्वारा आकाश-पृथिवी को सुसंगत कर अन्न-धन से पूर्ण किया । हे वीर इन्द्र ! तुम रथी हो । हमारे साथ रहने की इच्छा से रथ में जुते अश्वों को हमारे सामने करो ॥ ११ ॥ इन्द्र से ही सूर्य प्रेरणा पाते हैं । वे प्रकाशमान् दिशाओं पर नित्यप्रति गमन करते हैं । जब वे अपने अश्व सहित अपना गगन-मार्ग पूर्ण कर लेते हैं, तब हम से अलग होते हैं । यह सब भी इन्द्र की प्रेरणा से ही होता है ॥ १२ ॥ गतिमान रात्रि के पश्चात् उषा के भी चले जाने पर उन अद्भुत, महान् और तेजस्वी सूर्य के दर्शन करने को सभी उत्सुक होते हैं । जब उषाकाल समाप्त होजाता है तब मनुष्य यज्ञादि कर्म में लग जाते हैं । इस प्रकार अनेक उत्तम कार्य इन्द्र के ही हैं ॥ १३ ॥ इन्द्र ने महान् गुण वाले जल को नदियों में प्रयुक्त किया इन्द्र ने अत्यन्त स्वादिष्ट दही, घृत, खीर आदि भोजन को जल रूप से गौ में धारण किया । वह नवप्रसूता गौ दुग्धवती हुई घूमती है ॥ १४ ॥ हे इन्द्र !

तुम दृढ़ होओ। शत्रुओं ने विघ्न उपस्थित किया है। तुम यज्ञकर्ता स्तोत
तथा मित्रों को उनका अभीष्ट फल दो। शत्रुगण मन्द गति से चलते हु
शस्त्र चलाते हैं। वे धनुष बाण से युक्त हिंसक हैं, उनका संहार करन
उचित है॥ १५॥ [३]

सं घोषः शृण्वेऽवमै रमित्रैर्जही न्येष्वशनिं तपिष्ठाम्।
वृश्चेमधस्ताद्वि रुजा सहस्व जहि रक्षो मघवन् रन्धयस्व॥ १६
उद्वृह रक्षः सहमूलमिन्द्र वृश्चा मध्यं प्रत्यग्रं शृणीहि।
आ कीवतः सललूकं चकर्थ ब्रह्मद्विषे तपुषिं हेतिमस्य॥१७
स्वस्तये वाजिभिश्च प्रणेतः सं यन्महीरिष आसत्सि पूर्वीः।
रायो वन्तारो बृहतः स्यामास्मे अस्तु भग इन्द्र प्रजावान्॥ १८
आ नो भर भगमिन्द्र द्युमन्तं नि ते देष्णस्य धीमहि प्ररेके।
ऊर्वइव पप्रथे कामो अस्मे तमा पृण वसुपते वसूनाम्॥ १९
इमं कामं मंदया गोभिरश्वैश्चन्द्रवता राधसा पप्रथश्च।
स्वर्यवो मतिभिस्तुभ्यं विप्रा इन्द्राय वाहः कुशिकासो अक्रन्॥ २०
आनो गोत्रा दर्दृहि गोपते गाः समस्मभ्यं सनयो यन्तु वाजाः।
दिवक्षा असि वृषभ सत्यशुष्मोऽस्मभ्यं सु मघवन्बोधि गोदाः॥ २१
शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम्॥। ४

हे इन्द्र! शत्रुओं द्वारा फेंके गए वज्र का शब्द हमको सुनाई पड़ता है। घोर दुःख देने वाली अशनियों (तोप आदि) को शत्रुओं के सामने ही नष्ट कर डालो। शत्रुओं के कार्य में बाधा देते हुए उन्हें छेद डालो। हे इन्द्र! राक्षसों का संहार करके यज्ञ-कर्म में लगो॥ १६॥ हे इन्द्र! दैत्यों के वंश को जड़ से नष्ट करो। उनके मध्य भाग में प्रहार करो। अगले भाग को नष्ट करते हुए उन्हें दूर कर दो। यज्ञ के द्वेष करने वाले पर दुःखदायक हथियार चलाओ।॥ १७॥ हे इन्द्र! तुम विश्व के पोषक हो। हमको अश्व-युक्त बनाओ। हमको अमरत्व प्रदान करो। तुम्हारी निकटता प्राप्त कर हमं

महान् अन्न और प्राप्त धन के उपभोग द्वारा वृद्धि को प्राप्त होंगे। हमको पुत्र-पौत्रादि सहित धन प्राप्त कराओ ॥ १८ ॥ हे इन्द्र ! हमारे निमित्त उज्ज्वल धन लेकर आओ। तुम दान करने वाले हो। हम तुम्हारे दान को पाने योग्य हैं। हमारी कामना अत्यन्त बढ़ी हुई है। तुम धन के स्वामी हो। हमारी कामना की पूर्ति करो ॥ १९ ॥ हे इन्द्र ! हमारी गौ, अश्व तथा रमणीय धन वाली कामना को अपने दान द्वारा पूर्ण करो। उससे हमको ख्याति प्राप्त हो। स्वर्ग की कामना वाले तथा सुख प्राप्ति की इच्छा वाले कर्मवान् कौशिकों ने श्रेष्ठ मन्त्रों से तुम्हारी स्तुति की है ॥२०॥ हे स्वर्ग के स्वामी इन्द्र ! मेघ को छिन्न-भिन्न कर हमको जल प्रदान करो। उपभोग्य अन्न हमको प्राप्त हो। तुम अभीष्टों के वर्षक हो। आकाश को व्याप्त करते हुए रहते हो। तुम सत्य के बल से युक्त हो। हमको गौ प्रदान करो ॥२१॥ हे इन्द्र ! तुम अन्नवान् हो। युद्ध में उत्साहपूर्वक बढ़े हुए तुम अत्यन्त धन वाले, ऐश्वर्यशाली, नायकों में श्रेष्ठ, स्तुतियों को सुनने वाले, विकराल, शत्रुओं का संहार करने वाले और धनों को जीतने वाले हो। हम तुम्हारे आश्रय के निमित्त तुम्हारा आह्वान करते हैं ॥२२॥ [४]

३१ सूक्त

(ऋषि—विश्वामित्रः कुशको वा। देवता—इन्द्रः। छन्द—पंक्तिः, त्रिष्टुप्)

शासद्वह्निर्दुहितुर्नप्त्यं गाद्विद्वाँ ऋतस्य दीधितिं सपर्यन्।
पिता यत्र दुहितुः सेकमृञ्जन्त्सं शग्म्येन मनसा दधन्वे ॥ १ ॥
न जामये तान्वो रिक्थमारैक्चकार गर्भं सनितुर्निधानम्।
यदी मातरो जनयंत वह्निमन्यः कर्ता सुकृतोरन्य ऋन्धन् ॥ २ ॥
अग्निर्जज्ञे जुह्वा रेजमानो महस्पुत्राँ अरुषस्य प्रयक्षे।
महान्गर्भो मह्या जातमेषां मही प्रवृद्धर्यश्वस्य यज्ञैः ॥ ३ ॥
अभि जैत्रीरसचंत स्पृधानं महि ज्योतिस्तमसो निरजानन्।
तं जानतीः प्रत्युदायन्नुषासः पतिर्गवामभवदेक इन्द्रः ॥ ४ ॥
वीळौ सतीरभि धीरा अतृंदन्प्राचाहिन्वन्मनसा सप्त विप्राः।

विश्वामविन्दन्पथ्यामृतस्य प्रजानन्नित्ता नमसा विवेश ॥५॥५

जिसके पुत्र न हो ऐसा व्यक्ति अपनी पुत्री का योग्य पुरुष से विवाह करता हुआ दौहित्र को प्राप्त करता है। वह पुत्रहीन व्यक्ति, पुत्री के गर्भ-धारण विश्वास पर जीवित रहता है ॥१॥ औरस पुत्र से पुत्री को धन नहीं मिलता। वह पुत्री को उसके पति के सेंचन-कार्य द्वारा माता बनाता है। यदि माता-पिता के पुत्र और पुत्री दोनों ही उत्पन्न हों, तो उनमें से पुत्र क्रिया-कर्म करने का अधिकारी है तथा पुत्री सम्मान की अधिकारिणी है ॥२॥ हे इन्द्र! तुम तेजस्वी हो। हमारे यज्ञ के निमित्त कम्पित अग्नि के पुत्र रूप किरणों को प्रकट किया है। इन किरणों का गर्भ जल-रूप है। इनका महान् जन्म औषधि-रूप है। हे हरे अश्व वाले इन्द्र! सोम द्वारा प्रेरित तुम्हारी इन किरणों के कर्म महत्तावान् होते हैं ॥३॥ वृत्र से संग्राम-रत इन्द्र के साथ मरुद्गण मिले थे। सूर्य रूप महान् तेज अन्धकार रूप वृत्र के आवरण में भी मार्ग-दर्शक है, इसे मरुद्गण जान गए। उषाओं ने इन्द्र को सूर्य समझा और उनके समक्ष पहुंची। तब एक मात्र इन्द्र ही समस्त किरणों के स्वामी हुए ॥४॥ प्रज्ञावान् सप्त अङ्गिराओं ने सुदृढ़ पर्वत पर रोकी हुई गौओं को ढूँढा। 'पर्वत पर गौऐं हैं' यह विश्वास कर वे जिस मार्ग से वहां गए, उसी से लौटे। उन्होंने यज्ञ-मार्ग द्वारा सभी गौओं को प्राप्त किया। अङ्गिराओं की नमस्कार युक्त पूजा से प्रभावित इन्द्र इस बात को जान कर पर्वत पर पहुंचे ॥५॥　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　[५]

विदद्यदी सरमा रुग्णमद्रेर्महि पाथः पूर्व्यं सध्र्यक्कः ।
अग्रं नयत्सुपद्यक्षराणामच्छा रवं प्रथमा जानती गात् ॥६॥
अगच्छदु विप्रतमः सखीयन्नसूदयत्सुकृते गर्भमद्रिः ।
ससान मर्यो युवभिर्मखस्यन्नथाभवदङ्गिराः सद्यो अर्चन् ॥७॥
सतः सतः प्रतिमानं पुरोभूर्विश्वा वेद जनिमा हन्ति शुष्णम् ।
प्र णो दिवः पदवीर्गव्युरर्चन्त्सखा सखीँरमुञ्चन्निरवद्यात् ॥८॥
नि गव्यता मनसा सेदुरर्कैः कृण्वानासो अमृतत्वाय गातुम् ।

इदं चिन्नु सदनं भूयषां येन मासाँ असिषासन्नृतेव ॥६॥
म्पश्यमाना अमदन्नभि स्वं पयः प्रत्नस्य रेतसो दुघानः ।
वि रोदसी अतपद्धोष एषां जाते निःष्ठामदधुर्गोषु वीरान् ॥१०॥६॥

पर्वत के टूटे हुए द्वार पर जब सरमा गई, तब इन्द्र ने अपने वचना-
नुसार उसे उसका चाहा हुआ प्रचुर अन्य तथा अन्न धन प्रदान किया।
ह उत्तम पाँव वाली सरमा गौओं के शब्द को पहचानती हुई उनके समीप
ाप्त हुई ॥६॥ अत्यन्त प्रज्ञासम्पन्न इन्द्र अङ्गिराओं के प्रति मैत्री-पूर्ण
इच्छा से वहाँ पहुँचे। पर्वत ने अपने में छिपे हुए गोधन को उन महान् योद्धा
के निमित्त प्रकट किया, शत्रु का संहार करने वाले इन्द्र ने युवा मरुतों की
सहायता से उन्हें पाया। तब अङ्गिराओं ने उनका पूजन किया ॥७॥ जो
समस्त ऐश्वर्यवानों में अग्रगण्य हैं, जो रण-क्षेत्र में सबसे आगे चलते हैं, जो
सभी उत्पन्न पदार्थों के ज्ञाता हैं, जिन्होंने शुष्ण को मारा था, वे इन्द्र
गोधन की इच्छा वाले तथा अत्यन्त दूरदर्शी हैं। वे हमको आदर प्रदान करते
हुए पाप से रक्षा करते हैं ॥ ८ ॥ मेधावीजन अन्तःकरण में गोधन-प्राप्ति की
इच्छा से स्तोत्र द्वारा अमरत्व प्राप्ति का यत्न करते हुए यज्ञ कर्म में लगे।
इनका यज्ञ ही महान् आश्रय रूप है। इन्होंने इस सत्य के कारण भूतयज्ञ
के बल से महीनों को विभक्त किया ॥६॥ अङ्गिरावंशियों ने प्रथम उत्पन्न
पुत्रों की रक्षा के निमित्त गोधन प्राप्त कर उनका दोहन किया और शरीर
को पुष्ट बनाया। उनकी हर्षध्वनि आकाश-पृथिवी में व्याप्त हो गई। वे
पूर्व काल के समान ही संसार में रहे और गौओं की रक्षा के लिए उन्होंने
वीरों ने नियुक्त किया ॥१०॥ [६]

स जातेभिर्वृत्रहा सेदु हव्यैरुदुस्रिया असृजदिन्द्रो अर्कैः ।
उरूच्यस्मै घृतवद्भरन्ती मधु स्वाद्म दुदुहे जेन्या गौः ॥११॥
पित्रे चिच्चक्रुः सदनं समस्मै महि त्विषीमत्सुकृतो वि हि ख्यन् ।
विष्कभ्नन्तः स्कम्भनेना जनित्री आसीना ऊर्ध्वं रभसं वि मिन्वन् ॥१२॥
मही यदि धिषणा शिश्नथे धात्सद्योवृधं विभ्वं रोदस्योः ।

गिरो यस्मिन्ननवद्याः समीचीर्विश्वा इंद्राय तविषीरनुत्ताः ॥१३॥
गच्छा ते सख्यं वश्मि शक्तीरा वृत्रघ्ने नियुतो यन्ति पूर्वीः ।
महि स्तोत्रमव आगन्म सूरेरस्माकं सु मघवन्बोधि गोपाः ॥१४॥
महि क्षेत्रं पुरु श्चन्द्रं विविद्वानादित्सखिभ्यश्चरथं समैरत् ।
इंद्रो नृभिरजनद्दीद्यानः साकं सूर्यमुषसं गातुमग्निम् ॥१५॥७॥

इन्द्र ने मरुद्गण को साथ लेकर वृत्र का संहार किया। वे ही पूज्य हैं तथा यजन करने योग्य हैं। उन्होंने मरुद्गण के साथ यज्ञ के निमित्त गौओं का दान किया। घृतयुक्त हवि वाली तथा उत्तम हवि देने वाली गौ ने उनके निमित्त सुस्वादु क्षीर प्रदान किया ॥ ११ ॥ उन पालनकर्त्ता इन्द्र के लिए अङ्गिराओं ने अत्यन्त स्वच्छ एवं उज्ज्वल श्रेष्ठ स्थान का संस्कार किया। उत्तम कर्म वाले अङ्गिराओं ने इन्द्र के योग्य इस सुन्दर स्थान को दिखाया। उन्होंने यज्ञ में बैठकर आकाश पृथिवी के मध्य अन्तरिक्ष का स्तम्भ का आरोपण कर इन्द्र को स्वर्ग में प्रतिष्ठित किया था ॥ १२ ॥ आकाश-पृथिवी के विश्लेषण में प्रयुक्त वाणी, उसके वर्णन में समर्थ न हो तो भी इन्द्र की स्तुति द्वारा वृद्धि को प्राप्त होती हुई सुसंगत होती है। उन इन्द्र की सभी शक्तियाँ स्वयं सामर्थ्य वाली हैं ॥ १३ ॥ हे इन्द्र ! मैं तुम्हारे महान् मित्र-भाव की याचना करता हूं। तुम्हारी शक्ति के निमित्त याचना करता हूँ। तुम वृत्र का संहार करने वाले हो। तुम्हारे पास अनेक अश्व हैं। तुम अत्यन्त मेधावी हो। हम तुम्हें अपना हार्दिक मित्र-भाव, स्तोत्र और हवियाँ अर्पित करेंगे। हे इन्द्र ! तुम हमारे रक्षक हो, हमको बुद्धिमान बनाओ ॥१४॥ इन्द्र ने भले प्रकार विचार कर मित्रों को भूमि और सुवर्ण रूप धन प्रदान किया। फिर उन्होंने गवादि धन भी दिया। वे अत्यन्त तेजस्वी हैं। उन्होंने ही मरुद्गण, सूर्य, उषा, पृथिवी और अग्नि को प्रकट किया ॥१५॥ [७]

अपश्चिदेष विभ्वो दमूनाः प्र सध्रीचीरसृजद्विश्वश्चन्द्राः ।
मध्वः पुनानाः कविभिः पवित्रैर्द्युभिर्हिन्वन्त्यक्तुभिर्धनुत्रीः ॥१६॥
अनु कृष्णे वसुधिती जिहाते उभे सूर्यस्य मंहना यजत्रे ।
परि यत्ते महिमानं वृजध्यै सखाय इंद्र काम्या ऋजिप्याः ॥१७॥

पतिर्भव वृत्रहंत्सूनृतानां गिरां विश्वायुर्वृषभो वयोधाः ।
आ नो गहि सख्येभिः शिवेभिर्महान्महीभिरूतिभिः सरण्यन् ॥१८॥
तमङ्गिरस्वन्नमसा सपर्यन्नव्यं कृणोमि सन्यसे पुराजाम् ।
द्रुहो वि याहि बहुला अदेवीः स्वश्च नो मघवन्त्सातये धाः ॥१९॥
मिहः पावकाः प्रतता अभूवन्त्स्वस्ति नः पिपृहि पारमासाम् ।
इंद्र त्वं रथिरः पाहि नो रिषो मक्षू मक्षू कृणुहि गोजितो नः ॥२०॥
अदेदिष्ट वृत्रहा गोपतिर्गा अंतः कृष्णाँ अरुषैर्धामभिर्गात् ।
प्र सूनृता दिशमान ऋतेन दुरश्च विश्वा अवृणोदप स्वाः ॥२१॥
शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वंतमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥२२॥८॥

वे इन्द्र शांत स्वभाव से युक्त हैं। इन्होंने अत्यन्त वेग वाले गुलंगत और विश्व को परम आनन्द देने वाले जल को प्रकट किया। वह मधुर सोमों को पवित्र करते तथा अग्नि, सूर्य और वायु के द्वारा शुद्ध करते हैं। वे ही सम्पूर्ण जगत को आनन्द प्रदान करते हुए इस विश्व को दिन और रात्रि में भी अपने कार्यों में लगाते हैं ॥१६॥ सूर्य की महिमा के समस्त पदार्थों के धारण करने वाले तथा यज्ञ निर्वाहक दिन-रात्रि क्रमपूर्वक भ्रमण करते हैं। ऋजु रूप, मित्र-भाव वाले मरुद्गण शत्रु पर विजय प्राप्त करने के लिए तुम्हारी शक्ति का आश्रय प्राप्त करते हैं ॥ १७ ॥ हे इन्द्र ! तुम वृत्र-संहारक हो। तुम कामनाओं की वर्षा करने वाले, अमर तथा अन्न प्रदान करने वाले हो। तुम हमारी प्रिय स्तुतियों के अधिपति होओ। तुम यज्ञ में जाने की इच्छा वाले एवं महान् हो। तुम अपनी कल्याण वहन करने वाली मित्रता सहित तथा महान् आश्रय से युक्त हुए हमको प्राप्त होओ ॥ १८ ॥ हे इन्द्र ! तुम प्राचीन हो। अङ्गिराओं के समान मैं भी तुम्हारा पूजन करता हूँ। मैं तुम्हारे स्तवन के निमित्त नवीन स्तुतियाँ प्रस्तुत करता हूँ। तुम देवताओं के बैरियों का संहार करने वाले हो। हे इन्द्र ! हमारे लिए उपभोग करने योग्य धन प्रदान करो ॥ १९ ॥ हे इन्द्र ! यह पवित्र जल सब ओर फैल गया। हमारे इस श्रेष्ठ तट को जल से पूर्ण करो। तुम रथ युक्त हो। शत्रुओं से

हमारी रक्षा करो। हमको गौओं के जीतने योग्य बल दो ॥ २० ॥ ...
संहार करने वाले गौओं के स्वामी इन्द्र हमको गौऐं दें। यज्ञ ...
करने वाले राक्षसों को अपने प्रकाशमान तेज से मार डालें। उन्होंने ...
द्वारा अङ्गिराओं को रमणीय गौऐं दान कीं और असत्य के सभी मार्गों ...
रोक दिया ॥ २१ ॥ हे इन्द्र ! तुम अन्न का लाभ कराने वाले, ...
उत्साह द्वारा वृद्धि को प्राप्त हुए, धन से युक्त, ऐश्वर्यवानों में श्रेष्ठ, ...
के सुनने वाले, विकराल, रणस्थल में शत्रुओं का संहार करने वाले ...
के जीतने वाले हो। मैं आश्रय प्राप्त करने के लिए तुम्हारा आह्वान ...
हूँ ॥२२॥

३२ सूक्त

(ऋषि—विश्वामित्रः । देवता—इन्द्रः । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

इंद्र सोमं सोमपते पवेमं माध्यन्दिनं सवनं चारु यत्ते ।
प्रप्रुथ्या शिप्रे मघवन्नृजीषिन्विमुच्या हरी इह मादयस्व ॥१॥
गवाशिरं मन्थिनमिन्द्र शुक्रं पिबा सोमं ररिमा ते मदाय ।
ब्रह्मकृता मारुतेना गणेन सजोषा रुद्रैस्तृपदा वृषस्व ॥२॥
ये ते शुष्मं ये तविषीमवर्धन्नर्चन्त इंद्र मरुतस्त ओजः ।
माध्यन्दिने सवने वज्रहस्त पिबा रुद्रेभिः सगणः सुशिप्र ॥३॥
त इन्न्वस्य मधुमद्विविप्र इंद्रस्य शर्धो मरुतो य आसन् ।
येभिर्वृत्रस्येषितो विवेदामर्मणो मन्यमानस्य मर्म ॥४॥
मनुष्वदिंद्र सवनं जुषाणः पिबा सोमं शश्वते वीर्याय ।
स आ ववृत्स्व हर्यश्व यज्ञैः सरण्युभिरपो अर्णा सिसर्षि ॥५।६॥

हे इन्द्र ! तुम सोम के स्वामी हो। इस मध्य सवन में सोम ...
करो। यह सोम तुमको अत्यन्त प्रिय है। तुम धन से युक्त तथा सोम ...
युक्त हो। अपने अश्वों को रथ से पृथक् कर उनके मुख को श्रेष्ठ ...
पूर्ण करते हुए उन्हें इस यज्ञ में आनन्दित करो ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! ...

से युक्त, संस्कारित नवीन सोम को पीओ। तुम्हारी प्रसन्नता के निमित्त हम उसे भेंट करते हैं। तुम मरुद्गण और रुद्रों के साथ तृप्त होने तक सोम-पान करो ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! जो मरुद्गण, शत्रु को सुखाने वाले तुम्हारे तेज की वृद्धि करते हैं, वे मरुद्गण ही तुम्हारे बल को बढ़ाने वाले भी हैं। वे मरुद्गण ही स्तुति से तुम्हारी युद्ध सामर्थ्य को बढ़ाते हैं। तुम वज्रधारण कर, सुशोभित शिरस्त्राण युक्त हुए मध्य सवन में रुद्रों सहित सोम पान करो ॥ ३ ॥ वृत्र को विश्वास था कि मेरा भेद कोई नहीं जानता। परन्तु मरुतों की सहायता और प्रेरणा द्वारा इन्द्र ने वृत्र का भेद जान लिया। उन्हीं मरुद्गण ने उत्साहवर्द्धक मधुर वाणी से तुम्हें उत्साहित किया था ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! मनु के यज्ञ के समान तुम मेरे यज्ञ को ग्रहण करते हुए स्थायी बल के निमित्त सोम पीओ। तुम हरे अश्व वाले हो। यज्ञ के पात्र मरुद्गण के सहित आओ और अन्तरिक्ष से जल को छोड़ो ॥ ५ ॥ [९]

त्वमपो यद्ध वृत्रं जघन्वाँ अत्याँइव प्रासृजः सर्तवाजौ।
शयानमिन्द्र चरता वधेन वव्रिवांसं परि देवीरदेवम् ॥६
यजाम इन्नमसा वृद्धमिन्द्रं बृहन्तमृष्वमजरं युवानम्।
यस्य प्रिये ममतुर्यज्ञियस्य न रोदसी महिमानं ममाते ॥७
इंद्रस्य कर्म सुकृता पुरूणि व्रतानि देवा न मिनन्ति विश्वे।
दाधार यः पृथिवीं द्यामुतेमां जजान सूर्यमुषसं सुदंसाः ॥८
अद्रोघ सत्यं तव तन्महित्वं सद्यो यज्जातो अपिबो ह सोमम्।
न द्याव इंद्र तवसस्त ओजो नाहा न मासाः शरदो वरन्त ॥९
त्वं सद्यो अपिबो जात इंद्र मदाय सोमं परमे व्योमन्।
यद्ध द्यावापृथिवी आविवेशीरथाभवः पूर्व्यः कारुधायाः ॥१०।१०

हे इन्द्र ! तुम उज्ज्वल जल को ढकते हो। तुमने उस सोते हुए वृत्र को युद्ध में गिराया है। तुमने युद्ध में अस्त्र के समान जल को छोड़ दिया ॥६॥ हवि द्वारा वृद्धि को प्राप्त, अविनाशी, महान्, सतत युवा, स्तुति के पात्र इन्द्र का हम पूजन करते हैं। महती आकाश और पृथिवी भी इन्द्र की

महिमा को सीमित करने में समर्थ नहीं हैं ॥ ७ ॥ इन्द्र के उत्तम कर्म, यज्ञादि पराक्रम में सभी देव मिल कर भी बाधा नहीं डाल सकते। वे आकाश, पृथिवी और अन्तरिक्ष के धारणकर्त्ता हैं। उनके कर्म श्रेष्ठ हैं। उन्हीं ने सूर्य और उषा को प्रकट किया है ॥ ८ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारी कामना श्रेष्ठ है। तुम्हारी महिमा ही प्रमुख है। तुम प्रकट होकर ही सोम पीते हो। तुम शक्तिशाली हो। तुम्हारे तेज को स्वर्गादि लोक, दिन, मास और वर्ष कोई भी नहीं रोक सकता ॥ ९ ॥ हे इन्द्र ! तुमने उत्पन्न होते ही सब से ऊँचे लोक स्वर्ग में विराजमान होकर प्रसन्नता के लिए सोम-पान किया। जब तुम आकाश पृथिवी में व्याप्त हुए तभी सम्पूर्ण सृष्टि के विधाता बन गए ॥ १० ॥ [१०]

अहन्नहिं परिशयानमर्णं ओजायमानं तुविजात तव्यान् ।
न ते महित्वमनु भूदध द्यौर्यदन्यया स्फिग्या क्षामवस्था ॥११
यज्ञो हि त इंद्र वर्धनो भूदुत प्रियः सुतसोमो मियेधः ।
यज्ञेन यज्ञमव यज्ञियः सन्यज्ञस्ते वज्रमहिहत्य आवत् ॥१२
यज्ञेनेन्द्रमवसा चक्रे अर्वागैनं सुम्नाय नव्यसे ववृत्याम् ।
यः स्तोमेभिर्वावृधे पूर्व्येभिर्यो मध्यमेभिरुत नूतनेभिः ॥१३
विवेष यन्मा धिषणा जजान स्तवै पुरा पार्यादिन्द्रमह्नः ।
अंहसो यत्र पीपरद्यथा नो नावेव यान्तमुभये हवन्ते ॥१४
आपूर्णो अस्य कलशः स्वाहा सेक्तेव कोशं सिसिचे पिबध्यै ।
समु प्रिया आववृत्रन्मदाय प्रदक्षिणिदभि सोमास इंद्रम् ॥१५
न त्वा गभीरः पुरुहूत सिन्धुर्नाद्रयः परि षन्तो वरन्त ।
इत्था सखिभ्य इषितो यदिन्द्रा दृळ्हं चिदरुजो गव्यमूर्वम् ॥१६
शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥१७॥११

हे इन्द्र ! तुमने अनेकों को उत्पन्न किया। जल को रोकने वाले अहंकारी अहि को तुमने नष्ट कर दिया। जब तुम पृथिवी को कटि में छिपा

कर चलते हो तब स्वर्ग भी तुम्हारी महिमा की समता करने में समर्थ नहीं होता ॥ ११ ॥ हे इन्द्र ! हमारा यज्ञ तुमको बढ़ाता है। जिस कार्य में सोम का संस्कार किया जाता है, वह कार्य तुमको प्रिय है। तुम यज्ञ के योग्य हो। अपने यजमान की यज्ञ-कार्य के निमित्त रक्षा करो। अहि का संहार करने के निमित्त यह यज्ञ तुम्हारे वज्र को बलशाली बनावे ॥ १२ ॥ पुरातन, मध्य-कालीन तथा नवीन स्तोत्र से जो इन्द्र बढ़ते हैं, उन्हीं इन्द्र को यजमान अपने रक्षक यज्ञ द्वारा सामने बुलाता है। नवीन धन के लिए वह उनका आह्वान करता है ॥ १३ ॥ इन्द्र की स्तुति करने की जब मैं इच्छा करता हूँ, तभी स्तुति करने लगता हूं। मैं उस अशुभ दूरवर्ती दिन की आशंका से, पहिले ही इन्द्र का स्तवन करता हूँ। वे इन्द्र हमें दुःख से पार करें। नदी के दोनों तटों के लोग जैसे नाव वाले को बुलाते हैं, वैसे ही हमारे मातृकुल के व्यथित इन्द्र को बुलाते हैं ॥ १४ ॥ इन्द्र का कलश पूर्ण होगया। पान के निमित्त स्वहाकार की ध्वनि हुई। जैसे जल सींचने वाला पात्र से जल सींचता है, वैसे ही मैं सोम को सींचता हूं। सुन्दर स्वाद वाला सोम इन्द्र को आनन्दित करने के लिए उनके सम्मुख जाता है ॥ १५ ॥ हे इन्द्र ! तुम बहुतों द्वारा आह्वान किए गए हो। गंभीर समुद्र भी तुम्हें रोक नहीं सकता। समुद्र के चारों ओर का उप-समुद्र भी तुम्हें निवारण करने में समर्थ नहीं है। क्योंकि मित्रों की प्रार्थना पर तुमने महाबली वृत्र का निवारण कर दिया है ॥ १६ ॥ हे इन्द्र ! तुम अन्न का लाभ कराने वाले उत्साह से बढ़े हुए, धन और ऐश्वर्य से सम्पन्न नायकों में श्रेष्ठ, स्तुति सुनने वाले, विकराल, युद्ध में शत्रु का नाश करने वाले तथा धनों को जीतने वाले हो। आश्रय प्राप्त करने के लिए मैं तुम्हारा आह्वान करता हूँ ॥ १७ ॥ [११]

३३ सूक्त

(ऋषि—विश्वामित्रः। देवता—नद्यः। छन्द—पंक्तिः, त्रिष्टुप् उष्णिक्)

प्र पर्वतानामुशती उपस्थादश्वेइव विषिते हासमाने।
गावेव शुभ्रे मातरा रिहाणे विपाट्छुतुद्री पयसा जवेते ॥१
इन्द्रेषिते प्रसवं भिक्षमाणे अच्छा समुद्रं रथ्येव याथः।

समाराणे ऊर्मिभिः पिन्वमाने अन्या वामन्यामप्येति शुभ्रे ॥२
अच्छा सिंधुं मातृतमामयासं विपाशमुर्वीं सुभगामगन्म ।
वत्समिव मातरा संरिहाणे समानं योनिमनु सञ्चरन्ती ॥३
एना वयं पयसा पिन्वमाना अनु योनिं देवकृतं चरन्तीः ।
न वर्तवे प्रसवः सर्गतक्तः किंयुर्विप्रो नद्यो जोहवीति ॥४
रमध्वं मे वचसे सोम्याय ऋतावरीरुप मुहूर्तमेवैः ।
प्र सिंधुमच्छा बृहती मनीषावस्युरह्वे कुशिकस्य सूनुः ॥५।१२

जलपूर्ण प्रवाह वाली विपाश और शुतुद्री नदियाँ पर्वत के अङ्क से निकल कर समुद्र से मिलने की कामना वाली होकर, अश्वशाला से विमुक्त अश्व के समान स्पर्द्धावान् होती हुई, दो गौओं के समान सुशोभित हुई वेग से समुद्र की ओर चलती हैं ॥ १ ॥ हे दोनों नदियो ! इन्द्र तुम्हें प्रेरणा देते हैं। तुम परस्पर प्रार्थना-सी करती हुई दो रथियों के समान समुद्र को प्राप्त होती हो। तुम प्रवाहमान हुई, तरंगों द्वारा बढ़ कर परस्पर मिलने की चेष्टा करती हुई-सी चलती हो और शोभा पाती हो ॥ २ ॥ माता के समान सिन्धु नदी और श्रेष्ठ सौभाग्य वाली विपाशा नदी को प्राप्त होता हूँ। यह दोनों वत्साभिलाषिणी गौओं के समान आश्रय स्थान की ओर जाती हैं ॥३॥ यह नदियाँ जल से पूर्ण हुई भूमि प्रदेशों को सींचती हुई, ईश्वर के रचे हुए स्थान पर चलती हैं। इनकी गति कभी रुकती नहीं, हम उन नदियों के अनुकूल होते हुए प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥ हे जल से पूर्ण हुई नदियो ! मेरे सोम-सम्पन्नता के कार्य की बात सुनने के लिए एक क्षण के लिए चलने से रुको। मैं कुशिक पुत्र विश्वामित्र बृहती स्तुति से प्रसन्नता प्राप्ति और अपनी अभीष्ट-पूर्ति के निमित्त इन नदियों का आह्वान करता हूँ ॥ ५ ॥ [१२]

इन्द्रो अस्माँ अरदद्वज्रबाहुरपाहन्वृत्रं परिधिं नदीनाम् ।
देवोऽनयत्सविता सुपाणिस्तस्य वयं प्रसवे याम उर्वीः ॥६
प्रवाच्यं शश्वधा वीर्यन्तदिन्द्रस्य कर्म यदहिं विवृश्चत् ।
वि वज्रेण परिषदो जघानायन्नापोऽयनमिच्छमानाः ॥७

एतद्वचो जरितर्मापि मृष्ठा आ यत्ते घोषानुत्तरा युगानि ।
उक्थेषु कारो प्रति नो जुषस्व मा नो नि कः पुरुषत्रा नमस्ते ।।
ओ षु स्वसारः कारवे शृणोत ययौ वो दूरादनसा रथेन ।
नि षू नमध्वं भवता सुपारा अधो अक्षाः सिन्धवः स्रोत्याभिः ।। ६
आ ते कारो शृणवामा वचांसि ययाथ दूरादनसा रथेन ।
नि ते नंसै पीप्यानेव योषा मर्यायेव कन्या शश्वचै ते ।। १० । १३

नदियों को रोकने वाले वृत्र का संहार कर वज्रधारी इन्द्र ने हम दोनों नदियों का मार्ग खोल दिया । उत्तम बाहु वाले, तेजस्वी तथा संसार को प्रेरणा देने वाले इन्द्र ने हमें प्रेरणा दी है । हम आज्ञा के निर्देश से गमन करती हैं ।। ६ ।। इन्द्र द्वारा वृत्र-वध के पराक्रम-पूर्ण कार्य का सदा गान करना चाहिए । इन्द्र ने सब दिशाओं से बाधा देने वालों को खोज कर वज्र से मार डाला । तब गमनशील जल आने लगा ।। ७ ।। स्तुति करने वाले ! तुम अपनी प्रतिज्ञा को न भूलना । आने वाले यज्ञ के दिनों में स्तोत्र रच कर तुम हमारी पूजा करना । हम नदियाँ तुम्हें नमस्कार करती हैं । हमारा पुरुषों के मध्य निरादर न करना ।। ८ ।। हे परस्पर बहिन रूप दोनों नदियों ! मैं कौशिक स्तवन करता हूँ । मैं सुदूर से रथ में अश्व जोत कर आया हूँ । तुम नीची हो जाओ, जिससे मैं तुम्हें पार कर सकूं । स्रोत के जल के समान रथ चक्र के आधे भाग तक ऊंची रहकर ही प्रवाहित होओ ।। ६ ।। हे स्तुति करने वाले ! हम नदियों ने तुम्हारी बात सुन ली है । तुम दूर से आए हो, अतः शकट और रथ के साथ जाओ । जिस प्रकार माता पुत्र को स्तन पान कराने को तथा पत्नी पति से मिलने को झुकती है, उसी प्रकार हम भी तुम्हारे निमित्त झुकती हैं ।। १० ।। [१३]

यदङ्ग त्वा भरताः सन्तरेयुर्गव्यन्ग्राम इषित इन्द्रजूतः ।
अर्षादह प्रसवः सर्गतक्त आ वो वृणे सुमतिं यज्ञियानाम् ।। ११
अतारिषुर्भरता गव्यवः समभक्त विप्रः सुमतिं नदीनाम् ।
प्र पिन्वध्वमिषयन्तीः सुराधा आ वक्षणाः पृणध्वं यात शीभम् ।। १२

उद्व ऊर्मिः शम्या हन्त्वापो योक्त्राणि मुञ्चत ।
माऽदुष्कृतौ व्येनसाऽघ्न्यौ शूनमारताम् ।। १३ । १४

दोनों नदियो ! भरतवंश वाले, तुम्हें पार करने की इच्छा वाले भारतीय, इन्द्र द्वारा प्रेरित तुम्हारे द्वारा पार किए जायँगे। उन पार जाने या यत्न करने वालों को तुम अनुमति प्रदान कर चुकी हो, इसलिए मैं विश्वामित्र तुम्हारी सर्वत्र प्रशंसा करूंगा । तुम यजन करने योग्य हो ।। ११ ।। गोधन की कामना करने वाले भारतीय पार हो गए । विद्वानों ने नदियों का भले प्रकार स्तवन किया । तुम अन्य की कारणभूत तथा धन से सम्पन्न होकर लघु नदियों को भी जल से पूर्ण करती हुई द्रुत वेग से चलती रहो ।। १२ ।। दोनों नदियो ! तुम इस प्रकार प्रवाहित हो कि दोनों कीलें ऊपर रहें । तुम रज्जु को स्पर्श नहीं करना । पाप से रहित, कल्याण करने वाली तथा अनिद्य विपाशा और शुतुद्री तुम्हारी तरंग इस समय अधिक ऊंची न उठे ।। १३ ।। [१४]

३४ सूक्त

(ऋषि—विश्वामित्रः । देवता—इन्द्रः । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

इन्द्रः पूर्भिदातिरद्दासमर्कैर्विदद्वसुर्दयमानो वि शत्रून् ।
ब्रह्मजूतस्तन्वा वावृधानो भूरिदात्र आपृणद्रोदसी उभे ।। १
मखस्य ते तविषस्य प्र जूतिमियर्मि वाचममृताय भूषन् ।
इंद्र क्षितीनामसि मानुषीणां विशां दैवीनामुत पूर्वयावा ।। २
इंद्रो वृत्रमवृणोच्छर्धनीतिः प्र मायिनाममिनाद्वर्पणीतिः ।
अहन्व्यंसमुशधग्वनेष्वाविर्धेना अकृणोद्राम्याणाम् ।। ३
इन्द्रः स्वर्षा जनयन्नहानि जिगायोशिग्भिः पृतना अभिष्टिः ।
प्रारोचयन्मनवे केतुमह्नामविन्दज्ज्योतिर्बृहते रणाय ।। ४
इन्द्रस्तुजो बर्हणा आ विवेश नृवद्दधानो नर्या पुरूणि ।
अचेतयद्धिय इमा जरित्रे प्रेमं वर्णमतिरच्छुक्रमासाम् ।। ५ । १५

पुरों को तोडने वाले, महिमावान्, धनवान् इन्द्र ने अपने तेज से दस्युओं का संहार कर उन्हें जीत लिया। उन मंत्र द्वारा आकर्षित हुए, और बढ़े हुए शरीर और अद्भुत से शस्त्रों से युक्त इन्द्र ने आकाश और पृथिवी को पूर्ण किया ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! तुम उग्र तथा शक्तिशाली हो । अन्न के लिए मैं तुम्हें सजाकर, तुम्हारी प्रेरणा से ही स्तोत्र उच्चारण करता हूँ। तुम देवता और मनुष्य दोनों में अग्रगण्य हो ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! तुम विख्यातकर्मा हो। तुमने वृत्र को निवारण किया था। शत्रुओं के आक्रमण को रोकने वाले इन्द्र ने उन माया करने वालों का संहार कर डाला । शत्रु को मारने की इच्छा वाले इन्द्र ने जंगल में छिपे हुए कंधा-विहीन शत्रु को मार दिया। उन्होंने रमणीय गौओं को प्रकट किया ॥ ३ ॥ वे इन्द्र स्वर्ग प्राप्त कराने वाले हैं। उन्होंने दिन को प्रकट कर संग्राम की इच्छा वाले अङ्गिराओं का साथ देकर उनके विरोधियों की सेना को हराया । दिन के ध्वजरूप सूर्य को मनुष्यों के निमित्त प्रकाशित किया । इस प्रकार भीषण युद्ध के निमित्त अत्यन्त तेज प्राप्त किया ॥ ४ ॥ बाधा देने वालों तथा बल में बढ़ी हुई शत्रु-सेना के मध्य धन को ग्रहण कर इन्द्र जा घुसे । स्तुति करने वाले के लिए उन्होंने उषा को चैतन्यता देकर उसके श्वेत वर्ण को बढ़ाया ॥ ५ ॥ [१५]

महो महानि पनयन्त्यस्येन्द्रस्य कर्म पुरूणि ।
वृजनेन वृजिनान्त्सं पिपेष मायाभिर्दस्यूँरभिभूत्योजाः ॥ ६
युधेन्द्रो मह्ना वरिवश्चकार देवेभ्यः सत्पतिश्चर्षणिप्राः ।
विवस्वतः सदने अस्य तानि विप्रा उक्थेभिः कवयो गृणन्ति ॥ ७
सत्रासाहं वरेण्यं सहोदां ससवांसं स्वरपश्च देवीः ।
ससान यः पृथिवीं द्यामुतेमामिन्द्रं मदन्त्यनु धीरणासः ॥ ८
ससानात्याँ उत सूर्यं ससानेन्द्रः ससान पुरुभोजसं गाम् ।
हिरण्ययमुत भोगं ससान हत्वी दस्यून्प्रार्यं वर्णमावत् ॥ ९
इन्द्र ओषधीरसनोदहानि वनस्पतींरसनोदन्तरिक्षम् ।
विभेद वलं नुनुदे विवाचोऽथाभवद्दमिताभिक्रतूनाम् ॥ १०

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ॥ ११ ।१६

उन महान् इन्द्र द्वारा किये गए श्रेष्ठ कार्यों को साधकगण कीर्तन करते हैं। वे इन्द्र अपने बल से बड़े-बड़े बलवानों को पीस डालते हैं। उन विजेता इन्द्र ने दस्युओ को अपनी भेद नीति द्वारा पीस डाला ॥ ६ ॥ देवताओं के स्वामी और मनुष्यों को वर देने वाले इन्द्र ने बृहद् संग्राम में धन प्राप्त कर स्तुति करने वालों को प्रदान किया । विद्वान् स्तुतिकर्ता जन यजमान के गृह में मन्त्रों द्वारा इन्द्र का यश कीर्तन करते हैं ॥ ७ ॥ सर्व विजयी, वरण करने योग्य, स्वर्ग के स्वामी, दिव्य जलों के अधिपति इन्द्र के आनन्दित होने पर स्तोतागण प्रसन्नता प्राप्त करते हैं । वह इन्द्र पृथिवी, आकाश और अन्तरिक्ष को धारण करने वाले हैं ॥ ८ ॥ अश्व, सूर्य, गोधन, रत्न और सुवर्ण आदि यह सब इन्द्र के दानरूप हैं । उन्होंने पापियों का संहार कर आर्यों की सदा रक्षा की है ॥ ९ ॥ इन्द्र ने ही दान रूप दिन बनाया, उन्होंने ही ओषधियाँ दीं तथा अन्तरिक्ष और वनस्पितियाँ प्रदान कीं । उन्होंने मेघ को विदीर्ण कर शत्रुओं को नष्ट किया । इन्द्र के सामने जो भी विरोधी उपस्थित हुआ, उसी को उन्होंने मार डाला ॥ १० ॥ हे इन्द्र ! तुम अन्न प्राप्त करने में समर्थ हो। युद्ध में उत्साह द्वारा बढ़ते हो। तुम धन से हुए अपने वैभव से ही ऐश्वर्यवान् हो । तुम नायकों में श्रेष्ठ तथा स्तुतियों को सुनने वाले हो । तुम अपने उग्र कर्मों द्वारा युद्ध में शत्रु-नाश करते हुए धन जीतते हो। हम आश्रय प्राप्ति के निमित्त तुम्हारा आह्वान करते हैं ॥ ११ ॥ [१६]

३५ सूक्त

(ऋषि—विश्वामित्रः । देवता—इन्द्रः । छन्द—त्रिष्टुप् पंक्तिः)

तिष्ठा हरी रथ आ युज्यमाना याहि वायुर्न नियुतो नो अच्छ ।
पिबास्यन्धो अभिसृष्टो अस्मे इन्द्र स्वाहा ररिमा ते मदाय ॥ १ ॥
उपाजिरा पुरुहूताय सप्ती हरी रथस्य धूर्ष्वा युनज्मि ।

ब्रवद्यथा सम्भृतं विश्वतश्चिदुपेमं यज्ञमा वहात इन्द्रम् ॥२॥
उपो नयस्व वृषणा तपुष्पोतेमव त्वं वृषभ स्वधावः ।
ग्रसेतामश्वा वि मुचेह शोणा दिवेदिवे सदृशीरद्धि धानाः ॥३॥
ब्रह्मणा ते ब्रह्मयुजा युनज्मि हरी सखाया सधमाद आशू ।
स्थिरं रथं सुखमिन्द्राधितिष्ठन्प्रजानन्विद्वां उप याहि सोमम् ॥४॥
मा ते हरी वृषणा वीतपृष्ठा नि रीरमन्यजमानासो अन्ये ।
अत्यायाहि शश्वतो वयं तेऽरं सुतेभिः कृणवाम सोमैः ॥५।१७

हे इन्द्र ! तुम्हारे हरित् अश्व रथ में जोड़े जाते हैं । जैसे वायु अपने अश्वों की प्रतीक्षा करते हैं । वैसे ही तुम भी कुछ क्षण अपने अश्वों की प्रतीक्षा कर उनके सहित यहाँ आओ और हमारे सोम का पान करो । हम स्वाहाकार द्वारा तुम्हारी प्रसन्नता के लिए सोम अर्पित करते हैं ॥ १ ॥ अनेकों द्वारा बुलाए गए इन्द्र के शीघ्र आगमन के निमित्त रथ के आगे दोनों घोड़ों को हम जोड़ते हैं । विधिपूर्वक किए जाते इस यज्ञानुष्ठान में इन्द्र को दोनों घोड़े यहाँ ले आवें ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! तुम कामनाओं की वर्षा करने वाले तथा अन्नों के स्वामी हो । शत्रु के भय से मुक्त करने वाले अपने दोनों पराक्रमी घोड़ों को यहाँ ले आओ और इस यजमान के रक्षक बनो । तुम अपने दोनों घोड़ों को यहाँ खोल दो । वे यहाँ भोजन करें, तुम भी समान रूप वाले उपभोग्य धान्य का सेवन करो ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारे घोड़े मंत्रों द्वारा जुड़ते हैं । तुम्हारे जो अश्व युद्ध में ख्याति प्राप्त कर चुके हैं, उन्हीं को हम मन्त्रों द्वारा जोड़ते हैं । हे इन्द्र ! तुम मेधावी हो । अपनी बुद्धि से दृढ़ और सुखदायक रथ पर बैठ कर सोम के निकट पधारो ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! यजमान तुम्हारे पराक्रमी, सुन्दर पीठ वाले दोनों घोड़ों को आनन्द दें । हम तुमको उत्तम प्रकार से सिद्ध किए गए सोम के द्वारा तृप्त करेंगे । तुम बहुत से यजमानों को लाँघकर यहाँ शीघ्रतापूर्वक आओ ॥ ५ ॥ [१७]

तवायं सोमस्त्वमेह्यर्वाङ् शश्वत्तमं सुमना अस्य पाहि ।
अस्मिन्यज्ञे बर्हिष्या निषद्या दधिष्वेमं जठर इन्दुमिन्द्र ॥६॥

स्तीर्णं ते बर्हिः सुत इन्द्र सोमः कृता धाना अत्तवे ते हरिभ्याम् ।
तदोकसे पुरुशाकाय वृष्णे मरुत्वते तुभ्यं राता हवींषि ॥७॥
इमं नरः पर्वतास्तुभ्यमापः समिन्द्र गोभिर्मधुमन्तमक्रन् ।
तस्यागत्या सुमना ऋष्व पाहि प्रजानन्विद्वान्पथ्या अनु स्वाः ॥८॥
यां आभजो मरुत इंद्र सोमे ये त्वामवर्धन्नभवन्गणस्ते ।
तेभिरेतं सजोषा वावशानोऽग्नेः पिब जिह्वया सोममिन्द्र ॥९॥
इन्द्र पिब स्वधया चित्सुतस्याग्नेर्वा पाहि जिह्वया यजत्र ।
अध्वर्योर्वा प्रयतं शक्रहस्ताद्धोतुर्वा यज्ञं हविषो जुषस्व ॥१०॥
शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ॥ १० ॥ १८

हे इन्द्र ! यह सोम तुम्हारे लिए हैं, इसके समक्ष पधारो । प्रसन्न मुख द्वारा उस सिद्ध सोम का पान करो । इस यज्ञ में कुश पर प्रतिष्ठित होकर इस सोम को उदरस्थ करो ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! यह कुश तुम्हारे निमित्त बिछाए गए हैं और सोम का संस्कार किया गया है । तुम्हारे दोनों घोड़ों के लिए धान्य प्रस्तुत है । कुश तुम्हारा आसन है । बहुत से विद्वान् तुम्हारा स्तवन करते हैं । तुम कामनाओं की वर्षा करने वाले हो । तुम्हारे पास मरुद्गण रूप सेना है । तुम्हारे लिये विस्तृत हवियाँ प्रस्तुत हैं ॥ ७ ॥ हे इन्द्र ! अध्वर्यु, पाषाण और जल ने इस दूध मिश्रित सोम को तुम्हारे लिए मधुरता से पूर्ण किया है । तुम मेधावी एवं दर्शनीय हो । हमारी इन स्तुतियों को अपने हित में जानते हुए प्रसन्न मुख से सोम-पान करो ॥ ८ ॥ हे इन्द्र ! जिन मरुद्गण को तुम सोम-पान करते समय आदरयुक्त करते हो तथा जो मरुद्गण तुम्हारे सहायक होते हुए युद्ध में तुम्हें बढ़ाते हैं, उन्हीं मरुद्गण के साथ सोम-पीने की इच्छा करते हुए, अग्निरूप जिह्वा द्वारा सोम-रस को पीओ ॥ ९ ॥ हे इन्द्र ! तुम यजन-योग्य हो, अग्निरूप जिह्वा द्वारा इस संस्कारित सोम को पीओ । तुम अध्वर्यु द्वारा अर्पित सोम और होता द्वारा आहुति योग्य हवि को ग्रहण करो ॥ १० ॥ हे इन्द्र ! तुम अन्न-लाभ वाले युद्ध में उत्साह से बढ़ते हो । तुम धन और ऐश्वर्य से युक्त

नायकों में श्रेष्ठ, स्तुति के सुनने वाले, विकराल, युद्ध में शत्रु-संहारक और धन जीतने वाले हो। हम आश्रय प्राप्त करने के निमित्त तुम्हारा आह्वान करते है॥ ११ ॥ [१८]

३६ सूक्त

(ऋषि—विश्वामित्रः घोर आंगिरसः । देवता—इन्द्रः । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

इमामू षु प्रभृतिं सातये धाः शश्वच्छश्वदूतिभिर्यादमानः ।
सुतेसुते वावृधे वर्धनेभिर्यः कर्मभिर्महद्भिः सुश्रुतो भूत् ॥१॥
इन्द्राय सोमाः प्रदिवो विदाना ऋभुर्येभिर्वृषपर्वा विहायाः ।
प्रयम्यमानान्प्रति षू गृभायेन्द्र पिब वृषधूतस्य वृष्णः ॥२॥
पिबा वर्धस्व तव घा सुतास इन्द्र सोमासः प्रथमा उतेमे ।
यथापिबः पूर्व्याँ इन्द्र सोमाँ एवा पाहि पन्यो अद्या नवीयान् ॥३॥
महाँ अमत्रो वृजने विरप्श्युग्रं शवः पत्यते धृष्ण्वोजः ।
नाह विव्याच पृथिवी चनैनं यत्सोमासो हर्यश्वममन्दन् ॥४॥
महाँ उग्रो वावृधे वीर्याय समाचक्रे वृषभः काव्येन ।
इन्द्रो भगो वाजदा अस्य गावः प्र जायन्ते दक्षिणा अस्य पूर्वीः ॥५॥१९

हे इन्द्र ! धन देने के लिए मरुद्गण के सहित यहाँ आकर विशेष प्रकार से सिद्ध किए गए इस सोम को ग्रहण करो। वे इन्द्र अपने महान् कर्मों के द्वारा विख्यात है तथा सोम सिद्ध किये जाने वाले कर्म में हर बार पुष्टिदायक हवियों द्वारा बढ़ते हैं॥ १ ॥ प्राचीन काल में इन्द्र के लिए सोम अर्पण किया गया था, जिससे वे नियम-पालक, प्रकाशमान और महान् बने। हे इन्द्र ! इस अर्पित सोम को स्वीकार करो। यह पत्थर द्वारा कूटा हुआ सोम दिव्य फल देने वाला है, इसका तुम पान करो॥ २ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारे निमित्त प्राचीन काल से प्रसिद्ध सोम अभिनव रूप में संस्कारित किया गया है, इसे पीकर पुष्ट होओ। तुम स्तुति के योग्य हो। जैसे तुमने प्राचीन काल में सोम-पान किया था, वैसे ही इस समय सोम-पान करो॥ ३ ॥ जो इन्द्र महाबली तथा शत्रुओं को जीतने वाले हैं, जो इन्द्र शत्रुओं को युद्ध में

ललकारते हैं, उन इन्द्र का बल न जीतने योग्य है। उनका तेज सर्वत्र व्याप्त है। जब अश्वयुक्त इन्द्र को सोम पुष्ट करता है, तब पृथिवी और स्वर्ग भी उनको धारण करने की सामर्थ्य नहीं रखते ॥ ४ ॥ बलवान, पराक्रमी, कामनाओं की वर्षा करने वाले, दानशील इन्द्र वीरतापूर्ण यश के निमित्त वृद्धि को प्राप्त हुए स्तोत्र से संगति करते हैं। इन्द्र की सब गौऐं दूध देने वाली होकर प्रकटी हैं। इन्द्र अत्यन्त दान करने वाले हैं ॥ ५ ॥ [१९]

प्र यत्सिन्धवः प्रसवं यथायन्नापः समुद्रं रथ्येव जग्मुः ।
अतश्चिदिन्द्र सदसो वरीयान्यदीं सोमः पृणति दुग्धो अंशुः ॥६॥
समुद्रेण सिन्धवो यादमाना इन्द्राय सोमं सुषुतं भरन्तः ।
अंशुं दुहन्ति हस्तिनो भरित्रैर्मध्वः पुनन्ति धारया पवित्रैः ॥७॥
ह्रदाइव कुक्षयः सोमधानाः समी विव्याच सवना पुरूणि ।
अन्ना यदिन्द्रः प्रथमा व्याश वृत्रं जघन्वां अवृणीत सोमम् ॥८॥
आ तू भर माकिरेतत्परि ष्ठाद्विद्मा हि त्वा वसुपतिं वसूनाम् ।
इन्द्र यत्ते माहिनं दत्रमस्त्यस्मभ्यं तद्धर्यश्व प्र यन्धि ॥९॥
अस्मे प्र यन्धि मघवन्नृजीषिन्निन्द्र रायो विश्ववारस्य भूरेः ।
अस्मे शतं शरदो जीवसे धा अस्मे वीराञ्छश्वत इंद्र शिप्रिन् ॥१०॥
शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ॥११।२०

नदियाँ जब स्रोत के समान दूरस्थ सागर की ओर बहती हैं, तब रथ के समान जल दौड़ता है। उसी प्रकार वरण करने योग्य इन्द्र अन्तरिक्ष से इस लतारूप सुसिद्ध की ओर आते हैं ॥ ६ ॥ समुद्र से मिलने की इच्छा करने वाली नदियाँ जैसे समुद्र को भरती हैं, वैसे ही इन्द्र के निमित्त अध्वर्युगण छाने गए सोम को संस्कारित करते हुए हाथों से सोम-लता को दुहते हैं और पाषाण द्वारा सोम-रस को शुद्ध करते हुए मधुरतायुक्त बनाते हैं ॥ ७ ॥ सरोवर के समान इन्द्र का उदर सोम का आश्रय-स्थान है। वे एक साथ ही अनेक यज्ञों को पूर्ण करते हैं। इन्द्र ने भक्षण के योग्य सोम का सेवन किया

है। फिर वृत्र को निवारण कर देवताओं को भगा दिया ॥ ८ ॥ हे इन्द्र ! शीघ्र ही धन प्रदान करो। तुम्हारे दान को रोकने में कोई भी समर्थ नहीं है। तुम धन के स्वामी हो, यह हम जानते हैं। तुम्हारा धन श्रेष्ठ और पूजा के योग्य है, उसे हमको प्रदान करो ॥९॥ हे सरल प्रवृत्ति वाले मघवन् ! तुम सबके वरण करने योग्य हो। हमको उत्तम धन प्रदान करो। हमको सौ वर्षों तक जीने की सामर्थ्य दो। हमको चिरायुष्य वीर पुत्र प्रदान करो ॥१०॥ हे इन्द्र ! तुम अन्न लाभ वाले युद्ध में उत्साहपूर्वक वृद्धि को प्राप्त होते हो। तुम धन और ऐश्वर्य से युक्त, नायकों में श्रेष्ठ, स्तुति के श्रवण करने वाले, विकराल, रणक्षेत्र में शत्रु का नाश करने वाले और धन को जीतने में समर्थ हो। आश्रय-प्राप्त करने के निमित्त हम तुम्हारा आह्वान करते हैं ॥११॥ [२०]

३७ सूक्त

(ऋषि—विश्वामित्रः। देवता—इन्द्रः। छन्द—गायत्री, अनुष्टुप्)

वार्त्रहत्याय शवसे पृतनाषाह्याय च। इन्द्र त्वा वर्तयामसि ॥१॥
अर्वाचीनं सु ते मन उत चक्षु शतक्रतो। इन्द्र कृण्वन्तु वाघतः ॥२॥
नामानि ते शतक्रतो विश्वाभिर्गीर्भिरीमहे। इन्द्राभिमातिषाह्ये ॥३॥
पुरुष्टुतस्य धामभिः शतेन महयामसि। इन्द्रस्य चर्षणीधृतः ॥४॥
इन्द्रं वृत्राय हन्तवे पुरुहूतमुप ब्रुवे। भरेषु वाजसातये ॥५।२१॥

हे इन्द्र ! वृत्र को नाश करने वाले बल को प्राप्त करने और शत्रु की सेना को हराने के लिए हम तुम्हें प्रेरित करते हैं ॥ १ ॥ हे शतकर्मा इन्द्र ! तुम्हारे मन और नेत्र को हर्ष प्रदान करते हुए, स्तुति करने वाले तुम्हें हमारे सामने बुलावें ॥२॥ हे इन्द्र ! तुम शतकर्म वाले हो। अहंकारी शत्रुओं को परास्त करने वाले रणक्षेत्र में हम तुम्हारा स्तवन करते हुए यशोगान करेंगे ॥३॥ हे इन्द्र ! तुम सब प्राणियों द्वारा स्तुति करने के योग्य हो। तुम्हारे तेज की कोई सीमा नहीं है। तुम मनुष्यों के स्वामी हो। हम तुम्हारी स्तुति करते हैं ॥४॥ हे इन्द्र ! तुम्हारा बहुतों ने आह्वान किया है। वृत्र-समान

शत्रुओं का नाश करने और धन-प्राप्त करने के निमित्त हम भी तुम्हारा आह्वान करते हैं ॥५॥ [२१]

वाजेषु सासहिर्भव त्वामीमहे शतक्रतो इंद्र वृत्राय हन्तवे ॥६॥
द्युम्नेषु पृतनाज्ये पृत्सुतूर्षु श्रवःसु च । इन्द्र साक्ष्वाभिमातिषु ॥७॥
शुष्मिन्तमं न ऊतये द्युम्निनं पाहि जागृविम् इंद्र सोमं शतक्रतो ॥८॥
इन्द्रियाणि शतक्रतो या ते जनेषु पञ्चसु । इंद्र तानि त आ वृणे ॥९॥
अगन्निन्द्र श्रवो बृहद् द्युम्नं दधिष्व दुष्टरम् ।

उत्ते शुष्मं तिरामसि ॥१०॥

अर्वावतो न आ गह्यथो शक्र परावतः ।

उ लोको यस्ते अद्रिव इन्द्रेह तत आ गहि ॥११।२॥

हे सैकड़ों कर्मों में समर्थ इन्द्र ! तुम रणक्षेत्र में शत्रुओं को हराने में समर्थ हो । वृत्र के संहार करने के लिए हम तुम्हारा स्तवन करते हैं ॥६॥ हे इन्द्र ! जो शत्रु युद्ध में अहङ्कार करने वाले, धन में प्रतिस्पर्द्धा वाले तथा वीर सैनिकों और पराक्रम में हमको चुनोती देने वाले हैं, तुम उनको हराओ ॥ ७ ॥ हे शतकर्मा इन्द्र ! हमको आश्रय देने के निमित्त अत्यन्त शक्तिशाली, तेज-सम्पन्न और दुःस्वप्नों का निवारण करने वाले सोम का पान करो ॥८॥ हे शतकर्मयुक्त इन्द्र ! पंचों में जो इन्द्रियाँ हैं, उन सब को हम तुम्हारे द्वारा प्रेरित की जाने वाली मानते है ॥ ९ ॥ हे इन्द्र ! प्रदत्त हवि तुम्हें प्राप्त हो । शत्रुओं को कठिनता से प्राप्त अन्न हमको दो । हम तुम्हारे श्रेष्ठ बल को बढ़ावेंगे ॥१०॥ हे इन्द्र ! पास हो या दूर जहाँ कहीं भी हो, वहीं से हमारे पास आओ । तुम वज्र धारण करने वाले हो । तुम अपने दिव्य स्थान से हमारे इस यज्ञ को प्राप्त होओ ॥११॥ [२२]

३८ सूक्त

(ऋषि — प्रजापतिः । देवता—इन्द्रः । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

अभि तष्टेव दीधया मनीषामत्यो न वाजी सुधुरो जिहानः ।
अभि प्रियाणि मर्मृशत्पराणि कवीँरिच्छामि सन्दृशे सुमेधाः ॥१॥

इनोत पृच्छ जनिमा कवीनां मनोधृतः सुकृतस्तक्षत द्याम् ।
इमा उ ते प्रण्यो वर्धमाना मनोवाता अध नु धर्मणि ग्मन् ॥२॥
नि षीमिदत्र गुह्या दधाना उत क्षत्राय रोदसी समञ्जन् ।
सं मात्राभिर्ममिरे येमुरुर्वी अन्तर्मही समृते धायसे धुः ॥३॥
आतिष्ठन्तं परि विश्वे अभूषञ्छ्रियो वसानश्चरति स्वरोचिः ।
महत्तद्वृष्णो असुरस्य नामा विश्वरूपो अमृतानि तस्थौ ॥४॥
असूत पूर्वो वृषभो ज्यायानिमा अस्य शुरुधः सन्ति पूर्वीः ।
दिवो नपाता विदथस्य धीभिः क्षत्रं राजाना प्रदिवो दधाथे ॥५।२३॥

हे स्तुति करने वालो ! त्वष्टा के समान, इन्द्र के स्तोत्रों को चैतन्य करो । श्रेष्ठ, भार वहन करने वाले, वेगवान् अश्व के समान काम में लगा हुआ तथा इन्द्र के कर्मों का चिन्तन करता हुआ मैं अपनी बुद्धि की वृद्धि करता हुआ स्वर्ग में गए हुए विद्वानों के दर्शन की कामना करता हूं ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! उन विद्वानों के जन्म के सम्बन्ध में उनके गुरुओं से पूछो, जिन्होंने मनोनिग्रह तथा पवित्र कार्यों के द्वारा अपने को स्वर्ग-भागी बनाया । इस यज्ञ में तुम्हारे निमित्त रची गई स्तुतियाँ वृद्धि को प्राप्त होती हुई, मन के समान वेग से गमन करती हैं ॥ २ ॥ विद्वजनों ने इस पृथिवी पर उत्तम कर्म करते हुए पृथिवी और आकाश को बल प्राप्ति के लिए सजाया । उन्होंने गूढ़ तत्वों द्वारा भूमि और स्वर्ग को स्थिर किया । उन्होंने विशाल एवं विस्तृत पृथिवी और आकाश को सुसंगत किया तथा आकाश और पृथिवी के मध्य अन्तरिक्ष का स्थापन किया ॥ ३ ॥ समस्त मेधावीजनों ने रथ में विराजमान इन्द्र को सजाया । अपने स्वभाव से ही तेजवान् इन्द्र प्रकाशित हुए स्थित हैं । कामनाओं की वर्षा करने वाले उग्रकर्मा इन्द्र विचित्र कीर्ति वाले हैं । वे विश्वरूप को धारण करने तथा अमृतत्व में व्याप्त हैं ॥ ४ ॥ कामनाओं की वर्षा करने वाले, प्राचीन तथा सर्वोत्कृष्ट इन्द्र ने जलों को उत्पन्न किया । उत्पन्न हुए जल ने उनकी पिपासा का निवारण किया । स्वर्ग के पौत्र रूप, सुशोभित इन्द्र और वरुण दोनों तेजस्वी स्तोता के स्तवन से हमारे निमित्त सुखकारी अन्न धारण करते हैं ॥५॥ [२३]

त्रीणि राजाना विदथे पुरूणि परि विश्वानि भूषथः सदांसि ।
अपश्यमत्र मनसा जगन्वान्व्रते गन्धर्वां अपि वायुकेशान् ॥६॥
तदिन्न्वस्य वृषभस्य धेनोरा नामभिर्ममिरे सक्म्यं गोः ।
अन्यदन्यदसुर्यं वसाना नि मायिनो ममिरे रूपमस्मिन् ॥७॥
तदिन्न्वस्य सवितुर्नकिर्मे हिरण्ययीममतिं यामशिश्रेत् ।
आ सुष्टुती रोदसी विश्वमिन्वे अपीव योषा जनिमानि वव्रे ॥८॥
युवं प्रत्नस्य साधथो महो यद्दैवी स्वस्तिः परि णः स्यातम् ।
गोपाजिह्वस्य तस्थुषो विरूपा विश्वे पश्यन्ति मायिनः कृतानि ॥९॥
शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥१०।२४॥

हे इन्द्र और वरुण ! व्यापक और सम्पूर्ण तीनों सवनों को इस यज्ञ में सुशोभित करो। हे इन्द्र ! तुम इस यज्ञ में पधारे थे। यहाँ मैंने वायु के समान विशिष्ट केश वाले गन्धर्वों के दर्शन किये थे ॥ ६ ॥ कामनाओं की वर्षा करने वाले इन्द्र के निमित्त जो यजमान हवि-योग्य रस को गौओं से दोहन करते हैं तथा जिन यजमानों के अनेक नाम हैं, वे नवीन पराक्रम धारण कर अपने-अपने कार्यों को इन्द्र के निमित्त समर्पित करते हैं ॥ ७ ॥ सूर्य का स्वर्णमय प्रकाश असीमित है। जो इस प्रकाश के आश्रयभूत हैं, वे सूर्य श्रेष्ठ स्तुतियों द्वारा प्रशंसित होते हुए, माता द्वारा सन्तान का आलिंगन करने के समान सर्वव्याप्त आकाश-पृथिवी का आलिंगन करते हैं ॥ ८ ॥ हे इन्द्र और वरुण ! पुरातन स्तोत्र उच्चारण करने वाले का कल्याण करो। हमारी सब ओर से रक्षा करो। इन्द्र की जिह्वा रूप वाणी सबको निर्भय बनाती है। इन्द्र स्थिर-चित्त हैं। उनके विविध कार्यों को सभी मेधावीजन देखते हैं ॥ ९ ॥ हे इन्द्र ! तुम अन्न-लाभ वाले युद्ध में उत्साह-पूर्वक वृद्धि को प्राप्त होते हो। तुम धन और ऐश्वर्य से युक्त, नेताओं में श्रेष्ठ, स्तुति सुनने वाले, उग्र, रणक्षेत्र में शत्रुओं का संहार करने वाले और धन को जीतने वाले हो। आश्रय-प्राप्ति के निमित्त हम तुम्हारा आह्वान करते हैं ॥१०॥ [२४]

३९ सूक्त (चौथा अनुवाक)

(ऋषि—विश्वामित्रः । देवता—इन्द्रः । छन्द–त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

इन्द्रं मतिर्हृद आ वच्यमानाच्छा पतिं स्तोमतष्टा जिगाति ।
या जागृविर्विदथे शस्यमानेन्द्र यत्ते जायते विद्धि तस्य ॥१॥
दिवश्चिदा पूर्व्या जायमाना वि जागृविर्विदथे शस्यमाना ।
भद्रा वस्त्राण्यर्जुना वसाना सेयमस्मे सनजा पित्र्या धीः ॥२॥
यमा चिदत्र यमसूरसूत जिह्वाया अग्रं पतदा ह्यस्थात् ।
वपूंषि जाता मिथुना सचेते तमोहना तपुषो बुध्न एता ॥३॥
नकिरेषां निन्दिता मर्त्येषु ये अस्माकं पितरो गोषु योधाः ।
इन्द्र एषां दृंहिता माहिनावानुद्गोत्राणि ससृजे दंसनावान् ॥४॥
सखा ह यत्र सखिभिर्नवग्वैरभिज्ञ्वा सत्वभिर्गा अनुग्मन् ।
सत्यं तदिन्द्रो दशभिर्दशग्वैः सूर्यं विवेद तमसि क्षियन्तम् ॥५॥२५॥

हे इन्द्र ! तुम संसार के स्वामी हो । हृदय से निकले हुए तथा स्तुति करने वालों के द्वारा सम्पादन किये हुए स्तोत्र तुम्हारे सम्मुख उपस्थित होते हैं । जो स्तुति मेरे द्वारा उत्पन्न हुई है और तुम्हें चैतन्य कर यज्ञ में उच्चारण की जाती है, उसे स्वीकार करो ॥१॥ हे इन्द्र ! जो स्तुति सूर्योदय से भी पूर्व उत्पन्न होकर यज्ञ में उच्चारण की जाती हुई तुम्हें चैतन्य करती है, वह कल्याण करने वाली उज्ज्वल स्तुति हमारे पूर्वजों से प्राप्त होने वाली तथा सनातन है । ॥२॥ अश्विद्वय की माता ने उन्हें जन्म दिया । उनकी स्तुति के निमित्त मेरी जिह्वा का अग्रभाग चंचल हो उठा है । अन्धकार का नाश करने वाले दिन के प्रारम्भ में आते हुए दोनों स्तुतियों से सुसंगति करते हैं ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! गोधन-प्राप्ति के निमित्त संग्राम करने वाले हमारे पितरों की पृथिवी पर कोई निन्दा नहीं करता । अङ्गिराओं को उन महिमावान्, यशस्वी इन्द्र ने समृद्ध गोधन प्रदान किया ॥ ४ ॥ अङ्गिराओं के मित्र इन्द्र जब घुटने के बल गोधन की खोज में पर्वत पर चढ़े थे, तब उन अङ्गिराओं ने अंधेरे में छिपे सूर्य का दर्शन किया ॥५॥ [२५]

इन्द्रो मधु सम्भृतमुस्रियायां पद्वद्विवेद शफवन्नमे गोः ।
गुहा हितं गुह्यं गूळहमप्सु हस्ते दधे दक्षिणे दक्षिणावान् ॥६॥
ज्योतिर्वृणीत तमसो विजानन्नारे स्याम दुरितादभीके ।
इमा गिर सोमपाः सोमवृद्ध जुषस्वेन्द्र पुरुतमस्य कारोः ॥७॥
ज्योतिर्यज्ञाय रोदसी अनु ष्यादारे स्याम दुरितस्य भूरेः ।
भूरि चिद्धि तुजतो मर्त्यस्य सुपारासो वसवो बर्हणावत् ॥८॥
शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥९॥२६॥

इन्द्र ने प्रथम दूध देने वाली गौओं पर मधुर रस सींचा। फिर चरण और खुर से युक्त उस गोधन को ले आये। गुफा में स्थित, अन्तरिक्ष में छिपे हुए मायामय असुर को इन्द्र ने दक्षिण हस्त द्वारा पकड़ लिया ॥ ६॥ इन्द्र ने रात्रि के गर्भ से उत्पन्न होकर प्रकाश धारण किया। हम पाप-रहित तथा निर्भय स्थान में रहने की इच्छा करते हैं। हे सोमपायी इन्द्र ! तुम स्तोता की इस स्तुति को स्वीकार करो ॥७॥ यज्ञ के लिये आकाश और पृथिवी को सूर्य प्रकाशित करें। हम पाप से दूर रहने की इच्छा करते रहते हैं। हे वसु देवताओ ! तुम स्तुति द्वारा अनुकूल होते हो। इस धन को उदार दानी मनुष्य के लिए दो ॥ ८ ॥ हे इन्द्र ! तुम अन्न-लाभ वाले युद्ध में उत्साह-पूर्वक बढ़ते हो। तुम धन और ऐश्वर्य से युक्त, नेताओं में श्रेष्ठ, स्तुति सुनने वाले, उग्र, रणक्षेत्र में शत्रुओं को मारने वाले तथा धन को जीतने वाले हो। आश्रय प्राप्ति के लिए हम तुम्हारा आह्वान करते हैं ॥९॥ [२६]

४० सूक्त

(ऋषि—विश्वामित्रः । देवता—इन्द्रः । छन्द—गायत्री)

इन्द्र त्वा वृषभं वयं सुते सोमे हवामहे । स पाहि मध्वो अन्धसः ॥१॥
इन्द्र क्रतुविदं सुतं सोमं हर्य पुरुष्टुत । पिबा वृषस्व तातृपिम् ॥२॥
इन्द्र प्र णो धितावानं यज्ञं विश्वेभिर्देवेभिः । तिर स्तवान विश्पते ॥३॥

इन्द्र सोमाः सुता इमे तव प्र यंति सत्पते । क्षयं चन्द्रास इन्दवः ॥४॥
दधिष्वा जठरे सुतं सोममिन्द्र वरेण्यम् । तव द्युक्षास इन्दवः ॥५।१॥

हे इन्द्र ! तुम कामनाऐं पूर्ण करने वाले हो। इस संसकारित सोम के निमित्त हम तुम्हारा आह्वान करते हैं। आनन्ददायक अन्न मिश्रित मधुर सोम का पान करो ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! तुम बहुतों द्वारा स्तुति किये गए हो। यह छाना हुआ सोम वृद्धि को बढ़ाने वाला है। इसे पीने की इच्छा प्रकट करते हुए इस तृप्त करने वाले सोम से अपने उदर को सींचो ॥ २ ॥ हे मरुतों के स्वामी इन्द्र ! समस्त यजन योग्य देवताओं के सहित हमारे इस हव्ययुक्त यज्ञ को भले प्रकार बढ़ाओ ॥ ३ ॥ हे सत्य के स्वामी इन्द्र ! हमारे द्वारा दिया हुआ प्रसन्नताप्रद, तेजयुक्त निष्पन्न सोम तुम्हारे उदर में प्रविष्ट हो रहा है इसे धारण करो ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! यह निष्पन्न सोम सब के लिए वरण करने योग्य है। इसे अपने उदर में रखो। यह अत्यन्त उज्ज्वल सोमरस तुम्हारे साथ स्वर्ग में निवास करता है ॥५॥ [१]

गिर्वणः पाहि नः सुतं मधोर्धाराभिरज्यसे । इन्द्र त्वादातमिद्यशः ॥६॥
अभि द्युम्नानि वनिन इन्द्रं सचन्ते अक्षिता । पीत्वी सोमस्य वावृधे ॥७
अर्वावतो न आ गहि परावतश्च वृत्रहन् । इमा जुषस्व नो गिरः ॥८॥
यदन्तरा परावतमर्वावतं च हूयसे । इन्द्रेह तत आ गहि ॥९।२॥

हे इन्द्र ! तुम स्तुति के योग्य हो। तुम आह्लादक सोम की धारा से हर्षित होते हो। हमारे इस सुसिद्ध सोम का पान करो। तुम्हारे द्वारा वृद्धि को प्राप्त हुआ अन्न हमको मिलता है ॥ ६ ॥ देवताओं का यज्ञ करने वालों की उज्ज्वल, अक्षुण्ण, सोमयुक्त हवियाँ इन्द्र के समक्ष उपस्थित होती हैं। इन्द्रदेव सोम पीकर बढ़ते हैं ॥ ७ ॥ हे इन्द्र ! तुमने वृत्र का हनन किया था। तुम पास या दूर जहाँ कहीं हो, वहीं से हमारी ओर आते हुए हमारी स्तुति को स्वीकार करो ॥ ८ ॥ हे इन्द्र ! तुम दूर, पास और मध्य प्रदेश में बुलाये जाते हो। इस यज्ञ में सोम पीने के निमित्त आओ ॥९॥ [२]

४१ सूक्त

(ऋषि—विश्वामित्रः । देवता—इन्द्रः । छन्द—गायत्री)

आ तू न इन्द्र मद्रयग्घुवानः सोमपीतये । हरिभ्यां याह्यद्रिवः ॥१॥
सत्तो होता न ऋत्वियस्तिस्तिरे बर्हिरानुषक् । अयुज्रन्प्रातरद्रयः ॥२॥
इमा ब्रह्म ब्रह्मवाहः क्रियन्त आ बर्हिः सीद । वीहि शूर पुरोळाशम् ॥३॥
रारन्धि सवनेषु ण एषु स्तोमेषु वृत्रहन् । उक्थेष्विन्द्र गिर्वणः ॥४॥
मतयः सोमपामुरुं रिहन्ति शवसस्पतिम् । इन्द्रं वत्सं न मातरः ॥५।३॥

हे वज्रिन् ! होताओं द्वारा बुलाये जाने पर हमारे इस यज्ञ में अपने अश्वों के सहित सोम-पान के निमित्त आओ ॥१॥ हे इन्द्र ! ऋत्विक् होता तुम्हारे आह्वान के निमित्त हमारे यज्ञ में बैठे हैं। परस्पर मिलाकर कुश बिछाए गए हैं। प्रातः सवन में सोम सिद्ध के लिए पाषाण भी प्रस्तुत हैं। इसलिये सोम पीने को यहाँ आओ ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! तुम स्तुति द्वारा प्राप्त होओ। तुम वीर हो। हमारे द्वारा दिए गये पुरोडाश का सेवन करो ॥३॥ हे इन्द्र ! तुम वृत्र को मारने वाले और स्तुति के योग्य हो। हमारे यज्ञ में सवन-त्रय में उच्चारित स्तुतियों में व्याप्त होओ ॥ ४ ॥ सोम पीने वाले, बल के स्वामी, महान् इन्द्र को, गौओं द्वारा बछड़ों को चाटने के समान स्तुतियाँ चाटती हैं ॥५॥ [३]

स मन्दस्वा ह्यन्धसो राधसे तन्वा महे । न स्तोतारं निदे करः ॥६॥
वयमिन्द्र त्वायवो हविष्मन्तो जरामहे । उत त्वमस्मयुर्वसो ॥७॥
मारे अस्मद्वि मुमुचो हरिप्रियार्वाङ् याहि । इन्द्र स्वधावो मत्स्वेह ॥८॥
अर्वाञ्चं त्वा सुखे रथे वहतामिन्द्र केशिना । घृतस्नू बर्हिरासदे ॥९।४॥

हे इन्द्र ! धन देने के निमित्त इस सोम द्वारा अपने शरीर को पुष्ट करो। मुझसे स्तुति करने वाले की कभी निन्दा न हो ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! हम तुम्हारी कामना करते हुए हवि-युक्त स्तुति करते हैं। तुम हवि ग्रहण करने के निमित्त हमारी रक्षा करो ॥ ७ ॥ हे इन्द्र ! तुम अपने अश्वों से प्रेम

करते हो । अपने घोड़ों को हमसे दूर न खोलो । हमारे पास आओ । इस यज्ञ में सोम से हर्ष प्राप्त करो । ॥ ८ ॥ हे इन्द्र ! श्रम के स्वेद से युक्त तुम्हारे बड़े केश वाले अश्व, तुम्हारे बैठने योग्य इस कुश के आसन के सामने, सुख देने वाले रथ से ले आवें ॥ ९ ॥ [४]

४२ सूक्त

(ऋषि—विश्वामित्रः । देवता—इन्द्रः । छन्द-गायत्री)

उप नः सुतमा गहि सोममिन्द्र गवाशिरम् । हरिभ्यां यस्ते अस्मयुः ॥१
तमिन्द्र मदमा गहि बर्हिःष्ठां ग्रावभिः सुतम् । कुविन्न्वस्य तृप्णवः ॥१
इन्द्रमित्था गिरो ममाच्छागुरिषिता इतः आवृते सोमपीतये ॥३
इन्द्रं सोमस्य पीतये स्तोमैरिह हवामहे । उक्थेभिः कुविदागमत् ॥४
इन्द्र सोमाः सुता इमे तान्दधिष्व शतक्रतो ।
जठरे वाजिनीवासो ॥५।५

हे इन्द्र ! हमारा सोम दूध मिलाया हुआ सुसिद्ध है । उसके समीप पधारो । तुम्हारा रथ घोड़े सहित हमसे मिलने की इच्छा करता है ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! पाषाणों से कुटकर छाना गया यह, सोम कुश पर रखा है । तुम इसका सामीप्य प्राप्त करो । तुम इसे यथेष्ठ मात्रा में पीकर तृप्ति को प्राप्त करो ॥ २ ॥ हमारी स्तुति रूप वाणी इन्द्र के निमित्त उच्चारित होती हुई सोम-पान के लिए इन्द्र का आह्वान करती हुई, यज्ञ-स्थान में चल कर इन्द्र का सामीप्य प्राप्त करे ॥ ३ ॥ स्तोत्रों तथा प्रशंसनीय स्तुतियों द्वारा यज्ञ में सोम पान के निमित्त हम इन्द्र का आह्वान करते हैं । वे बहुत बार आह्वान किये गए इन्द्र हमारे यज्ञ में पधारें ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! तुम सैकड़ों कर्मों से युक्त हो । तुम्हारे निमित्त यह संस्कारित सोम प्रस्तुत है । इसे अपने उदर में धारण करो हमारे लिए अन्न तथा धन प्रदान करो ॥ ५ ॥

विद्मा हि त्वा धनञ्जयं वाजेषु दधृषं कवे । अधा ते सुम्नमीमहे ॥६
इममिन्द्र गवाशिरं यवाशिरं च नः पिब । आगत्या वृषभिः सुतम् ॥७
तुभ्येदिन्द्र स्व ओक्ये सोमं चोदामि पीतये । एष रारन्तु ते हृदि ॥८

त्वां सुतस्य पीतये प्रत्नमिन्द्र हवामहे । कुशिकासो अवस्यवः ॥९।६

हे विद्वन् ! हे इन्द्र ! संग्राम भूमि में तुम शत्रुओं को हराने वाले तथा उनके धनों को जीतने वाले हो । ऐसा जानते हुए हम तुमसे धन मांगते हैं ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! हमारे यज्ञ में आकर इस दुग्धादि मिश्रित किये निष्पन्न सोम रस को पीओ ॥ ७ ॥ हे इन्द्र ! इस सुसंस्कारित सोम-रस को तुम्हारे पान करने के निमित्त ही हम तुम्हारे उदर में प्रविष्ट करते हैं । इससे तुम्हारा मन तृप्त होता हुआ पुष्टि को प्राप्त करेगा ॥ ८ ॥ हे इन्द्र ! तुम प्राचीन हो । हम कौशिकवंशीय ऋषिगण तुम्हारे द्वारा रक्षा-साधन प्राप्त करने की कामना करते हुये इस सुसंस्कारित सोम को पान करने के निमित्त सुन्दर स्तुति रूप वाणी से तुम्हारा आह्वान करते हैं ॥ ९ ॥ [६]

४३ सूक्त

(ऋषि - विश्वामित्रः । देवता—इन्द्रः । छन्द—पंक्तिः, त्रिष्टुप्)

आ याह्यर्वाङुप वन्धुरेष्ठास्तवेदनु प्रदिवः सोमपेयम् ।
प्रिया सखाया वि मुचोप बर्हिस्त्वामिमे हव्यवाहो हवन्ते ॥१
आ याहि पूर्वीरति चर्षणीराँ अर्य आशिष उप नो हरिभ्याम् ।
इमा हि त्वा मतयः स्तोमतष्टा इन्द्र हवंते सख्यं जुषाणाः ॥२
आ नो यज्ञं नमोवृधं सजोषा इन्द्र देव हरिभिर्याहि तूयम् ।
अहं हि त्वा मतिभिर्जोहवीमि घृतप्रयाः सधमादे मधूनाम् ॥३
आ च त्वामेता वृषणा वहातो हरी सखाया सुधुरा स्वङ्गा ।
धानावदिन्द्रः सवनं जुषाणः सखा सख्युः शृणवद्वन्दनानि ॥४
कुविन्मा गोपां करसे जनस्य कुविद्राजानं मघवन्नृजीषिन् ।
कुविन्म ऋषिं पपिवांसं सुतस्य कुविन्मे वस्वो अमृतस्य शिक्षाः ॥५
आ त्वा बृहन्तो हरयो युजाना अर्वागिन्द्र सधमादो वहन्तु ।
प्र ये द्विता दिव ऋञ्जन्त्याताः सुसम्मृष्टासो वृषभस्य मूराः ॥६
इन्द्र पिब वृषधूतस्य वृष्ण आ यं ते श्येन उशते जभार ।

यस्य मदे च्यावयसि प्र कृष्टीर्यस्य मदे अप गोत्रा ववर्थ ॥७
शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥८॥७

हे इन्द्र ! अपने जुएयुक्त रथ द्वारा हमको प्राप्त होओ । यह पुरातन कालीन सोम तुम्हारे निमित्त ही तैयार हुआ है । तुम अपने प्रिय मित्ररूप अश्व को कुशों के समीप खोलो । यह ऋत्विग्गण सोम-पान के निमित्त तुम्हारा आह्वान कर रहे हैं ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! हे प्रभो ! तुम सभी प्राचीन मनुष्यों को लाँघकर यहाँ आओ । अपने अश्व के सहित यहां आकर सोम-पान करो । हमारी इस प्रार्थना पर ध्यान दो । यह मित्रता की कामना वाली स्तुतियाँ स्तोताओं के मुख से उच्चारण की जाती हुई तुम्हें बुलाती हैं ॥२॥ हे इन्द्र ! तुम प्रकाशमान हो । हमारे अन्न को बढ़ाने वाले इस यज्ञ में अपने अश्व के सहित शीघ्र पधारो । घृत-अन्न से युक्त हवि सहित सोम पीने के निमित्त स्तुतियों द्वारा तुम्हें बुलाते हैं ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारे सेचन कर्म में समर्थ सुन्दर धुरायुक्त दोनों मित्र-रूप रमणीय अश्व तुम्हें यज्ञ स्थान को प्राप्त कराते हैं । भुने हुए धान्ययुक्त सवन का सेवन करते हुए तुम मित्र-भाव से हम स्तुति करने वालों की स्तुति सुनो ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! मुझे मनुष्यों की रक्षा करने की सामर्थ्य प्रदान करो । तुम सोम से युक्त रहते हो मुझे सब का आधिपत्य प्रदान करो । मुझे ऋषि बनाओ और सोम के पीने के योग्य बनाते हुए कभी भी क्षय न होने वाला धन दो ॥ ५ ॥ हे इन्द्र ! रथ में जुते हुए महान् अश्व तुम्हें हमारे सामने लावें । तुम अभीष्ट वर्षक हो । तुम्हारे अश्व शत्रुओं का नाश करने वाले हैं । इन्द्र के हाथों से चलते हुए वे अश्व दिशाओं की परिधि में चलते हुए आकाश-मार्ग द्वारा हमारे सम्मुख आते हैं ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! तुम सोम की कामना करते हो । तुम इच्छित फल देने वाले और पाषाण द्वारा सिद्ध किए सोम को पीने वाले हो । श्येन तुम्हारे निमित्त सोम लाता है । सोम से उत्पन्न हर्ष द्वारा तुम शत्रुता करने वाले व्यक्तियों को धराशायी करते हो ॥ ७ ॥ हे इन्द्र ! तुम अन्न-लाभ वाले युद्ध में उत्साह से

बढ़ते हो । धन और ऐश्वर्य से युक्त, नायकों में श्रेष्ठ तथा स्तुतियों के सुनने वाले हो । भीषण युद्ध में भी शत्रु का विनाश कर धन जीतते हो । आश्रय प्राप्त करने के निमित्त हम तुम्हारा आह्वान करते हैं ॥ ८ ॥ [७]

४४ सूक्त

(ऋषि—विश्वामित्रः । देवता—इन्द्रः । छन्द—बृहती, अनुष्टुप्)

अयं ते अस्तु हर्यतः सोम आ हरिभिः सुतः ।
जुषाण इन्द्र हरिभिर्न आ गह्या तिष्ठ हरितं रथम् ॥१
हर्यन्नुषसमर्चयः सूर्यं हर्यन्नरोचयः
विद्वांश्चिकित्वान्हर्यश्व वर्धस इन्द्र विश्वा अभि श्रियः ॥२
द्यामिन्द्रो हरिधायसं पृथिवीं हरिवर्पसम् ।
अधारयद्धरितोर्भूरि भोजनं ययोरन्तर्हरिश्चरत् ॥३
जज्ञानो हरितो वृषा विश्वमा भाति रोचनम् ।
हर्यश्वो हरितं धत्त आयुधमा वज्रं बाह्वोर्हरिम् ॥४
इन्द्रो हर्यन्तमर्जुनं वज्रं शुक्रैरभीवृतम् ।
अपावृणोद्धरिभिरद्रिभिः सुतमुद्गा हरिभिराजत ॥५।८

हे इन्द्र ! यह सोम पाषाणों से कूटकर सिद्ध किया गया है । यह प्रीति को बढ़ाने वाला तथा रमणीय सोम तुम्हारे निमित्त है । तुम अपने अश्वों से युक्त रथ पर चढ़ कर हमारे सामने आओ ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! तुम सोम की इच्छा वाले होकर सूर्य को प्रकाशमान बनाते हो । हे अश्वसंयुक्त इन्द्र ! तुम मेधावी तथा हमारी कामनाओं के जानने वाले हो । तुम इच्छित प्रदान कर हमारे धन की वृद्धि करते हो ॥ २ ॥ हरे रङ्ग वाली किरणों से युक्त सूर्य लोक और हरे रङ्ग वाली औषधियों से हरी हुई पृथिवी को इन्द्र धारण करते हैं । हरिद्वर्णा आकाश-पृथिवी के मध्य इन्द्र अपने अश्व के लिए भोजन लेते हैं तथा इसी आकाश-पृथिवी के मध्य घूमते हैं ॥ ३ ॥ अभीष्टों को प्रदान करने वाले इन्द्र उत्पन्न होते ही सब लोकों को प्रकाशित करते हैं ।

हरे अश्वों वाले इन्द्र अपने हाथों में हरे शस्त्र धारण करते हुए शत्रुओं को नष्ट करने वाला वज्र उठाते हैं ॥ ४ ॥ इंद्र ने उज्ज्वल, दुग्धादि द्वारा मिश्रित तथा पाषाणों द्वारा निष्पन्न सोम को प्रकट किया। उन्होंने अश्वों को साथ लेकर पणियों द्वारा चुराई हुई गौओं को बाहर निकाला ॥ ५ ॥ [८]

४५ सूक्त

(ऋषि - विश्वामित्रः। देवता—इन्द्रः। छन्द—बृहती, अनुष्टुप्)

आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभिः।
मा त्वा के चिन्नि यमन्वि न पाशिनोऽति धन्वेव ताँ इहि ॥ १
वृत्रखादो वलंरुजः पुरां दर्मो अपामजः।
स्थाता रथस्य हर्योरभिस्वर इन्द्रो दृळहा चिदारुजः ॥ २
गम्भीराँ उदधीँरिव क्रतुं पुष्यसि गाइव।
प्र सुगोपा यवसं धेनवो यथा ह्रदं कुल्या इवाशत ॥ ३
आ नस्तुजं रयिं भरांशं न प्रतिजानते।
वृक्षं पक्वं फलमङ्कीव धूनुहीन्द्र सम्पारणं वसु ॥ ४
स्वयुरिन्द्र स्वराळसि स्मद्दिष्टिः स्वयशस्तरः।
स वावृधान ओजसा पुरुष्टुत भवा नः सुश्रवस्तमः ॥ ५ । ९

हे इन्द्र ! मोर पंखों के समान रोम वाले अश्वों के साथ इस यज्ञ स्थान को प्राप्त होओ। जैसे शिकारी उड़ते हुए पक्षियों को फांस लेते हैं, वैसे ही तुम्हारे मार्ग में बाधक हुआ कोई तुम्हें न फांस ले। जैसे मार्ग चलने वाले व्यक्ति मरुभूमि को लांघते हैं, वैसे ही तुम भी सब उपस्थित बाधाओं को लांघ कर हमारे यज्ञ में शीघ्र पधारो ॥ १ ॥ इन्द्र ने वृत्र का संहार किया यह मेघों को चीर कर जल को गिराते हैं। उन्होंने शत्रु के नगरों का विध्वंस किया है। इन्द्र घोड़ों को चलाने के निमित्त हमारे सामने ही रथारूढ़ हुए हैं। इन्हीं इंद्र ने शक्तिशाली बैरियों का संहार किया है ॥ २ ॥ हे इंद्र ! जैसे साधु और ग्वाले अपनी गौओं को जौ आदि खाद्य-पदार्थों द्वारा पालते हैं तथा तुम जैसे जल द्वारा गंभीरतम समुद्र को पूर्ण करते हो, वैसे ही यज्ञ कर्मानुष्ठान

में रत यजमान को भी उसका इच्छित फल देकर पुष्ट करो । जैसे गौऐं घास आदि को प्राप्त करती हैं तथा छोटी नदियाँ बड़े जलाशयों को प्राप्त करती हैं, वैसे ही यज्ञ में संस्कारित सोम तुम को प्राप्त करता है ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! जैसे पिता अपने व्यवहारकुशल पुत्र को धन प्रदान करता है, वैसे ही शत्रुओं को जीतने में समर्थ, धन प्राप्ति योग्य पुत्र हमको प्रदान करो । जैसे पके फलों को अंकुशाकार टेढ़ा बाँस झाड़ कर गिरा देता है, वैसे हमारी इच्छा पूर्ण करने वाला फल प्रदान करो ॥ ४ ॥ हे इंद्र ! तुम धन से युक्त हो । विश्वलोक के स्वामी, उत्तम वचन वाले तथा सुन्दर यश वाले हो । बहुतों ने तुम्हारा स्तवन किया है । तुम अपने बल से ही बड़े हुए हो । हमको अत्यन्त सुशोभित अन्न देने वाले बनो ॥ ५ ॥ [६]

४६ सूक्त

(ऋषि—विश्वामित्रः । देवता—इंद्रः । छंद—त्रिष्टुप्)

युध्मस्य ते वृषभस्य स्वराज उग्रस्य यूनः स्थविरस्य घृष्वेः ।
अजूर्यतो वज्रिणो वीर्याणीन्द्र श्रुतस्य महतो महानि ॥ १
महाँ असि महिष वृष्ण्येभिर्धनस्पृदुग्र सहमानो अन्यान् ।
एको विश्वस्य भुवनस्य राजा स योधया च क्षयया च जनान् ॥ २
प्र मात्राभी रिरिचे रोचमानः प्र देवेभिर्विश्वतो अप्रतीतः ॥
प्र मज्मना दिव इन्द्रः पृथिव्याः प्रोरोर्महो अन्तरिक्षादृजीषी ॥ ३
उरुं गभीरं जनुषाभ्युग्रं विश्वव्यचसमवतं मतीनाम् ।
इन्द्रं सोमासः प्रदिवि सुतासः समुद्रं न स्रवत आ विशन्ति ॥ ४
यं सोममिन्द्र पृथिवीद्यावा गर्भं न माता बिभृतस्त्वाया ।
तं ते हिन्वन्ति तमु ते मृजन्त्यध्वर्यवो वृषभ पातवा उ ॥ ५ । २०

हे इंद्र ! तुम धनों के स्वामी, अभीष्ट फल देने वाले युद्ध में बढ़ने वाले, सामर्थ्य से युक्त, अजर, शत्रुओं को हराने वाले, अत्यन्त युवा, वज्र धारण करने वाले, शाश्वत और लोक-त्रय में प्रसिद्धि प्राप्त हो । तुम महान् पराक्रम वाले हो ॥ १ ॥ हे इन्द्र तुम उग्र कर्म वाले तथा पूजनीय हो ।

तुम अपने धन को सेवन करने वाले हो । अपने बल से शत्रुओं को आतंकित करते हो । तुम सम्पूर्ण विश्व के एक मात्र स्वामी हो । तुम शत्रुओं का नाश करते हुए सज्जनों को उत्तम वास प्रदान करो ।। ३ ।। यह इंद्र सोमयुक्त हैं । सब प्रकार से असीमित तथा पर्वतों से भी अधिक दृढ़ हैं । यह प्रकाशयुक्त तथा देवताओं से भी अधिक बलशाली हैं । यह आकाश और पृथिवी से भी विशाल हैं तथा विस्तृत और महान् अन्तरिक्ष से भी उत्कृष्ट हैं ।। ३ ।। हे इंद्र ! तुम अत्यन्त गम्भीर एवं महान् हो । तुम अपने स्वभाव से ही शत्रुओं के प्रति विकराल हो जाते हो । तुम सर्वव्यापक एवं स्तुति करने वालों की रक्षा करने वाले हो । जैसे नदियाँ समुद्रकी ओर जाती हैं, वैसे ही यह प्राचीन काल से व्यवहृत सोम सुसिद्ध होकर इंद्र की ओर जाने वाला हो ।। ४ ।। हे इंद्र ! गर्भ धारण करने वाली जननी के समान, तुम्हारी कामना करने वाली आकाश-पृथिवी सोम को धारण करती हैं । तुम कामनाओं के पूर्ण करने वाले हो । अध्वर्युगण उसी सोम का शोधन कर तुम्हारे सेवन करने के लिए उसे प्रेरित करते हैं ।। ५ ।।

४७ सूक्त

(ऋषि—विश्वामित्रः । देवता—इंद्रः । छन्द—त्रिष्टुप्)

मरुत्वाँ इंद्र वृषभो रणाय पिबा सोममनुष्वधं मदाय ।
आ सिंचस्व जठरे मध्व ऊर्मि त्वं राजासि प्रदिवः सुतानाम् ।। १
सजोषा इंद्र सगणो मरुद्भिः सोमं पिब वृत्रहा शूर विद्वान् ।
जहि शत्रूँरप मृधो नुदस्वाथाभयं कृणुहि विश्वतो नः ।। २
उत ऋतुभिर्ऋतुपाः पाहि सोममिन्द्र देवेभिः सखिभिः सुतं नः ।
याँ आभजो मरुतो ये त्वान्वहन्वृत्र मदधुस्तुभ्यमोजः ।। ३
ये त्वाहिहत्ये मघवन्नवर्धन्ये शाम्बरे हरिवो ये गविष्टौ ।
ये त्वा नूनमनुमदंति विप्राः पिबेन्द्र सोमं सगणो मरुद्भिः ।।४
मरुत्वन्तं वृषभं वावृधानमकवारि दिव्यं शासमिन्द्रम् ।
विश्वासाहमवसे नूतननायोग्रं सहोदामिह तं हुवेम ।। ५।११

हे इंद्र ! तुम मरुद्गण के साथी तथा जल की वर्षा करने वाले हो। तुम हविरूप अन्न से युक्त सोम को युद्धादि के निमित्त तथा आनन्दवर्द्धन के लिए पान करो। तुम उस सोम को अपने उदर में सींचो। तुम प्राचीन-काल से ही सोमों के अधीश्वर हो ॥१॥ हे इन्द्र ! तुम वीर हो। तुम देवताओं के साथी तथा मरुतों की सहायता को प्राप्त करने वाले हो। तुम वृत्र को मारने वाले तथा सभी कर्मों को जानने वाले हो। तुम सोमपान करते हुए हमारे शत्रुओं का संहार करो। हिंसक जीवों को नष्ट कर डालो तथा हमको सब ओर से निर्भय कर दो ॥ २ ॥ हे इंद्र ! तुम अपने मित्र रूप देवताओं और मरुद्गण को साथ लाकर हमारे संस्कारित सोम को पीओ। युद्ध में सहायता के लिए तुमने जिन मरुतों को साथ लिया था और जिन मरुतों ने तुम्हें अपना प्रभु स्वीकार किया था, उन्हीं मरुतों ने युद्धक्षेत्र में तुम्हारा बल बढ़ाया था। फिर तुमने वृत्र का संहार किया था ॥ ३ ॥ हे मघवन् ! तुम अश्वों से युक्त हो। जिन मरुद्गण ने तुम्हें असुर को मारने वाले कार्य में बढ़ाया था, जिन्होंने तुमको शम्बर को मारने के कार्य में शक्तिशाली बनाया था तथा जिन्होंने गौओं के निमित्त पणियों के साथ हुई संग्राम में तुम्हें प्रवृद्ध किया था, वे मरुद्गण प्रज्ञावान् हैं। वे अब भी तुमको प्रसन्न करने में लगे रहते हैं। तुम उन्हीं मरुतों के साथ आकर सोम को पीओ ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! तुम मरुतों से युक्त हो। तुम जलवर्षा करते हो। विश्व के नियन्ता तथा शासक हो। तुम विकराल कर्म वाले अत्यन्त शक्तिशाली हो। दिव्य तथा अद्भुत हो। हम तुम्हारा अभिनव आश्रय प्राप्त करने के निमित्त स्तुति-पूर्वक आह्वान करते हैं ॥ ५ ॥ [११]

४८ सूक्त

(ऋषि— विश्वामित्रः। देवता—इन्द्रः। छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

सद्यो ह जातो वृषभः कनीनः प्रभर्तुमावदन्धसः सुतस्य।
साधोः पिब प्रतिकामं यथा ते रसाशिरः प्रथमं सोम्यस्य ॥ १
यज्जायथास्तदहरस्य कामेंऽशोः पीयूषमपिबो गिरिष्ठाम्।
तं ते माता परि योषा जनित्री महः पितुर्दम आसिञ्चदग्रे ॥ २

उपस्थाय मातरमन्नमैट्ट तिग्म मपश्यदभि सोममूधः ।
प्रयावयन्नचरद् गृत्सो अन्यान्महानि चक्रे पुरुधप्रतीकः ॥ ३
उग्रस्तुराषाळभिभूत्योजा यथावश' तन्वं चक्र एषः ।
त्वष्टारमिन्द्रो जनुषाभिभूयामुष्या सोममपिबच्चमूषु ॥४
शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥५।१२

वे जल-वर्षा करने वाले, सद्यःजात इन्द्र हवियुक्त सोम के संग्रह करने वाले के रक्षक हों। सोम-पान की इच्छा करते हुए तुम दुग्धादि से युक्त सोम को देवताओं से पहिले ही पीओ ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! तुमने उत्पन्न होते ही, प्यास लगने पर पर्वत पर स्थित सोमलता का रस पिया था । तुम्हारी माता अदिति ने तुम्हारे पिता कश्यप के घर में, स्तन पिलाने से पूर्व सोम-रस ही तुम्हारे मुख में डाला था ॥ २ ॥ इन्द्र ने माता से अन्न माँगा तब उन्होंने उसके स्तन में दुग्ध रूप उज्ज्वल सोम का दर्शन किया । शत्रुओं को मारने के लिए देवताओं द्वारा कामना किए गए इन्द्र शत्रुओं को अपने स्थान से हटाते हुए घूमने लगे। उनके अङ्ग-भंग करते हुए, इन्द्र ने वृत्र का संहार आदि बहुत से पराक्रम युक्त महान् कर्म किये ॥ ३ ॥ ये इन्द्र शत्रुओं के लिये भयंकर हैं । वे अपने पराक्रम से शत्रुओं को शीघ्र हराते हैं । वे अपने रूप को विभिन्न प्रकार का बनाने में समर्थ हैं । उन्होंने अपने सामर्थ्य से त्वष्टा को वश में कर चमस में स्थित सोम का पान किया था ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! हे मघवन् ! तुम अन्न प्राप्त करने वाले युद्ध में उत्साह द्वारा वृद्धि को प्राप्त होते हो। तुम धन और ऐश्वर्य से युक्त, श्रेष्ठ नेतृत्व वाले तथा स्तुतियों को सुनने वाले हो। तुम विकराल रूप वाले, भीषण युद्ध में शत्रुओं का नाश करते तथा धनों को जीतते हो । आश्रय प्राप्त करने के निमित्त हम तुम्हारा आह्वान करते हैं ॥ ५ ॥ [१२]

४९ सूक्त

(ऋषि—विश्वामित्रः । देवता—इन्द्रः । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्तिः,)

शंसा महामिन्द्रं यस्मिन्विश्वा आ कृष्टयः सोमपाः काममव्यन् ।

य सुक्रतुं धिषणे विभ्वतष्टं घनं वृत्राणां जनयंत देवाः ॥१
यं नु नकिः पृतनासु स्वराजं द्विता तरति नृतमं हरिष्ठाम् ।
इनतमः सत्वभिर्यो ह शूषैः पृथुज्रया अमिनादायुर्दस्योः ॥२
सहावा पृत्सु तरणिर्नार्वा व्यानशी रोदसी मेहनावान् ।
भगो न कारे हव्यो मतीनां पितेव चारुः सुहवो वयोधाः ॥३
धर्ता दिवो रजसस्पृष्ट ऊर्ध्वो रथो न वायुर्वसुभिर्नियुत्वान् ।
क्षपां वस्ता जनिता सूर्यस्य विभक्ता भागं धिषणेव वाजम् ॥४
शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥५।१३

हे स्तुति करने वाले ! यह इन्द्र महान् हैं, इनकी स्तुति करो । इन्द्र द्वारा रक्षित हुए सब मनुष्य यज्ञ में सोम पीते हुए इच्छित प्राप्त करते हैं। देवगण तथा आकाश और पृथिवी ने ब्रह्मा द्वारा विश्व के स्वामी बनाए गए उत्तम कर्म वाले, पाप-विनाशक इन्द्र को प्रकट किया ॥ १ ॥ युद्धस्थल में अपने तेज से सुशोभित, अश्व जुते हुए रथ पर बैठे हुए बलवानों के युद्ध में नायक रूप, लड़ती हुई सेनाओं को दो ओर विभक्त करने वाले जिन इन्द्र पर आक्रमण करने में कोई समर्थ नहीं है, वे इन्द्र उन सेनाओं के अधिपति हैं। संग्राम में शत्रुओं के बल को क्षीण करने वाले मरुद्गण के सहित वे इन्द्र अत्यन्त वेग वाले होकर शत्रुओं के जीवन को समाप्त करने में समर्थ हैं ॥ २ ॥ जैसे शक्तिशाली अश्व शत्रुओं के सामने वेग से जाता है, वैसे ही वे सामर्थ्य वान् इन्द्र स्पर्द्धायुक्त संग्राम में अधिक वेगवान् होते हैं । वे इन्द्र आकाश-पृथिवी को श्रेष्ठ धनों से सम्पन्न करते हैं । यज्ञ में की जाने वाली स्तुतियों के वे पितातुल्य हैं । वे बुलाए जाने पर अन्न प्रदान करने वाले होते हैं ॥ ३ ॥ वे इन्द्र ही आकाश और अन्तरिक्ष के धारण करने वाले हैं । वे ऊपर की ओर चढ़ाने वाले रथ के समान उन्नत हैं । वे मरुद्गणों की सहायता प्राप्त कर चुके हैं। वे रात्रि में अन्धकार करते तथा सूर्य को उदय करते हैं । वे कर्म के फल रूप अन्न का वैसे ही विभाजन करते हैं जैसे धनवान् पुरुष अपनी वाणी द्वारा धन का विभाजन करता है ॥ ४ ॥ हे मघवन् ! तुम अन्न प्राप्त

करने वाले युद्ध में उत्साह के द्वारा वृद्धि को प्राप्त होते हो। तुम धन और ऐश्वर्य से युक्त हो। तुम श्रेष्ठ नेतृत्व से युक्त तथा स्तुतियों के श्रवणकर्त्ता हो। तुम उग्र कर्म वाले हो। संग्राम में शत्रुओं को विनाश करने में समर्थ हो। तुम धनों के विजेता हो। हम, आश्रय-प्राप्ति के निमित्त तुम्हारा आह्वान करते हैं ॥५॥ [१३]

५० सूक्त

(ऋषि—विश्वामित्रः। देवता—इन्द्रः। छन्द—त्रिष्टुप्)

इन्द्रः स्वाहा पिबतु यस्य सोम आगत्या तुम्रो वृषभो मरुत्वान्।
ओरुव्यचाः पृणतामेभिरन्नैरास्य हविस्तन्वः काममृध्याः ॥१
आ ते सपर्यू जवसे युनज्मि ययोरनु प्रदिवः श्रुष्टिमावः।
इह त्वा धेयुर्हरयः सुशिप्र पिबा त्वस्य सुषुतस्य चारोः ॥२
गोभिर्मिमिक्षुं दधिरे सुपारमिन्द्रं ज्यैष्ठ्याय धायसे गृणानाः।
मन्दानः सोमं पपिवाँ ऋजीषिन्त्समस्मभ्यं पुरुधा गा इषण्य ॥३
इमं कामं मन्दया गोभिरश्वैश्चन्द्रवता राधसा पप्रथश्च।
स्वर्यवो मतिभिस्तुभ्यं विप्रा इन्द्राय वाहः कुशिकासो अक्रन् ॥४
शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥५।१४

हे इन्द्र! हमारे यज्ञ में आकर इस सोमको पियो। यह सोम जिन इन्द्र के निमित्त है, वे विघ्न करने वालों की हिंसा करने में समर्थ हैं। वे मरुतों से युक्त इन्द्र यज्ञकर्त्ताओं को फल की वर्षा करते हैं। वे अत्यन्त व्यापक हैं। हमारे द्वारा अर्पित अन्न से वे तृप्त हों। हवि उनको सन्तुष्ट करे ॥ १ ॥ हे इन्द्र! तुम्हें यज्ञ में बुलाने के निमित्त हम रथ में अश्व जोड़ते हैं। तुम प्राचीन काल से अश्वों का अनुगमन करने वाले हो। तुम्हारी ठोड़ी अत्यन्त सुन्दर है। वे अश्व तुमको सवार करा कर इस यज्ञ में लावें। तुम इस उत्तम प्रकार से सिद्ध किए गए सोम-रस को यहाँ आकर पीओ ॥ २ ॥ स्तुति किये जाने वाले, अभीष्टों की वर्षा करने वाले तथा स्तुतियों से प्रसन्न होने वाले

इन्द्र को स्तोता ऋत्विक श्रेष्ठत्व की प्राप्ति के लिए दुग्धयुक्त सोम द्वारा
धारण करते हैं। हे इन्द्र ! तुम सोमयुक्त हो। प्रसन्नतापूर्वक सोम को पीओ
और स्तुति करने वालों को यज्ञ-सिद्धि के निमित्त गौऐं प्रदान करो ॥ ३ ॥
हमारी कामना को गौ, घोड़े और श्रेष्ठ धन से पूरी करो । धन द्वारा हमको
प्रसिद्धि प्राप्त हो। हे इन्द्र ! स्वर्ग-सुख की कामना करने वाले कर्मवाले
कौशिकों ने मन्त्रों द्वारा तुम्हारा स्तवन किया है ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! तुम अन्न
प्राप्त करते हो। युद्ध में उत्साह द्वारा बढ़ते हुए धन और ऐश्वर्य के स्वामी
बनते हो। तुम श्रेष्ठ नेतृत्व शक्ति से युक्त हो तथा स्तुतियों के सुनने वाले
हो। तुम उग्र कर्म वाले हो। संग्राम में शत्रुओं का विनाश कर धन जीतते
हो। हम आश्रय-प्राप्ति के निमित्त तुम्हारा आह्वान करते हैं ॥ ५ ॥ [१४

५१ सूक्त

(ऋषि—विश्वामित्रः । देवता—इन्द्रः । छन्द—त्रिष्टुप्-गायत्री)

चर्षणीधृतं मघवानमुक्थ्य मिंद्रं गिरो बृहतीरभ्यनूषत ।
वावृधानं पुरुहूतं सुवृक्तिभिरमर्त्यं जरमाणं दिवेदिवे ॥१
शतक्रतुमर्णवं शाकिनं नरं गिरो म इंद्रमुप यंति विश्वतः ।
वाजसनिं पूर्भिदं तूर्णिमप्तुरं धामसाचमभिषाचं स्वर्विदम् ॥२
आकरे वसोर्जरिता पनस्यतेऽनेहसः स्तुभ इंद्रो दुवस्यति ।
विवस्वतः सदन आ हि पिप्रिये सत्रासाहमभिमातिहनं स्तुहि ॥३
नृणामु त्वा नृतमं गीर्भिरुक्थैरभि प्र वीरमर्चता सबाधः ।
सं सहसे पुरुमायो जिहीते नमो अस्य प्रदिव एक ईशे ॥४
पूर्वीरस्य निष्षिधो मर्त्येषु पुरू वसूनि पृथिवी बिभर्ति ।
इंद्राय द्याव ओषधीरुतापो रयिं रक्षन्ति जीरयो वनानि ॥५॥१५

अभीष्ट प्रदान करके मनुष्यों के पालनकर्त्ता, प्रशंसनीय, धन, बल
और ऐश्वर्य से निरन्तर बढ़ते हुए, स्तुति करने वालों द्वारा बहुत बार बुलाए
गए, अमर, शोभायमान रूप वाणी से सुशोभित इन्द्र का स्तोत्र उच्चा

करें ॥ १ ॥ इन्द्र सैकड़ों कर्म करने वाले, मरुद्वान्, जलवान्, संसार के अग्रणी, अन्नदाता, शत्रु के नगरों को ध्वंस करने वाले, युद्ध के निमित्त शीघ्र गमन करने वाले, मेघ को विदीर्ण कर जल गिराने वाले, धन-दान करने वाले शत्रुओं को हराने वाले तथा स्वर्ग-लाभ कराने वाले हैं। उन इन्द्र को हमारी स्तुति रूप वाणी प्राप्त हो ॥ २ ॥ इन्द्र की रणक्षेत्र में सभी स्तुति करते हैं। वे शत्रुओं के बल को नष्ट करते हैं। ये हृदयपूर्वक कही हुई स्तुतियों का आदर करते हैं। वे यज्ञकर्ता यजमान घर में सोम पीकर परमानन्द प्राप्त करते हैं। हे विश्वामित्र ! मरुद्गण को साथ लेकर शत्रुओं का विनाश करने वाले इन्द्र का स्तवन करो ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! तुम पराक्रमी तथा मनुष्यों के नायक हो। देवों द्वारा मन्त्राश्रित हुए ऋत्विक् तुम्हारी स्तुति मन्त्रों से भले प्रकार पूजा करते हैं। तुम वृत्र-संहारक कार्य में बज्र के सहित जाते हो। प्राचीन इन्द्र ही इस अन्न के स्वामी हैं। इसलिए मैं उन इन्द्र को ही प्रणाम करता हूँ ॥ ४ ॥ इन्द्र का अनुशासन मनुष्यों में व्यापक है। उनके निमित्त ही पृथ्वी महान् ऐश्वर्य धारण करती है। इन्द्र की आज्ञा से सूर्य औषधियों, जलों, मनुष्यों और वृक्षों के उपभोग्य अन्न की रक्षा करते हैं ॥ ५ ॥ [१५]

तुभ्यं ब्रह्माणि गिर इन्द्र तुभ्यं सत्रा दधिरे हरिवो जुषस्व ।
बोध्या पिरवसो नूतनस्य सखे वसो जरितृभ्यो वयो धाः ॥६
इन्द्र मरुत्व इह पाहि सोमं यथा शार्याते अपिबः सुतस्य ।
तव प्रणीती तव शूर शर्मन्ना विवासन्ति कवयः सुयज्ञाः ॥७
स वावशान इह पाहि सोमं मरुद्भिरिन्द्र सखिभिः सुतं नः ।
जातं यत्त्वा परि देवा अभूषन्महे भराय पुरुहूत विश्वे ॥८
अप्तूर्ये मरुत आपिरेषोऽमन्दन्निन्द्रमनु दातिवाराः ।
तेभिः साकं पिबतु वृत्रखादः सुतं सोमं दाशुषः स्वे सधस्थे ॥९
इदं ह्यन्वोजसा सुतं राधानां पते । पिबा त्वस्य गिर्वणः ॥१०
यस्ते अनु स्वधामसत्सुते नि यच्छ तन्वम् । स त्वा ममत्तु सोम्यम् ॥११

प्र[illegible]श्नोतु कुक्ष्योः प्रेन्द्र ब्रह्मणा शिरः।
प्र बाहू शूर राधसे ॥ १२ । १६

हे इन्द्र ! तुम अश्ववान् हो, ऋत्विग्गण तुम्हारे निमित्त स्तोत्रों को
धारण करते हैं, तुम उन्हें ग्रहण करो। तुम सबको निवास देने वाले मित्र
स्वरूप हो। इस नवीन हवि को स्वीकार कर स्तुति करने वालों को अन्न
प्रदान करो ॥ ६ ॥ हे मरुद्वान् इन्द्र ! जिस प्रकार तुमने शर्याति के यज्ञ में
सोम-पान किया था, उसी प्रकार इस यज्ञ में भी करो। तुम वीर हो। तुम्हारे
ठहरने के स्थान में मेधावी यज्ञकर्त्ता हवि द्वारा तुम्हारी सेवा करते हैं ॥ ७ ॥
हे इन्द्र ! सोम की इच्छा से अपने मित्र मरुतों को साथ लेकर हमारे इस
यज्ञ में सुसंस्कारित सोम का पान करो। तुमको पुरुवंशियों ने बुलाया था।
तुम्हारे उत्पन्न होते ही सब देवताओं ने महासमर के निमित्त तुम्हें प्रतिष्ठित
किया था ॥ ८ ॥ हे मरुद्गण ! जलको प्रेरित करने के कारण इन्द्र तुम्हारे
मित्र बने हैं। उनको तुमने प्रसन्न किया है। वे, वृत्र का संहार करने वाले
इन्द्र हविदाता यजमान के घर में सुसिद्ध किए गए सोम को तुम्हारे साथ
बैठ कर पान करें ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! तुम धनों के ईश्वर हो। तुम इच्छापूर्वक
इस सोम को अपने बल से शीघ्र पीओ ॥ १० ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारे निमित्त
जो अन्नयुक्त सोम संस्कारित किया है, अपने मनको उसमें लगाओ। तुम
सोम-पान करने के पात्र हो। यह सोम तुम्हें आनन्दित करे ॥११॥ हे इन्द्र !
वह सोम तुम्हारी दोनों कुक्षिओं में व्याप्त हो। स्तोत्रों से युक्त हुआ सोम
तुम्हारे शरीर में रमे। हे वीर ! वह सोम धन के निमित्त तुम्हारी दोनों
बाहुओं को पुष्ट बनावे ।२२॥ [१६]

५२ सूक्त

(ऋषि—विश्वामित्रः। देवता—इन्द्रः। छन्द—त्रिष्टुप गायत्री, जगती)

धानावन्तं करम्भिणमपूपवन्तमुक्थिनम्। इन्द्र प्रातुर्जुषस्व नः ॥ १
पुरोळाशं पचत्यं जुषस्वेन्द्रा गुरस्व च। तुभ्यं हव्यानि सिस्रते ॥ २
पुरोळाशं च नो घसो जोषयासे गिरश्च नः। वधूयुरिव योषणाम् ॥३

पुरोळाशं सनश्रुत प्रातःसावे जुषस्व नः । इन्द्र क्रतुर्हि ते बृहन् ।।४
माध्यन्दिनस्य सवनस्य धानाः पुरोळाशमिन्द्र कृष्वेह चारुम् ।
प्र यत्स्तोता जरिता तूर्ण्यर्थो वृषायमाण उप गीर्भिरीट्टे ।।५।१७

हे इन्द्र ! यव मिश्रित, दही, सत्तू और पुरोडाश से युक्त पाषाण द्वारा प्रस्तुत हमारे सोम को प्रातः सवन में ग्रहण करो ।। १ ।। हे इन्द्र ! परिपक्व पुरोडाश का भक्षण करो। यह यज्ञ-योग्य पुरोडाश तुम्हारे निमित्त प्रस्तुत होता है ।।२।। हे इन्द्र ! हमारे इस पुरोडाश को ग्रहण करो। हमारी इस सुनने योग्य वाणी को पत्नी के प्रेमी पति के समान सेवन करो ।। ३ ।। हे इन्द्र ! तुम प्राचीन काल से विख्यात हो। हमारे पुरोडाश का प्रातः सवन में भक्षण करते हुए अपने कर्म में महत्ता प्राप्त करो ।। ४ ।। हे इन्द्र ! मध्य सवन वाले यवादि युक्त श्रेष्ठ पुरोडाश को यहाँ पधार कर सेवन करो। तुम्हारे सेवक स्तुति के निमित्त उत्कंठित रहते हैं। तुम्हारी सेवा के लिए इधर-उधर गमन करने वाले स्तोता श्रेष्ठ मन्त्रों से जब तुम्हारी उपासना करते हैं, तभी तुम पुरोडाशादि को ग्रहण करते हो ।। ५ ।। [१७]

तृतीये धानाः सवने पुरुष्टुत पुरोळाशमाहुतं मामहस्व नः ।
ऋभुमन्तं वाजवन्तं त्वा कवे प्रयस्वन्त उप शिक्षेम धीतिभिः ।।६
पूषण्वते ते चकृमा करम्भं हरिवते हर्यश्वाय धानाः ।
अपूपमद्धि सगणो मरुद्भिः सोमं पिब वृत्रहा शूर विद्वान् ।।७
प्रति धाना भरत तूयमस्मै पुरोळाशं वीरतमाय नृणाम् ।
दिवेदिवे सदृशीरिन्द्र तुभ्यं वर्धन्तु त्वा सोमपेयाय धृष्णो ।।८।१८

हे इन्द्र ! तुम्हारी बहुतों ने स्तुति की है। तुम तीसरे सवन में हमारे भूँजे यवादि युक्त पुरोडाश का सेवन करो। तुम ऋभुओं से युक्त तथा धन और पुत्रों से युक्त हो। हम हवियों से युक्त स्तोत्रों द्वारा तुम्हारी पूजा करते हैं ।। ६ ।। हे इन्द्र ! तुम पूषा देवता से युक्त हो। तुम्हारे लिए हम दधि-मिश्रित सत्तू तैयार करते हैं। तुम अश्ववान् के निमित्त हम भूँजा हुआ जौ प्रस्तुत करते हैं। मरुद्गण के साथ आकर पुरोडाश ग्रहण करो। तुमने वृत्र

को मारा था। तुम मेधावी हो। इस सोम का पान करो ॥ ७ ॥ हे अध्वर्युओ ! इन्द्र के निमित्त भुने जौ प्रस्तुत करो। यह नायकों में महान् हैं। इन्हें पुरोडाश दो। हे इन्द्र ! तुम शत्रुओं को दूर करने वाले हो। तुम्हारे निमित्त नित्य प्रति की जाने वाली स्तुतियाँ सोम-पान के कर्म में तुम्हें प्रोत्साहित करें ॥ ८ ॥ [१८]

५३ सूक्त

(ऋषि—विश्वामित्रः। देवता—इन्द्रापर्वतौ आदि। छन्द—त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्, जगती, गायत्री, बृहती)

इन्द्रापर्वता बृहता रथेन वामीरिष आ वहतं सुवीराः।
वीतं हव्यान्यध्वरेषु देवा वर्धेथां गीर्भिरिळया मदन्ता ॥१
तिष्ठा सु कं मघवन्मा परा गाः सोमस्य नु त्वा सुषुतस्य यक्षि।
पितुर्न पुत्रः सिचमा रभे त इन्द्र स्वादिष्ठया गिरा शचीवः ॥२
शंसावाध्वर्यो प्रति मे गृणीहीन्द्राय वाहः कृणवाव जुष्टम्।
एदं बर्हिर्यजमानस्य सीदाथा च भूदुक्थमिन्द्राय शस्तम् ॥३
जायेदस्तं मघवन्त्सेदु योनिस्तदित्त्वा युक्ता हरयो वहन्तु।
यदा कदा च सुनवाम सोममग्निष्ट्वा दूतो धन्वात्यच्छ ॥४
परा याहि मघवन्ना च याहीन्द्र भ्रातरुभयत्रा ते अर्थम्।
यत्रा रथस्य बृहतो निधानं विमोचनं वाजिनो रासभस्य ॥५।१९

हे इन्द्र हे पर्वत ! अपने श्रेष्ठ रथ पर उत्तम सन्तानयुक्त अन्न लाओ। तुम प्रकाशमान हो। हमारे यज्ञ में आकार हवि-सेवन करो। हवियों द्वारा पुष्ट होते हुए हमारी उत्तम स्तुतियों से वृद्धि को प्राप्त होओ ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! कुछ समय तक इस यज्ञ स्थान में सुख से रहो। हमारे यज्ञ से जाओ मत। रमणीय निष्पन्न सोम-रस द्वारा हम तुम्हारा यज्ञ करते हैं। तुम अत्यन्त बली हो। पिता के वस्त्रों को मीठे वचन बोलता हुआ बालक जैसे पकड़ लेता है, वैसे ही सुन्दर स्तोत्रों, द्वारा हम तुम्हारे वस्त्रों को पकड़ते हैं ॥ २ ॥ हे अध्वर्युओ ! हम दोनों उन इन्द्र की स्तुति करेंगे। तुम हमको

सदुपदेश करो। हम इन्द्र के प्रति श्रद्धावान् हुए उनका स्तवन करें। तुम यजमान के कुश रूप आसन पर विराजमान होओ। हमारे द्वारा प्रदत्त उक्थ (स्तुति) इन्द्र के लिए आकर्षित करने वाला हो ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! स्त्री ही पुरुषों का वास स्थान है। रथयुक्त अश्व तुमको उस गृह में पहुंचावें। हम जब कभी तुम्हारे निमित्त सोम को संस्कारवान् करें, तब हमारे द्वारा अभिषिक्त अग्नि दूतरूप से तुमको प्राप्त हों ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! तुम दूर देश में गमन करते हुए हमारे यहाँ पधारो। तुम सबका पोषण करने वाले हो, तुम्हारा प्रयोजन दोनों स्थानों पर है। जिस घर में स्त्री है, वहाँ सोम है। तुम रथ पर आरोहण कर घर को प्राप्त होकर घोड़ों को खोल दो ॥ ५ ॥ [१९]

अपाः सोममस्तमिन्द्र प्र याहि कल्याणीर्जाया सुरणं गृहे ते ।
यत्रा रथस्य बृहतो निधानं विमोचनं वाजिनो दक्षिणावत् ॥६
इमे भोजा अङ्गिरसो विरूपा दिवस्पुत्रासो असुरस्य वीराः ।
विश्वामित्राय ददतो मघानि सहस्रसावे प्र तिरन्त आयुः ॥७
रूपंरूपं मघवा बोभवीति मायाः कृण्वानस्तन्वं परि स्वाम् ।
त्रिर्यद्दिवः परि मुहूर्तमागात्स्वैर्मन्त्रैरनृतुपा ऋतावा ॥८
महाँ ऋषिर्देवजा देवजूतोऽस्तभ्नात्सिन्धुमर्णवं नृचक्षाः ।
विश्वामित्रो यदवहत्सुदासमप्रियायत कुशिकेभिरिन्द्रः ॥९
हंसा इव कृणुथ श्लोकमद्रिभिर्मदन्तो गीर्भिरध्वरे सुते सचा ।
देवेभिर्विप्रा ऋषयो नृचक्षसो वि पिबध्वं कुशिकाः सोम्यं मधु ॥१०॥२०

हे इन्द्र ! तुम यहाँ रुक कर सोम पीओ। सोम पीकर ही घर को गमन करना। तुम्हारे गृह में सौभाग्यवती सुरमणीया स्त्री है। तुम घर जाने के निमित्त रथ पर चढ़ो और वहाँ अश्वों को विमुक्त करो ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! यह "भोज" और "सुदास" राजा की ओर से यज्ञ करते हैं। यह "अंगिरा" "मेधातिथि" आदि विविध रूप वाले हैं। देवताओं में अत्यन्त बली रुद्रोत्पन्न मरुद्गण अश्वमेध यज्ञ में मुझ "विश्वामित्र" को महान धन दें और अन्न को बढ़ावें ॥ ७ ॥ इन्द्र जैसी इच्छा करते हैं, वैसा ही रूप बना लेते

हैं। वे अपने देह को माया द्वारा विविध रूप का बनाने में समर्थ हैं। वे ऋतुओं को प्रेरित करने वाले होकर भी सोम-पान करने में किसी ऋतु विशेष का ध्यान नहीं रखते। वे अपनी ही स्तुतियों द्वारा बुलाये जाकर तीनों सवनों में पहुँचते हैं ॥ ८ ॥ अत्यन्त समर्थ, तेजस्वी, तेजों को उत्पन्न करने वाले, अध्वर्यु आदि को उपदेश देने वाले "विश्वामित्र" ने जल से पूर्ण सागर के वेग को बाँध दिया। जब उन विश्वामित्र ने "पिजवन-पुत्र सुदास" को यज्ञ-कर्म में लगाया तब इन्द्र ने कौशिकों के प्रति अपना उत्तम व्यवहार व्यक्त किया ॥ ९ ॥ हे विद्वानो ! हे परमहंसो ! हे ऋषियो ! हे सबको देखने वालो ! तुम यज्ञानुष्ठान में पाषाणों से सोम के संस्कारित होने पर स्तुतियों से देवताओं को प्रसन्न करो। हंसों के समान श्लोकों का उच्चारण करो। देवताओं के साथ मधुर सोम-रस पीओ ॥ १० ॥ [२०]

उप प्रेत कुशिकाश्चेतयध्वमश्वं राये प्र मुञ्चता सुदासः ।
राजा वृत्रं जङ्घनत्प्रागपागुदगथा यजाते वर आ पृथिव्याः ॥११
य इमे रोदसी उभे अहमिन्द्रमतुष्टवम् ।
विश्वामित्रस्य रक्षति ब्रह्मेदं भारतं जनम् ॥१२
विश्वामित्रा अरासत ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे । करदिन्नः सुराधसः ॥१३
किं ते कृण्वन्ति कीकटेषु गावो नाशिरं दुह्रे न तपन्ति घर्मम् ।
आ नो भर प्रमगन्दस्य वेदो नैचाशाखं मघवन्रन्धया नः ॥१४
ससर्परीरमतिं बाधमाना बृहन्मिमाय जमदग्निदत्ता ।
आ सूर्यस्य दुहिता ततान श्रवो देवेष्वमृतमजुर्यम् ॥१५।२१

हे कौशिको ! तुम अश्व के पास जाकर उसे उत्तेजना दो। "सुदास" राजा के घोड़े को धन के निमित्त छोड़ो। इन्द्र ने विघ्न करने वाले वृत्र को पूर्व, पश्चिम, उत्तर में संहार किया। "राजा सुदास" श्रेष्ठ भू भाग में यजन कर्म करें ॥ ११ ॥ हे कौशिको ! हमने आकाश-पृथिवी के सहयोग से इन्द्र की पूजा की है। स्तुति करने वाले विश्वामित्र का इन्द्र के प्रति कहा गया स्तोत्र भरतवंशियों की रक्षा करे ॥ १२ ॥ विश्वामित्र के वंशजों ने वज्रधारी इन्द्र

का स्तवन किया है। वे इन्द्र हमको श्रेष्ठ धन से सुशोभित करें ॥ १३ ॥ हे इन्द्र ! "कीकट" लोग, जो कि अनार्य हैं, वे गौओं का क्या उपभोग करते हैं ? वे न तो दुग्ध ही प्राप्त करते हैं न घृत ही निकालते हैं। हे इन्द्र ! उन गौओं को, हमारे पास ले आओ। अधिक धन प्राप्त करने की आशा से धन उधार देने वालों के धनों को भी हमें प्राप्त कराओ ॥ १४ ॥ अग्नि को चैतन्य करने वाले ऋषियों द्वारा सूर्य से प्राप्त कर हमको दी गई अज्ञान को छुटाने वाली, रूप और शब्द से युक्त, लपकती हुई वाणी शब्द द्वारा ज्ञान को प्रकट करती है। सूर्य की दुहिता वाणी अमृत रूप अन्न का विस्तार करती है ॥ १५ ॥ [२१]

ससर्परीरभरत्तूयमेभ्योऽधिश्रवः पाञ्चजन्यासु कृष्टिषु ।
सा पक्ष्या नव्यमायुर्दधाना यां मे पलस्तिजमदग्नयो ददुः ॥१६
स्थिरौ गावौ भवतां वीळुरक्षो मेषा वि वर्हि मा युगं वि शारि ।
इन्द्रः पातल्ये ददतां शरीतोररिष्टनेमे अभि नः सचस्व ॥१७
बलं धेहि तनूषु नो बलमिन्द्रानळुत्सु नः ।
बलं तोकाय तनयाय जीवसे त्वं हि बलदा असि ॥१८
अभि व्ययस्व खदिरस्य सारमोजो धेहि स्पन्दने शिंशपायाम् ।
अक्ष वीळो वीळित वीळयस्व मा यामादस्मादव जीहिपो नः ॥१९
अयमस्मान्वनस्पतिर्मा च हा मा च रीरिषत् ।
स्वस्त्या गृहेभ्य आवसा आ विमोचनात् ॥ २०।२२

लपकती हुई गद्य-पद्य रूपिणी वाणी सर्वत्र विद्यमान ज्ञान रूप अन्न को हमें प्रदान करे। दीर्घजीवी ऋषियों ने जिस वाणी को सूर्य से प्राप्त कर हमको प्रदान किया है, वह सूर्य की दुहिता वाणी हमको नया जीवन प्रदान करे ॥ १६ ॥ दोनों वृषभ स्थिर होओ। धुरा दृढ़ हो। जिससे दण्ड नष्ट न हो। जुआ टूट न जाय। दोनों कीले उखड़ें नहीं। वे इन्द्र रथ को गिरने से पहले ही बचावें। हे अरिष्टनेमि रथ ! तू हमको मङ्गलमय मार्ग पर ले जाता हुआ सदा प्राप्त हो ॥ १७ ॥ हे इन्द्र ! तुम अत्यन्त बलवान् हो।

हमारे शरीरों को बल दो। हमारे बैलों को बलिष्ट बनाओ। हमारे पुत्र-पौत्रादि को दीर्घजीवी होने के निमित्त शक्ति प्रदान करो ॥ १८ ॥ हे इन्द्र ! रथ के खदिर के काष्ठ के सार को दृढ़ बनाओ। शीशम के काष्ठ को भी दृढ़ करो। हे अक्ष ! तुम हमारे द्वारा मजबूती से बनाए गए हो अतः दृढ़ होओ। कहीं हमारे गमनशील रथ से हमको अलग मत कर देना ॥ १९ ॥ यह रथ वृक्षों के काष्ठ द्वारा बनाया गया है। यह हमको छोड़ न दे। जब तक हमको घर प्राप्त न हो तब तक यह रथ चलता रहे और जबतक उसमें घोड़ों को खोल न दिया जाय तब तक हमारा कल्याण हो ॥ २० । [२२]

इन्द्रोतिभिर्बहुलाभिर्नो अद्य याच्छ्रेष्ठाभिर्मघवञ्छूर जिन्व ।
यो नो द्वेष्ट्यधरः सस्पदीष्ट यमु द्विष्मस्तमु प्राणो जहातु ॥२१
परशुं चिद्वि तपति शिम्बलं चिद्वि वृश्चति ।
उखा चिदिन्द्र येषन्ती प्रयस्ता फेनमस्यति ॥२२
न सायकस्य चिकिते जनासो लोधं नयन्ति पशु मन्यमानाः ।
नावाजिनं वाजिना हासयन्ति न गर्दभं पुरो अश्वान्नयन्ति ॥२३
इम इन्द्र भरतस्य पुत्रा अपपित्वं चिकितुर्न प्रपित्वम् ।
हिन्वन्त्यश्वमरणं न नित्यं ज्यावाजं परि णयन्त्याजौ ॥२४।२३

हे वीर ! हे शत्रु-संहारक इन्द्र ! तुम शत्रुओं का नाश करने के कार्य में वीरों से युक्त उत्तम सेनाओं से हमको युक्त कर विजय प्राप्त कराओ और प्रसन्न करो। हमसे वैर करने वाला भले प्रकार बाधा देखे। जिससे हम द्वेष करें उसका प्राण उसका त्याग करे ॥ २१ ॥ हे इन्द्र ! जैसे तपती हुई पतीली उबलती हुई फेन निकालती है, वैसे ही हमारे शत्रु मुख से झागों को निकालें, जैसे सेमर का पुष्प अनायास ही छिन्न-भिन्न हो जाता है, वैसे ही हमारे शत्रुओं में शरीर कट कर गिर जांय। लोहार जैसे अग्नि पर कुठार को तपाता है, वैसे ही शत्रु सेना संतप्त हो ॥ २२ ॥ हे मनुष्यो ! शस्त्रादि के समान अपने प्राणों का अन्त करने वाले के अज्ञान को तुम नहीं जानते। वे लोभ के वशीभूत हुए अपने आपको पशु के समान आगे ले जाते हैं। ज्ञानी पुरुष अज्ञानी पुरुष से सामना करके हँसी नहीं उड़वाते। क्योंकि अश्व की समानता

गाथा नहीं करता ॥ २६ ॥ हे इन्द्र ! यह भरतवंशी पार्थक्य जानते हैं और मेल भी जानते हैं। वे युद्ध काल में प्रेरित अश्व के समान धनुष की प्रत्यंचा का घोष करते हैं ॥ २४ ॥ [२३]

५४ सूक्त (पांचवाँ अनुवाक)

(ऋषि—प्रजापति वैश्वामित्रो वाच्यो वा । देवता—विश्वेदेवाः ।

छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

इमं महे विदथ्याय शूषं शश्वत्कृत्व ईड्याय प्र जभ्रुः ।
शृणोतु नो दम्येभिरनीकैः शृणोत्वग्निर्दिव्यैरजस्रः ॥१
महि महे दिवे अर्चा पृथिव्यै कामो म इच्छञ्चरति प्रजानन् ।
ययोर्ह स्तोमे विदथेषु देवाः सपर्यवो मादयन्ते सचायोः ॥२
युवोर्ऋतं रोदसी सत्यमस्तु महे षु णः सुविताय प्र भूतम् ।
इदं दिवे नमो अग्ने पृथिव्य सपर्यामि प्रयसा यामि रत्नम् ॥३
उतो हि वां पूर्व्या आविविद्र ऋतावरी रोदसी सत्यवाचः ।
नरश्चिद्वां समिथे शूरसातौ ववन्दिरे पृथिवि वेविदानाः ॥४
को अद्धा वेद क इह प्र वोचद्देवाँ अच्छा पथ्या का समेति ।
ददृश्र एषामवमा सदांसि परेषु या गुह्येषु व्रतेषु ॥ ५ । २४

अध्ययन रूप मंथन द्वारा प्रतिपादित स्तोत्र स्तुति के योग्य है। इसका महान् यज्ञ में बारम्बार उच्चारण किया जाता है। अपने घर तेज से परिपूर्ण हुए अग्निदेव इस स्तोत्र को श्रवण करें। वे अपने दिव्य तेज से निरन्तर पूर्ण रहते हुए हमारी स्तुतियों पर ध्यान दें ॥ १ ॥ हे स्तुतिकर्त्ता ! तुम आकाश-पृथिवी अत्यन्त शक्ति को समझते हुए उन्हें पूजो। मैं सम्पूर्ण भोगों की कामना करता हूँ। मेरा मन सब ओर जाता है। अपने अर्चन की कामना वाले देवगण मनुष्यों के यज्ञों में जाकर आकाश-पृथिवी को पूर्ण करते हुए आनन्द प्राप्त करते हैं ॥ २ ॥ हे आकाश, पृथिवी ! तुम्हारा कर्म सत्य हो। तुम हमारे इस महान् यज्ञ को निर्विघ्न पूर्ण कराने में समर्थ होओ। हे अग्नि !

मैं आकाश और पृथिवी को प्रमाण करता हूँ। हवि रूप अन्न द्वारा सेवा करता हुआ मैं श्रेष्ठ धन माँगता हूँ ॥ ३ ॥ हे सत्य धर्म वाली आकाश-पृथिवी ! प्राचीन सत्यवक्ता ऋषियों ने तुमसे हित करने वाला अभीष्ट प्राप्त किया था। हे पृथिवी ! रणक्षेत्र को प्रस्थान करने वाले सभी वीर तुम्हारी महिमा को जानते हुए तुम्हें नमस्कार करते हैं ॥ ४ ॥ उसके सत्य के कारण-रूप का ज्ञाता कौन है ? उस समझे हुए विषय को प्रकट करने वाला कौन है ? वह सरल मार्ग कौन-सा है जो देवताओं का सामीप्य प्राप्त कराये। दिव्य लोक के निचले स्थान में नक्षत्रादि प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं। वे हमको उत्कृष्ट एवं कठिन व्रतों में लगाते हैं ॥ ५ ॥ [२४]

कविर्नृचक्षा अभि षीमचष्ट ऋतस्य योना विघृते मदन्ती ।
नाना चक्राते सदनं यथा वेः समानेन क्रतुना संविदाने ॥६
समान्या वियुते दूरेअन्ते ध्रुवे पदे तस्थतुर्जागरूके ।
उत स्वसारा युवती भवन्ती आदु ब्रुवाते मिथुनानि नाम ॥७
विश्वेदेते जनिमा सं विविक्तो महो देवान्बिभ्रती न व्यथेते ।
एजद् ध्रुवं पत्यते विश्वमेकं चरत्पतत्रि विषुणं वि जातम् ॥८
सना पुराणमध्येम्यारान्महः पितुर्जनितुर्जामि तन्नः ।
देवासो यत्र पनितार एवैरुरौ पथि व्युते तस्थुरन्तः ॥९
इमं स्तोमं रोदसी प्र ब्रवीम्यृदूदराः शृणवन्नग्निजिह्वाः ।
मित्रः सम्राजो वरुणो युवान आदित्यासः कवयः पप्रथानाः ॥१० ।२५

मनुष्यों के द्रष्टा सूर्य आकाश-पृथिवी को सब ओर देखते हैं। जल के प्राकट्य स्थान अन्तरिक्ष में वह हर्षोत्पादन करने वाली, रस से युक्त हुई, समान धर्म वाली आकाश-पृथिवी अनेक स्थान पर घोंसला रखने वाले पक्षियों के समान विभिन्न स्थानों को व्याप्त करती है ॥ ६ ॥ परस्पर आकर्षण में बंधी हुई, पृथक् रहकर भी साथ रहने वाली, जिनका कभी विनाश नहीं होता, ऐसी आकाश-पृथिवी कभी भी नष्ट न होने वाले अन्तरिक्ष में दो तरुणी बहिनों के समान एक आत्मा वाली हुई सृष्टि कर्म में समर्थ बन कर

स्थित हैं ॥ ७ ॥ यह आकाश-पृथिवी सभी भौतिक पदार्थों को प्रकट करती हुई, सूर्य, इन्द्र, नदी, समुद्र, पर्वत आदि को धारण करके भी नहीं थकतीं। स्थावर और जङ्गम पदार्थों से युक्त विश्व केवल पृथिवी को ही प्राप्त करता और चलायमान पशु पक्ष्यादि जीव आकाश-पृथिवी में ही व्याप्त होते हैं ॥ ८ ॥ हे आकाश ! तुम सब की जन्मदात्री हो तुम्हीं सब का पालन करने वाली हो। तुम्हारी प्राचीनता, पूर्व क्रम से विकास और हमारा उत्पादन इस सबका एक ही कारणभूत है। आकाश भगिनी रूपा है। हम उसका चिंतन करते हैं। तुम्हारी स्तुति करने वाले देवगण अपने-अपने वाहनों पर चढ़े हुए तुम्हारा स्तवन सुनते हैं ॥ ९ ॥ हे आकाश-पृथिवी ! तुम्हारे स्तोत्र को भले प्रकार गाते हैं। सोम को उदरस्थ करने वाले, अग्निरूप जिह्वा वाले, नित्य युवा, तेजस्वी अपने-अपने कर्मों को प्रकट करने वाले मित्रादि देवगण हमारी स्तुतियों को श्रवण करें ॥ १० ॥　　　　[२५]

हिरण्यपाणिः सविता सुजिह्वस्त्रिरा दिवो विदथे पत्यमानः ।
देवेषु च सवितः श्लोकमश्रेरादस्मभ्यमा सुव सर्वतातिम् ॥११
सुकृत्सुपाणिः स्ववाँ ऋतावा देवस्त्वष्टावसे तानि नो धात् ।
पूषण्वन्त ऋभवो मादयध्वमूर्ध्वग्रावाणो अध्वरमतष्ट ॥१२
विद्युद्रथा मरुत ऋष्टिमंतो दिवो मर्या ऋतजाता अयासः ।
सरस्वती शृणवन्यज्ञियासो धाता रयिं सहवीरं तुरासः ॥१३
विष्णुं स्तोमासः पुरुदस्ममर्का भगस्येव कारिणो यामनि ग्मन् ।
उरुक्रमः ककुहो यस्य पूर्वीर्न मर्धन्ति युवतयो जनित्रीः ॥१४
इंद्रो विश्वैर्वीर्यैः पत्यमान उभे आ पप्रौ रोदसी महित्वा ।
पुरन्दरो वृत्रहा धृष्णुषेणः सङ्गृभ्या न आ भरा भूरि पश्वः ॥१५।२६

दान से निमित्त सुवर्ण को हाथ में लेने वाले, उत्तम वचन वाले सूर्य यज्ञ के तीनों सवनों को आकाश से आकार प्राप्त करते हैं। हे सूर्य ! तुम स्तुति करने वालों के स्तोत्र को स्वीकार करो। फिर सभी इच्छित धनों को हमारे निमित्त प्रेरित करो ॥ ११ ॥ कल्याण के हाथ वाले, सुन्दर चित्त के

रचयिता, सत्य प्रतिज्ञा, धन से युक्त त्वष्टा हमारी रक्षा के लिए आवश्यक साधन दें। हे ऋभुगण ! तुम पूजा से युक्त होकर हमको धन देते हुए पुष्ट बनाओ। पाषाण को सोमाभिषेक के निमित्त प्रेरित करने वाले ऋत्विक् इस अनुष्ठान को करते हैं ॥१२॥ चमकते हुए रथ वाले, शस्त्रों से युक्त, तेजस्वी, शत्रुओं के नाशक, यज्ञ में प्रकट, गतिमान् मरुद्गण और वाक् देवता हमारी स्तुतियों को श्रवण करें। हे मरुतो ! हमको पुत्र से सम्पन्न धन प्रदान करो ॥ १३ ॥ धन का कारणभूत यह स्तोत्र और पूजा के योग्य हवि इस महान् यज्ञ में अनेक कर्म करने वाले विष्णु को प्राप्त हो। सब को जन्म देने वाली दिशाऐं, जिन विष्णु को नष्ट नहीं कर सकतीं, वे विष्णु अत्यन्त सामर्थ्यवान् हैं। उन्होंने अपने एक पाँव से सम्पूर्ण संसार को ढक लिया था ॥ १४ ॥ सब बलों से युक्त हुए इन्द्र ने आकाश और पृथिवी दोनों को अपनी महती सामर्थ्य से पूर्ण किया। शत्रु के गढ़ों को तोड़ने वाले वृत्र संहारक और शत्रुओं को जीतने वाली सेना से युक्त इन्द्र पशु-सम्पत्ति को भले प्रकार संग्रहीत कर हमको प्रदान करें ॥ १५ ॥ [२६]

नासत्या मे पितरा बन्धुपृच्छा सजात्यमश्विनोश्चारु नाम ।
युवं हि स्थो रयिदौ नो रयीणां दात्रं रक्षेथे अकवैरदब्धा ॥१६
महत्तद्वः कवयश्चारु नाम यद्ध देवा भवथ विश्व इंद्रे ।
सख ऋभुभिः पुरुहूत प्रियेभिरिमां धियं सातये तक्षता नः ॥१७
अर्यमा णो अदितिर्यज्ञियासोऽदब्धानि वरुणस्य व्रतानि ।
युयोत नो अनपत्यानि गन्तोः प्रजावान्नः पशुमाँ अस्तुगातुः ॥१८
देवानां दूतः पुरुध प्रसूतोऽनागान्नो वोचतु सर्वताता ।
शृणोतु नः पृथिवी द्यौरुतापः सूर्यो नक्षत्रैरुर्वन्तरिक्षम् ॥१९
शृण्वन्तु नो वृषणः पर्वतासो ध्रुवक्षेमास इलया मदन्तः ।
आदित्यैर्नो अदितिः शृणोतु यच्छन्तु नो मरुतः शर्म भद्रम् ॥२०
सदा सुगः पितुमाँ अस्तु पन्था मध्वा ओषधीः सं पिपृक्त ।
भगो मे अग्ने सख्ये न मृध्या उद्रायो अश्यां सदनं पुरुक्षो ॥२१

स्वदस्व हव्या समिषो दिदीह्यस्मद्र्यक्सं मिमीहि श्रवांसि ।
विश्वाँ अग्ने पृत्सु ताञ्जेषि शत्रूनहा विश्वा सुमना दीदिही

नः ॥ २२ । २७

हे अश्विद्वय ! तुम हमसे बंधुत्व स्थापन की इच्छा करते हो। तुम हमारा पालन करने वाले बनो। हे अश्वियो ! तुम्हारा निरादर करने में कोई समर्थ नहीं है। तुम हमको श्रेष्ठ धन देने में समर्थ हो। हम तुमको हव्यप्रदान करते हैं। उत्तम कर्मों द्वारा हमारी रक्षा करो ॥ १६ ॥ हे देवताओ ! हे विद्वानो ! तुम्हारा कर्म अत्यन्त श्रेष्ठ है, जो तुम इन्द्र की सेवा में रहते हुए ऐश्वर्य या विजय प्राप्त करते हो। हे इन्द्र ! तुम बहुतों द्वारा आहूत किए हुए हो। तुम्हारी मित्रता ऋभुओं को प्राप्त है। धन-लाभ के निमित्त हमारे इस स्तोत्र को स्वीकार करो ॥ १७ ॥ सदा गतिमान सूर्य, देवमाता अदित, देवगण और अहिंसायुक्त वरुण हमारा पालन करें। वे हमारे मार्ग से अहितकारी विघ्नों को दूर भगावें। हमारे घर को पशु और संतान आदि से सम्पन्न बनावें ॥ १८ ॥ यज्ञानुष्ठानों के निमित्त अग्नि देवताओं के दूत रूप से प्रसिद्ध हैं। वे हमको मार्ग साधन से युक्त और अपराध वृत्ति से रहित करें। आकाश, पृथिवी, जलाशय, सूर्य और नक्षत्रों से युक्त अन्तरिक्ष हमारे स्तोत्रों को सुनें ॥ १९ ॥ वे मरुद्गण इच्छित फलों की वर्षा करने वाले हैं। वे अभिलाषियों का अभीष्ट पूर्ण करने वाले अचल पर्वत, हवि-युक्त अन्न से प्रसन्न होकर हमारे स्तोत्र पर ध्यान दें। अदिति अपने पुत्र देवताओं के सहित हमारी स्तुति सुनें और मरुद्गण हमारा मंगल करने वाला धन प्रदान करें ॥ २० ॥ हे अग्ने ! हमारा पथ सरल हो। हम अन्न-याचना में सफलता प्राप्त करें। देवताओ ! ओषधियों को मधुर-रस से पूर्ण करदो। हे अग्ने ! हम तुम्हारे मित्र हो गए हैं, अतः हमारे धन का नाश न हो। हम धन को उत्पन्न करने वाले अन्न को प्राप्त करें ॥ २१ ॥ हे अग्ने ! इस यज्ञ-योग्य हवि का स्वाद लो। हमारे निमित्त अन्न का प्रकाश करो। अन्य हमारे लिए प्रत्यक्ष हो। युद्ध करने वाले सभी बाधक शत्रुओं पर विजय प्राप्त करो और प्रसन्न मन से हमारे सब दिनों को प्रकाश पूर्ण करो ॥ २२ ॥ [२७]

((ऋषि—प्रजापतिर्वैश्वामित्रो वाच्यो वा । देवता–विश्वेदेवाः आदि

छन्द–त्रिष्टुप्, पंक्ति)

उषसः पूर्वा अध यद्व्यूषुर्महद्वि जज्ञे अक्षरं पदे गोः ।
व्रता देवनामुप नु प्रभूषन्महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥ १
मो षू णो अत्र जुहुरन्त देवा मा पूर्वे अग्ने पितरः पदज्ञाः ।
पुराण्योः सद्मनोः केतुरन्तर्महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥२
वि मे पुरुत्रा पतयन्ति कामाः शम्यच्छा दीद्ये पूर्व्याणि ।
समिद्धे अग्नावृतमिद्वदेम महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥ ३
समानो राजा विभृतः पुरुत्रा शये शयासु प्रयुतो वनानु ।
अन्या वत्सं भरति क्षेति माता महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥ ४
आक्षित्पूर्वास्वपरा अनूरुत्सद्यो जातासु तरुणीष्वन्तः ।
अन्तर्वतीः सुवते अप्रवीता महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥ ५ । २८

जब प्राचीन उषा उदय काल के तेज से संतप्त होता है तब आकाश में अमरत्व प्राप्त आदित्य उदय होते हैं। सूर्योदय होने पर यजमान यज्ञ कर्म करते हुए देवताओं का सामीप्य प्राप्त करते हैं। वे सब महान देवता [illegible] बल से युक्त हैं ॥ १ ॥ हे अग्ने ! देवगण हमारा विनाश न करें। [illegible] प्राप्त पितरगण हमको न मारें। यज्ञ की प्रेरणा देने वाले सूर्य आकाश-पृथिवी के मध्य उदित होते हैं, वे हमारी हिंसा न करें। उन सब देवताओं का महान् बल एक ही है ॥ २ ॥ हे अग्ने ! हमारी बहुत प्रकार की कामनाएँ [illegible] दिशाओं में भ्रमण करती हैं। उन उत्तम प्रकार से प्रकट हुए अग्नि [illegible] हम अपने प्राचीन स्तोत्र को चैतन्य करते हैं। अग्नि के भले प्रकार प्र[illegible] होने पर हम स्तोत्र-उच्चारण करेंगे। सब देवताओं का महान् पराक्रम एक ही है ॥ ३ ॥ वे प्रजा स्वामी अग्निदेव, सभी स्थानों में यज्ञादि कर्मों में [illegible] स्थापित किए जाते हैं। वे वेदी पर रमण करते हैं। अरणियों से प्रकट [illegible] । हैं इनके माता-पिता पृथिवी और आकाश हैं। आकाश इनका वर्[illegible]

पोषण करना है और पृथिवी इनको निवास देती है । देवताओं का बल एक समान ही है ॥ ४ ॥ पुरातन औषधियों में रमे हुए और नवीन औषधियों में गुण के अनुरूप स्थित अग्निदेव फली-फूली औषधियों के अन्तर में वास करते हैं । वे औषधियाँ, बिना वीर्य-दान प्राप्त किये, अग्नि द्वारा गर्भवती हुई फल-पुष्पादि को उत्पन्न करने में समर्थ हैं । यह सब अग्निदेव का सामर्थ्य है । सभी देवताओं का बल समान है ॥ ५ ॥

शयुः परस्तादध नु द्विमाताबन्धनश्चरति वत्स एकः ।
मित्रस्य ता वरुणस्य व्रतानि महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥६
द्विमाता होता विदथेषु सम्राळन्वग्रं चरति क्षेति बुध्नः ।
प्र रण्यानि रण्यवाचो भरन्ते महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥७
शूरस्येव युध्यतो अन्तमस्य प्रतीचीनं ददृशे विश्वमायत् ।
अन्तर्मतिश्चरति निष्षिधं गोर्महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥८
नि वेवेति पलितो दूत आस्वन्तर्महांश्चरति रोचनेन ।
वपूंषि बिभ्रदभि नो वि चष्टे महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥९
विष्णुर्गोपाः परमं पाति पाथः प्रिया धामान्यमृता दधानः ।
अग्निष्टा विश्वा भुवनानि वेद महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥१०। २६

दोनों माता-पिता रूप आकाश-पृथिवी के मध्य सूर्य अस्त होते हुए पश्चिम में शयन करते हैं । वे सूर्य उदय-काल में अकेले ही आकाश में अबाध गति से विचरण करते हैं । यह कर्म मित्र वरुण की प्रेरणा से होता है । वे दोनों समान बल वाले हैं ॥ ६ ॥ वे अग्नि आकाश पृथिवी रूप दोनों लोकों के रचयिता हैं । वे यज्ञ में भले प्रकार रमण करते हैं और आकाश में सूर्य रूप से विचरते हैं । वे ही इस पृथिवी पर वास करते हुए सब कर्मों के कारणरूप हैं । स्तोतागण सुन्दर वचनों द्वारा श्रेष्ठ स्तोत्रों का उच्चारण करते हैं । उन सब देवताओं का पराक्रम एक-सा है ॥ ७ ॥ अति वीरतापूर्वक युद्ध करने वाले पुरुष के सामने जो कोई आता है, वही उससे हारकर पराङ्मुख होता

है, उसी प्रकार अग्नि के सम्मुख जो भी आता है वही पराङ्मुख दिखाई देता है। वे सर्वज्ञाता अग्निदेव सर्वत्र व्यापते हैं। उन सब देवताओं का एक ही महान् बल है ॥ ८ ॥ जैसे सूर्य आकाश और पृथिवी के मध्य अपनी अत्यन्त सामर्थ्य से व्याप्त हैं, वैसे ही देवताओं के दूत प्राणीमात्र का पालन करने वाले अग्नि औषधियों में व्याप्त हैं। वे विविध रूपधारी, हमको अत्यन्त कृपा-दृष्टि से देखें। सब देवों का महान बल एक ही है ॥ ९ ॥ सर्व व्यापक, सब के पालक, हितैषी, कभी क्षीण न होने वाले अग्नि तेज को धारण करते हुए पृथिवी आदि लोकों की रक्षा करते हैं। वह अग्नि समस्त भूतों को जानते हैं। वह सब देवों में अद्वितीय एक ही महान् शक्ति हैं ॥ १० ॥ [२९]

नाना चक्राते यम्या वपूंषि तयोरन्यद्रोचते कृष्णमन्यत् ।
श्यावी च यदरुषी च स्वसारौ महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥ ११
माता च यत्र दुहिता च धेनू सबर्दुघे धापयेते समीची ।
ऋतस्य ते सदसीळे अन्तर्महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥१२
अन्यस्या वत्सं रिहती मिमाय कया भुवा नि दधे धेनुरूधः ।
ऋतस्य सा पयसापिन्वतेळा महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥ १३
पद्या वस्ते पुरुरूपा वपूंष्यूर्ध्वा तस्थौ त्र्यविं रेरिहाणा ।
ऋतस्य सद्म वि चरामि विद्वान्महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥ १४
पदे इव निहिते दस्मे अन्तस्तयोरन्यद् गुह्यमाविरन्यत् ।
सध्रीचीना पथ्या सा विषूची महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥ १५ । ३०

कृष्ण वर्ण वाली रात्रि और तेजमय उज्ज्वल उषा दोनों बहिनें सूर्य से उत्पन्न होती हुई जागृति और निद्रा के नियम में जीवों को डालने वाली विविध रूपों से युक्त हैं। उन दोनों में एक तेज से चमकती तथा दूसरी अन्धकार से काली रहती है। इन सब देवताओं में उन सूर्य रूप अग्नि का एक ही महान् बल है ॥११॥ पृथिवी और आकाश दोनों ही माता और पुत्री के समान हैं। पृथिवी सब जीवों को उत्पन्न कर उनका पालन करने के कारण माता तथा आकाश से वर्षा के जल को दूध के समान ग्रहण करने के

कारण पुत्री रूप है। वैसे ही आकाश मेघ, वर्षा आदि से जीवों के पालनकर्ता होने से माता और पृथिवी के जल को दूध के समान खींचकर पीने से पुत्री के समान है। यह दोनों ही गौ के समान अन्न, जल रूप से दूध देने वाली हैं। उन आकाश और पृथिवी का हम स्तवन करते हैं। यह दोनों देवताओं के एक ही महान् बल द्वारा समर्थ हुई हैं ॥ १२ ॥ गौ के समान रस-वर्षा करने वाले आकाश के जल को पृथिवी मेघ रूप से धारण करती है। उस समय यह पृथिवी के जल से उत्पन्न मेघ को बछड़े के समान चाटती है और विद्युत गर्जन के रूप से ध्वनि करती हुई भूमि को अन्नोत्पादक तथा पोषक वर्षा के जल से भले प्रकार सींचती है। यह सब देवताओं के एक महान् बल का ही परिणाम है ॥ १३ ॥ शरीर को विविध प्रकार से आकाश पृथिवी ढकती हैं। उन्नत होकर तीनों लोकों को व्याप्त करने वाले सूर्य को चाटती हुई-सी चलती हैं। सत्य के कारणभूत सूर्य के स्थान को जानकर हम उनकी स्तुति करते हैं। देवताओं का महान् बल एक ही है ॥ १४ ॥ दो पात्रों के समान गमनशील दिन रात्रि आकाश और पृथिवी के मध्य व्याप्त है। वे दोनों अद्भुत, हैं, एक अन्धकार का और दूसरी उजाले का नाश करने वाली है। उन दोनों का मिलन मार्ग पापी और पुण्यकर्मा दोनों को ही प्राप्य है। देवताओं का एक ही महान् बल है ॥ १५ ॥ [३०]

आ धेनवो धुनयन्तामशिश्वी सबर्दुघाः शशया अप्रदुग्धाः ।
नव्यानव्या युवतयो भवन्तीर्महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥१६
यदन्यासु वृषभो रोरवीति सो अन्यस्मिन्यूथे नि दधाति रेतः ।
स हि क्षपावान्त्स भगः स राजा महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥१७
वीरस्य नु स्वश्व्यं जनासः प्र नु वोचाम विदुरस्य देवाः ।
षोळ्हा युक्ताः पञ्चपञ्चा वहन्ति महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥१८
देवस्त्वष्टा सविता विश्वरूपः पुपोष प्रजाः पुरुधा जजान ।
इमा च विश्वा भुवनान्यस्य महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥१९
मही समैरच्चम्वा समीची उभे ते अस्य वसुना न्यृष्टे ।
शृण्वे वीरो विन्दमानो वसूनि महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥२०

इमां च नः पृथिवीं विश्वधाया उप क्षेति हितमित्रो न राजा ।
पुरः सदः शर्मसदो न वीरा महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥२१
निष्षिध्वरीस्त ओषधीरुतापो रयिं त इंद्र पृथिवी विभर्ति ।
सखायस्ते वामभाजः स्याम महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥ २२ ॥३१

वर्षा करने के कारण सबकी प्रीति प्राप्त करने वाली, शिशु-विहीना, आकाश-व्यापिनी, सदा युवती और नवीन स्वरूप वाली दिशायें कम्पायमान होती हैं। यह देवताओं की एक महान् सामर्थ्य का फल है ॥ १६ ॥ वर्षणशील मेघ गौ के मध्य स्थित वृषभ के समान दिशाओं में शब्द करता हुआ जल वर्षा करता है। इन्द्र ही उसे इस कार्य में प्रेरित करते हैं। वे इन्द्र सब के द्वारा उपासना करने के योग्य हैं और सबके स्वामी हैं। देवताओं का सामर्थ्य एक समान है ॥ १७ ॥ हे मनुष्यो ! हम इन्द्र के सुशोभित घोड़ों का उत्तम वर्णन करते हैं। देवगण उन इन्द्र के अश्वों को जानते हैं। दो दो महीनों को मिलाकर वर्ष में छः ऋतुऐं होती हैं। हेमन्त और शिशिर को एक कर देने पर पांच ऋतुऐं मानी जाती हैं। यह इन्द्र के अश्व रूप ऋतुऐं मानी जाती हैं। यह इन्द्र के अश्व रूप ऋतुऐं सूर्य रूप इन्द्र का वहन करती हैं। देवताओं का महान् सामर्थ्य एक ही है ॥ १८ ॥ त्वष्टा देव अन्तर्यामी होने से सबको प्रेरित करने वाले हैं। वे विभिन्न रूप वाली प्रजाओं को उत्पन्न करने वाले हैं, तथा वही उनका पोषण करते हैं। यह सब लोक त्वष्टा के ही हैं। देवताओं का महान् बल एक समान है ॥ १९ ॥ इन्द्र ने ही इन महत्तावान् आकाश पृथिवी को सुसंगत कर, पशु-पक्षियों को प्रकट करने वाली बनाया। वे आकाश पृथिवी दोनों ही, इन्द्र के तेज से व्याप्त हैं। वे सामर्थ्यवान् इन्द्र शत्रुओं को हराकर उनके धन को ले लेने में प्रसिद्ध हैं। उनके साथी देवताओं का महान् बल एक ही है ॥ २० ॥ विश्व के धारण करने वाले, हमारी पृथिवी और आकाश के भी स्वामी, हितचिंतक मित्रों से युक्त इन्द्र स्वयं तेजस्वी हुए प्राणियों का पालन करते हैं। मरुद्गण युद्ध का अवसर प्राप्त होने पर इन्द्र के आगे चलते हैं और दिव्य स्थानों पर निवास करते हैं। देवताओं का महान् सामर्थ्य एक ही है ॥ २१ ॥ हे इन्द्र ! यह

पृथिवी रोग नाशिनी औषधियों को पुष्ट करती है। जल-धाराएं भी तुम्हारे सखा श्रेष्ठ ऐश्वर्यों को प्राप्त कर उनका भोग करने में समर्थ हों। देवताओं का महान् बल एक ही है ॥ २२ ॥　　　　　　　　　　[३१]

२५ सूक्त

(ऋषि—प्रजापतिर्वैश्वामित्रो वाच्यो वा। देवता—विश्वेदेवाः छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

न ता मिनन्ति मायिनो न धीरा व्रता देवानां प्रथमा ध्रुवाणि ।
न रोदसी अद्रुहा वेद्याभिर्न पर्वता निनमे तस्थिवांसः ॥१
षड्भारां एको अचरन्बिभर्त्यृतं वर्षिष्ठमुप गाव आगुः ।
तिस्रो महीरुपरास्तस्थुरत्या गुहा द्वे निहिते दर्श्येका ॥२
त्रिपाजस्यो वृषभो विश्वरूप उत त्र्युधा पुरुध प्रजावान् ।
त्र्यनीकः पत्यते माहिनावान्त्स रेतोधा वृषभः शश्वतीनाम् ॥३
अभीक आसां पदवीरबोध्यादित्यानामह्वे चारु नाम ।
आपश्चिदस्मा अरमन्त देवीः पृथग्व्रजंतीः परि षीमवृञ्जन् ॥४
त्री षधस्था सिन्धवस्त्रिः कवीनामुत त्रिमाता विदथेषु सम्राट् ।
ऋतावरीर्योषणास्तिस्रो अप्यास्त्रिरा दिवो विदथे पत्यमानाः ॥५
त्रिरा दिवः सवितर्वार्याणि दिवेदिव आ सुव त्रिर्नो अह्नः ।
त्रिधातु राय आ सुवा वसूनि भग त्रातर्धिषणे सातये धाः ॥६
त्रिरा दिवः सविता सोषवीति राजाना मित्रावरुणा सुपाणी ।
आपश्चिदस्य रोदसी चिदुर्वी रत्नं भिक्षन्त सवितुः सवाय ॥७
त्रिरुत्तमा दूणशा रोचनानि त्रयो राजन्त्यसुरस्य वीराः ।
ऋतावान इषिरा दूळभासस्त्रिरा दिवो विदथे सन्तु देवाः ॥८।१

देवताओं की सृष्टि में उत्पन्न होने वाले मायावी असुर श्रेष्ठ कर्मों की हिंसा न करें। विद्वान् भी उत्तम कर्मों को न त्यागें। आकाश-पृथिवी भी प्रजाओं के साथ विघ्न रहित रहें। अविचल पर्वतों को कोई झुका नहीं

सकता ।। १ ।। एक संवत्सर वसंतादि षट् ऋतुओं का धारणकर्त्ता है। सत्य के आधारभूत, सूर्य से युक्त संवत्सर को रश्मियाँ प्राप्त होती हैं। तीनों लोक ऊपर ही स्थित हैं। स्वर्ग और अन्तरिक्ष गुफा में छिपे हैं। केवल पृथिवी ही प्रत्यक्ष है ।। २ ।। ग्रीष्म, वर्षा, हेमन्त ऋतुओं से युक्त, जल की वर्षा करने में समर्थ, तीनों लोकों को स्तन के समान रस प्रदान करने वाले, प्रज्ञायुक्त, गर्मी, वर्षा और शीत गुण वाले महत्वशाली संवत्सर प्राणशक्ति से युक्त हैं। वह संवत्सर जल धारण कर पृथिवी का सींचने में समर्थ हैं ।। ३ ।। इन सब ओषधियों के समीप उनके पद रूप से संवत्सर चैतन्य होता है। मैं उन आदित्यों के सुन्दर नामों को जानता हूँ। इस संवत्सर से स्वतन्त्रमार्गगामी जल समूह चार महीने तक सुसंगति करता और आठ महीनों के लिए वियुक्त रहता है ।। ४ ।। हे नदियो ! त्रिगुणात्मक और त्रितंत्रक लोकों में देवता निवास करते हैं। लोक त्रय के रचयिता सूर्य यज्ञ के भी स्वामी है ! अन्तरिक्ष से चलने वाली जलवती इला, सरस्वती और भारती यज्ञ के तीनों सवनों में रहें ।। ५ ।। हे सूर्य ! तुम सबको बल देते हो। प्रतिदिन तीनों सवनों में आकाश से आकर हमको प्राप्त होते हुए सुन्दर उपभोग्य धन दो। तुम हमारा पालन करने वाले हो। हमको दिन के तीनों सवनों में पशु, स्वर्ण, रत्न और गवादि धन दो। हे मेधावी सूर्य ! जिस उपाय से हमको धन-लाभ हो सके, वही उपाय करो ।। ६ ।। वे सवितादेव दिन में तीन बार हमको ऐश्वर्य दें। कल्याणरूप हाथ वाले, राजा, मित्र और वरुण, आकाश और पृथिवी तथा अन्तरिक्ष आदि देवता सवितादेव से ऐश्वर्य वृद्धि की याचना करें ।। ७ ।। सर्व विजेता, प्रकाशमान, अविनाशी तीन श्रेष्ठ स्थान हैं। इन तीनों में अग्नि, वायु और सूर्य सुशोभित होते हैं। यज्ञ से युक्त, तिरस्कृत न किये जाने वाले द्रुतगामी देवता तीनों सवनों में हमारे यज्ञानुष्ठान में पधारें ।। ८ ।। [१

सूक्त ५७

(ऋषि – विश्वामित्रः। देवता—विश्वेदेवाः। छन्द–त्रिष्टुप्)

प्र मे विविक्वाँ अविदन्मनीषां धेनुं चरन्तीं प्रयुतामगोपाम् ।

सद्यश्चिद्या दुदुहे भूरि धासेरिन्द्रस्तदग्निः पनितारो अस्याः ॥१
इन्द्रः सु पूषा वृषणा सुहस्ता दिवो न प्रीताः शशयं दुदुह्रे ।
विश्वे यदस्यां रणयंत देवाः प्रवोऽत्र वसवः सुम्नमश्याम् ॥२
या जामयो वृष्ण इच्छन्ति शक्तिं नमस्यन्तीर्जानते गर्भमस्मिन् ।
अच्छा पुत्रं धेनवो वावशाना महश्चरन्ति बिभ्रतं वपूंषि ॥३
अच्छा विवक्मि रोदसी सुमेके ग्राव्णो युजानो अध्वरे मनीषा ।
इमा उ ते मनवे भूरिवारा ऊर्ध्वा भवन्ति दर्शता यजत्राः ॥४
या ते जिह्वा मधुमती सुमेधा अग्ने देवेषूच्यत उरूची ।
तयेह विश्वाँ अवसे यजत्राना सादय पायया चा मधूनि ॥५
या ते अग्ने पर्वतस्येव धारासश्चन्ती पीपयद्देव चित्रा ।
तामस्मभ्यं प्रमतिं जातवेदो वसो रास्व सुमतिं विश्वजन्याम् ॥६।२

वे बुद्धिमान इन्द्र अकेले विहार करने वाली, रक्षक से रहित गौ के समान हमको प्राप्त करें। जिस स्तुति रूप गौ से अभिलाषित फल दोहने की इच्छा की जाती है, उस स्तुति को इन्द्र और अग्नि दोनों प्राप्त करें ॥ १ ॥ इन्द्र, पूषा और अभिलाषित वर्षा करने वाले मङ्गलहस्त मित्रावरुण अन्तरिक्ष में शयन करने वाले मेघ को अन्तरिक्ष से दुहते हैं। हे विश्वेदेवाओ ! तुम उत्तम निवास देने वाले हो। इस यज्ञ वेदी पर रमण करो जिससे हम तुम्हारे द्वारा दिए गये सुख को प्राप्त कर सकें ॥ २ ॥ जलवर्षक इन्द्र की शक्ति की कामना करने वाली औषधियाँ नम्र होकर इन्द्र की गर्भाधान करने वाली क्षमता का ज्ञान प्राप्त करती हैं। फल की अभिलाषा करने वाली औषधियां यथादि शिशुओं के सामने अभिमुख होती है ॥ ३ ॥ यज्ञ में सोम-अभिषव करने वाले पाषाण को धारण करते हुए हम आकाश-पृथिवी को मधुर वाणी द्वारा स्तुति करते हैं। हे अग्निदेव ! तुम्हारी वरण करने योग्य, पूजनीय एवं रमणीय प्रदीप्तियां मनुष्यों के समक्ष ऊपर उठती हैं ॥ ४ ॥ हे अग्ने ! तुम्हारी ज्वाला रूप जिह्वा अत्यन्त रसवती तथा मधुमती और प्रज्ञावती होती हुई देवताओं के आह्वान के निमित्त होती है। अपनी उस जिह्वा से यजन करने

योग्य देवताओं को इस यज्ञ कर्म में हमारी रक्षा के निमित्त बुलाओ और उन देवताओं को सोम-पान कराके प्रसन्न करो ॥ ५ ॥ हे तेजस्वी अग्निदेव ! हमको त्यागकर अन्य किसी के पास न जाने वाली विविध रूपिणी तुम्हारी कृपापूर्ण मति हमको इच्छित फल प्रदान करती हुई बढ़ावे, उसी प्रकार जैसे मेघ, जल द्वारा वनस्पतियों को बढ़ाता है। तुम स्वयं बुद्धिमान एवं निवास दाता हो, हमको अपनी वही कृपापूर्ण बुद्धि दो तथा सबका कल्याण करने वाली बुद्धि से सुशोभित करो ॥ ६ ॥ [२]

५८ सूक्त

(ऋषि—विश्वामित्रः । देवता-अश्विनौ । छन्द–त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

धेनुः प्रत्नस्य काम्यं दुहानान्तः पुत्रश्चरति दक्षिणायाः ।
आ द्योतनिं वहति शुभ्रयामोषसः स्तोमो अश्विनावजीगः ॥१
सुयुग्वहन्ति प्रति वामृतेनोर्ध्वा भवन्ति पितरेव मेधाः ।
जरेथामस्मद्वि पणेर्मनीषां युवोरवश्चकृमा यातमर्वाक् ॥२
सुयुग्भिरश्वैः सुवृता रथेन दस्राविमं शृणुतं श्लोकमद्रेः ।
किमङ्ग वां प्रत्यवर्तिं गमिष्ठाहुर्विप्रासो अश्विना पुराजाः ॥३
आ मन्येथामा गतं कच्चिदेवैर्विश्वे जनासो अश्विना हवन्ते ।
इमा हि वां गोऋजीका मधूनि प्र मित्रासो न ददुरुस्रो अग्रे ॥४
तिरः पुरू चिदश्विना रजांस्याङ्गूषो वां मघवाना जनेषु ।
एह यातं पथिभिर्देवयानैर्दस्राविमे वां निधयो मधूनाम् ॥५॥३

प्राचीन अग्नि के निमित्त उषा रात्रि की समाप्ति पर ओस रूप रस की बूँदों को दुहती है। फिर उषा-पुत्र भास्कर उसके बीच घूमते हैं। उज्ज्वल प्रकाश से युक्त दिन सबको प्रकाश देने वाले सूर्य को घुमाता है। सूर्योदय से पूर्व ही अश्विनीकुमार का स्तवन करने वाले तत्पर होते हैं ॥ १ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! उत्तम, श्रेष्ठ तथा सत्य रूप रथ द्वारा तुमको यज्ञ में लाने को लिए दो घोड़े जुतते हैं। माता-पिता की ओर पुत्र के जाने के समान यज्ञ

तुम्हारी ओर जाता है । हमारे निकटस्थ दैत्यों और दुष्कर्मियों को हमसे दूर हटाओ । हम तुम्हारे लिए हव्य प्रदान करते है । तुम दोनों यहाँ आओ ॥ २ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! विशेष चक्र वाले सुन्दर रथ में सुशोभित घोड़ों को जोड़ों और उस पर चढ़ कर यहाँ आओ । हम स्तोता तुम दोनों का स्तोत्र उच्चारण करते हैं, उसे आकर सुनो तथा इस बात पर भी ध्यान दो कि प्राचीन बुद्धिमानों ने यथा-यथा स्तुति की । तुम दोनों उन्हीं के अनुकूल चलो ॥ ३ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! तुम दोनों को सभी आदरपूर्वक बुलाते हैं । उनके आह्वान पर ध्यान देकर अपने अश्वों सहित यज्ञ में पधारो । वे तुम्हारे निमित्त मित्र के समान प्रसन्नताप्रद दुग्धादि से मिश्रित हव्य प्रदान करते हैं । उषा के पश्चात् आदित्यदेव उदित हो रहे हैं । अतः शीघ्र ही यहाँ पधारो ॥ ४ ॥ हे अश्विद्वयो ! तुम दोनों की वाणी सब लोकों को प्राप्त हो । तुम्हारी वाणी सभी संकटों को दूर करे । तुम दोनों विद्वजनों के मार्गों से इस लोक में आगमन करो । तुम शत्रुओं का संहार करने में समर्थ हो । इस मधुर रस से पूर्ण पुष्टिकारक सोम को तुम्हारे निमित्त ही पात्रों में निचोड़कर रखा गया है ॥५ ॥ [३]

पुराणमोकः सख्यं शिवं वां युवोर्नरा द्रविणं जह्नाव्याम् ।
पुनः कृण्वानाः सख्या शिवानि मध्वा मदेम सह नू समानाः ॥६
अश्विना वायुना युवं सुदक्षा नियुद्भिश्च सजोषसा युवाना ।
नासत्या तिरोअह्न्यं जुषाणा सोमं पिबतमस्रिधा सुदानू ॥७
अश्विना परि वामिषः पुरूचीरीयुर्गीर्भिर्यतमाना अमृध्राः ।
रथो ह वामृतजा अद्रिजूतः परि द्यावापृथिवी याति सद्यः ॥८
अश्विना मधुषुत्तमो युवाकुः सोमस्तं पातमा गतं दुरोणे ।
रथो ह वां भूरि वर्पः करिक्रत्सुतावतो निष्कृतमागमिष्ठः ॥९॥४

हे अश्विनीकुमारो ! तुम्हारी मित्रता प्राचीन और सबको आवश्यक तथा मङ्गलकारी है । तुम दोनों सबका नेतृत्व करने वाले हो । तुम दोनों का धन जन्हु कुल वालों के लिए कल्याणकारी हो । तुम दोनों के मैत्री भाव का

सुख हम बारम्बार प्राप्त करें। प्रसन्नता उत्पन्न करने वाले सोम का पान करते हुए हम भी तुम दोनों के साथ शीघ्र ही तुष्टि को प्राप्त करें ॥ ६ ॥ हे अश्विनीकुमारो! तुम सभी उपयुक्त सामर्थ्यों से युक्त हो। तुम मिथ्यात्व रहित, सतत, युवा तथा शोभनीय धनों के देने वाले हो। वायु, तथा नियमों से नियुक्त अश्वों से युक्त हुए (यहाँ आकर) अक्षय गुण वाले, सोम पीने के अभ्यासी तुम दोनों ही दिन के प्रकाश में सोम पान करो ॥ ७ ॥ हे अश्विनीकुमारो। यह पर्याप्त हव्य तुमको प्राप्त होता है। कर्मों में चतुर तथा पाप-रहित स्तुति करने वाले उत्तम स्तोत्रों द्वारा तुम दोनों की पूजा करते हैं। स्तुति करने वाले उपासकों द्वारा आकर्षित किया गया जलदायक रथ आकाश और पृथिवी के बीच चलता है ॥ ८ ॥ हे अश्विनीकुमारो! यह अत्यन्त मधुर रस तथा दुग्धादि से मिश्रित सोम प्रस्तुत है, उसे पीओ। तुम दोनों का धन देने वाला श्रेष्ठ रथ सोम शुद्ध करने वाले यजमान के सुशोभित घर में बारम्बार पहुँचता है ॥ ९ ॥　　[४]

५९ सूक्त

(ऋषि—विश्वामित्रः। देवता—मित्रः छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्तिः, गायत्री)

मित्रो जनान्यातयति ब्रुवाणो मित्रो दाधार पृथिवीमुत द्याम् ।
मित्रः कृष्टीरनिमिषाभि चष्टे मित्राय हव्यं घृतवज्जुहोत ॥१
प्र स मित्र मर्तो अस्तु प्रयस्वान्यस्त आदित्य शिक्षति व्रतेन ।
न हन्यते न जीयते त्वोतो नैनमंहो अश्नोत्यन्तितो न दूरात् ॥२
अनमीवास इळया मदन्तो मितज्ञवो वरिमन्ना पृथिव्याः ।
आदित्यस्य व्रतमुपक्षियन्तो वयं मित्रस्य सुमतौ स्याम ॥३
अयं मित्रो नमस्यः सुशेवो राजा सुक्षत्रो अजनिष्ट वेधाः ।
तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम ॥४
महाँ आदित्यो नमसोपसद्यो यातयज्जनो गृणते सुशेवः ।
तस्मा एतत्पन्यतमाय जुष्टमग्नौ मित्राय हविरा जुहोत ॥५।५

देवगण पूजित होने पर सम्पूर्ण संसार को कृषि आदि कर्मों में प्रेरित करते हैं। वर्षा द्वारा अन्नादि को उत्पन्न करने वाले मित्र देवता पृथिवी और आकाश दोनों को धारण करने वाले हैं। वे मित्र देवता कर्म वाले व्यक्तियों को सब प्रकार के अनुग्रह की दृष्टि से देखते हैं। उन मित्र देव के निमित्त घृतयुक्त हवियाँ दो ॥ १ ॥ हे आदित्य! तुम्हें मित्र के सहित जो व्यक्ति हवियाँ देता है, वह अन्नों का स्वामी हो। जो मनुष्य तुम्हारी रक्षा प्राप्त कर लेता है, उसकी हिंसा कोई नहीं कर सकता। तुम्हारे निमित्त जो मनुष्य हवि देता है, उसके निकट पाप कभी नहीं आता ॥ २ ॥ हे मित्र! हम रोगों से बचें। अन्न प्राप्ति द्वारा पुष्ट हों। इस विस्तृत पृथिवी पर हम अपनी जाँघों को सकोड़ कर (जानु के बल बैठे हुए) आदित्य के व्रत का पालन करते हैं। वे आदित्य हमारे प्रति अपनी कृपा-बुद्धि रखें ॥ ३ ॥ यह आदित्य सुन्दर प्रकाश वाले, बल में बढ़े हुए, सब को उत्पन्न करने वाले, सब के स्वामी तथा नमस्कार करने के योग्य हैं। इनके प्रादुर्भाव पर यज्ञ कर्म होते हैं। हम यजमान इनकी कृपा तथा मंगलकारी वात्सल्य भाव को प्राप्त करें ॥ ४ ॥ उन महान् लोकों के प्रवर्तक आदित्य की नमस्कारों से युक्त पूजा करनी चाहिए। स्तुति करने वालों से वे आदित्य अत्यन्त प्रसन्न होते हैं। हे स्तोताओ! मित्र देवता स्तुति के पात्र हैं, उनके निमित्त प्रीति-दायक हवियाँ अग्नि में डालो ॥ ५ ॥ [५]

मित्रस्य चर्षणीधृतोऽवो देवस्य सानसि। द्युम्नं चित्रश्रवस्तमम् ॥६

अभि यो महिना दिवं मित्रो बभूव सप्रथाः।
अभि श्रवोभिः पृथिवीम् ॥७

मित्राय पञ्च येमिरे जना अभिष्टिशवसे।
स देवान्विश्वान्बिभर्ति ॥८

मित्रो देवेष्वायुषु जनाय वृक्तबर्हिषे। इष इष्टव्रता अकः ॥९॥६

वर्षा के द्वारा मनुष्यों को धारण करने वाले मित्र देवता का विचित्र अन्नादि धन कीर्ति और ज्ञान से युक्त होकर सब के लिए सेवन करने के योग्य यथा सुख देने वाला हो ॥ ६ ॥ मित्र देवता ने अपनी महत्ता से आकाश

को वशीभूत किया है, उन्होंने अपने कर्मों द्वारा अत्यन्त यशस्वी होकर पृथिवी को सबके सेवन करने वाले अन्न से युक्त किया ॥ ७ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा निषाद यह पाँचों वर्ण शत्रुओं को जीतने की क्षमता वाले मित्र देवता के प्रति सम्मान प्रदर्शित करें। ये मित्र अपने स्वरूप द्वारा ही सब देवताओं का पोषण करते हैं ॥ ८ ॥ जो व्यक्ति विद्वानों देवताओं एवं अन्य मनुष्यों में कुश को काट कर लाता है, मित्र देवता उसके लिए मङ्गलकारी अन्न प्रदान करते हैं ॥ ९ ॥ [६]

६० सूक्त

(ऋषि—विश्वामित्रः । देवता—ऋभवः । छन्द—जगती)

इहेह वो मनसा बन्धुता नर उशिजो जग्मुरभि तानि वेदसा ।
याभिर्मायाभिः प्रतिजूतिवर्पसः सौधन्वना यज्ञियं भागमानश ॥१
याभिः शचीभिश्चमसाँ अपिंशत यया धिया गामरिणीत चर्मणः ।
येन हरी मनसा निरतक्षत तेन देवत्वमृभवः समानश ॥२
इन्द्रस्य सख्यमृभवः समानशुर्मनोर्नपातो अपसो दधन्विरे ।
सौधन्वनासो अमृतत्वमेरिरे विष्ट्वी शमीभिः सुकृतः सुकृत्यया ॥३
इंद्रेण याथ सरथं सुते सचाँ अथो वशानां भवथा सह श्रिया ।
न वः प्रतिमै सुकृतानि वाघतः सौधन्वना ऋभवो वीर्याणि च ॥४
इंद्र ऋभुभिर्वाजवद्भिः समुक्षितं सुतं सोममा वृषस्वा गभस्त्योः ।
धियेषितो मघवन्दाशुषो गृहे सौधन्वनेभिः सह मत्स्व नृभिः ॥५
इंद्र ऋभुमान्वाजवान्मत्स्वेह नोऽस्मिन्त्सवने शच्या पुरुष्टुत ।
इमानि तुभ्यं स्वसराणि येमिरे व्रता देवानां मनुषश्च धर्मभिः ॥६
इंद्र ऋभुभिर्वाजिभिर्वाजयन्निह स्तोमं जरितुरुप याहि यज्ञियम् ।
शतं केतेभिरिषिरेभिरायवे सहस्रणीथो अध्वरस्य होमनि ॥७

हे ऋभुओ ! तुम्हारे ऐश्वर्य, कर्म और सामर्थ्य को सभी जानते हैं। हे मनुष्यो ! तुम सुधन्वा के वंशज हो, तुम अपने जिस कर्म द्वारा शत्रुओं

को हराने में उपयुक्त तथा विशिष्ट तेज से युक्त होकर यज्ञ-भाग को प्राप्त करते हो, उस सब कर्म को तुम इच्छा करते ही जान लेते हो ॥ १ ॥ हे ऋभुओ ! तुमने अपनी जिस शक्ति से चमस का विभाजन किया था, जिस बुद्धि की शक्ति से तुमने गौ के शरीर में चर्म जोड़ा था तथा जिस ज्ञान से तुमने इन्द्र के दोनों घोड़ों की रचना की थी, अपने उन्हीं सब कर्मों द्वारा तुम यज्ञ-भाग के अधिकारी होकर देवत्व प्राप्त कर सके ॥ २ ॥ मनुष्यों के वंशज ऋभुओं ने यज्ञादि कर्मों द्वारा इन्द्र का मैत्री भाव प्राप्त किया। पहिले मरणधर्मा होते हुए भी वे इन्द्र की मित्रता से शरीर में प्राणयुक्त रहते हैं। पुण्यकर्म करने वाले यह सुधन्वा के पुत्र कर्म के बल से अविनाशी पद प्राप्त किये हुए हैं ॥ ३॥ हे ऋभुओ ! तुम इन्द्र के साथ एक ही रथ पर चढ़ कर सोम सिद्ध करने वाले स्थान में जाओ। फिर मनुष्यों के स्तोत्रों को स्वीकार करो। हे सुधन्वा के पुत्रो ! तुम अमृत की शक्ति को वहन करने वाले हो। तुम्हारे श्रेष्ठ कर्मों को कोई रोक नहीं सकता। हे ऋभुगण ! तुम्हारी शक्ति का सामना करने में कोई भी समर्थ नहीं हैं ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! जैसे सूर्य वेगवती तथा तेजस्विनी रश्मियों को पुष्ट करता है, वैसे ही तुम पृथिवी को बलवान् और ज्ञानीजनों से पुष्ट करो। हे इन्द्र ! तुम ऋभुओं के सहित सोम पान करो और स्तुतियों द्वारा आहूत हुए तुम यजमान के घर में सौधन्वों के साथ सोम पान करते हुए आनन्द का लाभ प्राप्त करो ॥ ५ ॥ हे इन्द्र ! तुम बहुतों के द्वारा स्तुत्य हो। तुम इन्द्राणी सहित तथा ऋभुओं से युक्त होकर हमारे तीसरे सवन में आनन्द प्राप्त करो। हे इन्द्र ! दिन के तीनों सवनों में यह सवन तुम्हारे सोम-पान के लिए निश्चित है। वैसे देवताओं के सब व्रतों और मनुष्यों के सब कर्मों द्वारा सभी दिन तुम्हारी पूजा के लिए श्रेष्ठ हैं ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! स्तुति करने वालों के लिए अन्न-सम्पादन करते हुए बलवान् ऋभुगण सहित स्तोता की स्तुतियों के प्रति इस यज्ञ में पधारो। शतसंख्यक कुशल अश्वों के द्वारा मरुद्गण भी यजमान के सहस्र, हिंसा रहित यज्ञ में आगमन करें ॥ ७ ॥

६१ सूक्त

(ऋषि-विश्वामित्रः । देवता-उषाः । छन्द—त्रिष्टुप्, पंरि

उषो वाजेन वाजिनि प्रचेताः स्तोमं जुषस्व गृणतो मघोनि
पुराणी देवि युवतिः पुरन्धिरनु व्रतं चरसि विश्ववारे ।।१
उषो देव्यमर्त्या वि भाहि चन्द्ररथा सूनृता ईरयन्ती ।
आ त्वा वहन्तु सुयमासो अश्वा हिरण्यवर्णां पृथुपाजसो ये ।।
उषः प्रतीची भुवनानि विश्वोर्ध्वा तिष्ठस्यमृतस्य केतुः ।
समानमर्थं चरणीयमाना चक्रमिव नव्यस्या ववृत्स्व ।।३
अव स्यूमेव चिन्वती मघोन्युषा याति स्वसरस्य पत्नी ।
स्वर्जनन्ती सुभगा सुदंसा आन्ताद्दिवः पप्रथ आ पृथिव्याः ।।
अच्छा वो देवीमुषसं विभातीं प्र वो भरध्वं नमसा सुवृक्तिः
ऊर्ध्वं मधुधा दिवि पाजो अश्रेत्प्र रोचना रुरुचे रण्वसन्दृक् ।
ऋतावरी दिवो अर्कैरबोध्या रेवती रोदसी चित्रमस्थात् ।
आयतीमग्न उषसं विभातीं वाममेषि द्रविणं भिक्षमाणः ।।
ऋतस्य बुध्न उषसामिषण्यन्वृषा मही रोदसी आ विवेश ।
मही मित्रस्य वरुणस्य माया चन्द्रेव भानुं वि दधे पुरुत्रा ।।

हे उषा ! तुम धनैश्वर्य और अन्न वाली हो । तुम श्रेष्ठ होकर स्तुति करने वाले के स्तोत्र को स्वीकार करो । तुम सभी के करने योग्य हो । अतः प्राचीनकालीन युवती के समान सुशोभि से स्तोत्रों से युक्त होकर यज्ञानुष्ठान के निमित्त शीघ्र आओ ।। १ तुम मरणधर्म से मुक्त हो । तुम्हारा रथ स्वर्णयुक्त है । तुम म वचनों का उच्चारण करने वाली हो । तुम सूर्य किरणों के शोभायमान होती हो । अरुण-वर्ण वाले बलवान् अश्व सरलता से में जुड़ते हैं । वे तुम्हें आहूत करें ।। २ ।। हे उषे ! तुम सम्पूर्ण प्राणियों के सामने आती हो । तुम मरण धर्म से रहित तथा सु

देने वाली, समान मार्ग में चलती हुई उन्नताकाश में गमन करती हो। तुम सूर्य के रथ के अङ्ग के समान बारम्बार उस मार्ग पर चलो ॥ ३ ॥ वस्त्र के समान ढकने वाले घोर अन्धकार को नाश करने वाली, धन से युक्त उषा सूर्य की पत्नी के रूप में गमन करती है, वह अत्यन्त सौभाग्यशालिनी और सत्कर्मों की साधिका है। वही उषा आकाश और पृथिवी की सीमा में प्रकाशित होती है ॥ ४ ॥ हे स्तुति करने वालो ! तुम्हारे सामने सुशोभित उषा प्रत्यक्ष होती हैं। तुम नमस्कारपूर्वक उसकी स्तुति करो। उन स्तुतियों को पुष्ट करने वाली उषा आकाश के उन्नत तेज को धारण करती है। वह उषा अत्यन्त सुन्दर, सुशोभित तथा तेजस्विनी है ॥ ५ ॥ उस सत्य से युक्त उषा को आकाश के तेज रूप से प्रकट होने पर सब जानते हैं। वह उषा धनैश्वर्य है और अनेक प्रकार से आकाश-पृथिवी में व्याप्त होती है। हे अग्ने ! उषा तुम्हारे सामने आती है। । तुम उससे हवि की याचना करते हुए सुखकारी धनों को पाते हो ॥ ६ ॥ आदित्य ही वृष्टि द्वारा जल को गिराते हैं। वे सत्यरूप दिन के आरम्भ में उषा को भेज कर आकाश-पृथिवी के मध्य प्रविष्ट होते हैं। फिर यह अत्यन्त महत्व वाली उषा मित्रावरुण की प्रभा के रूप में प्रकट होकर सुवर्ण के समान अपनी प्रदीप्ति को संसार में फैलाती है ॥ ७ ॥ [८]

६२ सूक्त

(ऋषि—विश्वामित्रः, । विश्वामित्रो जमदग्निर्वा । देवता—इन्द्रावरुणौ आदि । छन्द—त्रिष्टुप्, गायत्री)

इमा उ वां भृमयो मन्यमाना युवावते न तुज्या अभूवन् ।
क्व त्यदिन्द्रावरुणा यशो वां येन स्मा सिनं भरथः सखिभ्यः ॥१
अयमु वां पुरुतमो रयीयञ्छश्वत्तममवसे जोहवीति ।
सजोषाविन्द्रावरुणा मरुद्भिर्दिवा पृथिव्या शृणुतं हवं मे ॥२
अस्मे तदिन्द्रावरुणा वसु ष्यादस्मे रयिर्मरुतः सर्ववीरः ।
अस्मान्वरूत्रीः शरणैरवन्त्वस्मान्होत्रा भारती दक्षिणाभिः ॥३
बृहस्पते जुषस्व नो हव्यानि विश्वदेव्य । रास्व रत्नानि दाशुषे ॥४

शुचिमर्कं बृहस्पतिमध्वरेषु नमस्यत । अनाम्योज आ चके ॥ ५ ।९

हे इन्द्रावरुण ! सब को ढकने वाले अन्धकार के समान सब को वशीभूत करने वाले तुम दोनों की भ्रमणशीला क्रियाऐं जानी जाती हैं । वे क्रियाऐं तुम्हारे साधकों के लाभ के लिए हैं तथा शत्रुओं द्वारा किसी प्रकार भी नाश के योग्य नहीं हैं । हे इन्द्रावरुण ! तुम्हारा वह यश और तेज कहाँ हैं जिसके द्वारा तुम मित्रों के निमित्त अन्न और बल की वृद्धि करते हो ॥ १ ॥ हे इन्द्रावरुण ! धन की इच्छा करने वाले यह साधक तुम दोनों को अन्न प्राप्ति के निमित्त बुलाते हैं । हे मरुतो ! आकाश और पृथिवी से संगत हुए तुम मेरे स्तोत्र को सुनो ॥ २ ॥ हे इन्द्रावरुण ! हमको वह अलौकिक ऐश्वर्य प्राप्त हो । हे मरुतो ! हमको सब वीरों से युक्त सुवर्ण, रत्न तथा गवादि धन प्राप्त हो । तुम्हारी रक्षक सेनाऐं अपने शत्रुनाशक साधनों तथा शस्त्रास्त्रों द्वारा हमारी रक्षा करें । सब का पालन करने वाली प्रदान करने योग्य वाणी उदार वचनों द्वारा हमारा पोषण करें ॥ ३ ॥ हे बृहस्पते ! तुम सब सज्जनों का हित करने वाले हो । हमारे द्वारा दिए जाने वाली हवियों को स्वीकार करो । हविदाता यजमान को श्रेष्ठ तथा रमणीय धन प्रदान करो ॥ ४ ॥ हे ऋत्विजो ! तुम श्रेष्ठ स्तोत्रों द्वारा बृहस्पति को यज्ञादि शुभ कर्मों के अवसरों पर नमस्कार द्वारा पूजो । मैं उनसे ही, शत्रु द्वारा कभी भी न झुकाए जा सकने वाले पराक्रम की याचना करता हूँ ॥ ५ ॥ [९]

सब मनुष्यों में सर्व सुखों की वर्षा करने में समर्थ, सब से सत्कार

वृषभं चर्षणीनां विश्वरूपमदाभ्यम् । बृहस्पतिं वरेण्यम् ॥६

इयं ते पूषन्नाघृणे सुष्टुतिर्देव नव्यसी । अस्माभिस्तुभ्यं शस्यते ॥७

तां जुषस्व गिरं मम वाजयन्तीमवा धियम् । वधूयुरिव योषणाम् ॥८

यो विश्वाभि विपश्यति भुवना सं च पश्यति ।

स नः पूषाविता भुवत् ॥९

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ।

धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ १० । १०

पाने के योग्य, किसी के द्वारा भी हिंसित न होने वाले, बलवान्, सब पर अनुग्रह करने वाले, श्रेष्ठ मार्ग पर प्रेरण करने वाले बृहस्पति सभी पदार्थों के जानने वाले हैं। उनको नमस्कार करो ॥ ६ ॥ हे पूषन् ! तुम सब प्रकार से प्रकाशमान् तथा प्रत्येक सुख की वर्षा करने में समर्थ हो। तुम्हारा यह अत्यन्त नवीन स्तोत्र सदा ही स्तुति करने के योग्य है। इस श्रेष्ठ स्तुति को हम तुम्हारे प्रति सदैव उच्चारण करते रहें ॥ ७ ॥ पत्नी की कामना करने वाला पुरुष जैसे पुष्टि चाहने वाली रमणी को प्रेम-पूर्वक स्वीकार करता है, वैसे ही हे पूषन् ! मेरी उस ज्ञानमय तथा सत्यासत्य को जानने वाली वाणी और श्रेष्ठ धारणावती, मन्त्रमय बुद्धि को प्रेम-भावना पूर्वक स्वीकार करो ॥ ८ ॥ जो पूषा सब लोकों को समान रूप से देखते हैं तथा सब लोकों को विविध दृष्टिकोण से देखते हैं, वह हमारे पोषक तथा सब प्रकार से रक्षा करने वाले हों ॥ ९ ॥ जो सवितादेव हमारी बुद्धियों को सन्मार्ग है प्रेरित करते हैं, उन पूर्ण तेजस्वी, सर्व प्रकाशक, सर्वदाता, सर्वस्रष्टा परमेश्वर के उस अद्भुत, सर्वश्रेष्ठ, पापों का नाश करने वाले तेज को धारण करते हुए उसी का ध्यान करें ॥ १० ॥

देवस्य सवितुर्वयं वाजयन्तः पुरन्ध्या। भगस्य रातिमीमहे ॥११
देवं नरः सवितारं विप्रा यज्ञैः सुवृक्तिभिः। नमस्यन्ति धियेषिताः ॥१२
सोमो जिगाति गातुविद् देवानामेति निष्कृतम्।
ऋतस्य योनिमासदम् ॥१३
सोमो अस्मभ्यं द्विपदे चतुष्पदे च पशवे। अनमीवा इषस्करत् ॥१४
अस्माकमायुर्वर्धयन्नभिमातीः सहमानः। सोमः सधस्थमासदन् ॥१५
आ नो मित्रावरुणा घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम्। मध्वा रजांसि सुक्रतू ॥१६
उरुशंसा नमोवृधा मह्ना दक्षस्य राजथः। द्राघिष्ठाभिः शुचिव्रता ॥१७
गृणाना जमदग्निना योनावृतस्य सीदतम्। पातं सोममृतावृधा ॥१८॥११

हम सर्व प्रकाशक, तेजोमय, सब ऐश्वर्यों को देने वाले सब के भजने योग्य, कल्याणरूप, सुखकारी सवितादेव की दान-वृद्धि की अन्न, बल और धन

की कामना करते हुए, धारण सामर्थ्य से युक्त स्तुति द्वारा, याचना करते हैं ॥ ११ ॥ मेधावीजन श्रेष्ठ कर्मों में प्रेरित करने वाली बुद्धि की प्रेरणा से दोषों का समूल नाश करने में सामर्थ यज्ञादि उत्तम कर्मों से सर्व प्रकाशक, सर्वप्रेरक तथा रचयिता सविता देव की नमस्कार पूजा करते हैं ॥ १२ ॥ सोम ज्ञानीजनों की प्रशंसा को प्राप्त करता हुआ उनके सर्व साधन-सम्पन्न कर्मों के कारण उनके आश्रय को प्राप्त करता है। वह अत्यन्त पुष्ट-मुख और सत्य के आश्रय से यज्ञ-स्थान को जाता है ॥ १३ ॥ वह सोम हम दो पाँव वाले मनुष्यों के निमित्त, तथा चार पाँव वाले पशुओं के निमित्त भी, रोग-रहित, स्वास्थ्यप्रद अन्नों को उत्पन्न करने में समर्थ हो ॥ १४ ॥ वह सोम हमारी आयु की वृद्धि करता हुआ तथा देह के सभी रोगों को शत्रु के समान नष्ट करता हुआ हमारे यज्ञ स्थान में हमारे साथ आकर निवास करे ॥ १५ ॥ हे मित्रावरुण ! तुम दोनों हमारे बीच में श्रेष्ठ कर्मों को करते हुए, उत्तम आचरणों द्वारा, ज्ञानयुक्त मधुर वचनों से लोगों को सींचो अथवा पृथिवी को मधुर रस से सिक्त करो ॥ १६ ॥ हे मित्रावरुण ! तुम दोनों अत्यन्त शुद्ध आचरण करने वाले हो। तुम प्रशस्त स्तुतियों से युक्त नमस्कारपूर्वक पूजन किए जाते हुए वृद्धि को प्राप्त होते हो। तुम अपनी अत्यन्त पुरुषार्थ युक्त शक्ति तथा बल और ज्ञान के महान् सामर्थ्य से सुशोभित होओ ॥ १७ ॥ हे मित्रावरुण ! तुम प्रज्ज्वलित अग्नि के समान सत्य को प्रकाशित करने वाले ज्ञान के द्वारा उपदेश करते हुए अन्न से पूर्ण हुए घर के समान विराजमान होओ। तुम दोनों नित्य सेवन करने योग्य सत्य के बल से वृद्धि को प्राप्त होते हुए श्रेष्ठ सोम-रस का पान करो ॥ १८ ॥ [११]

॥ तृतीय मण्डलम् समाप्तम् ॥

॥ अथ चतुर्थ मण्डलम् ॥

१ सूक्त

(ऋषि—वामदेवः । देवता—अग्निः अग्निर्वा वरुणश्च । छन्द—पंक्तिः, त्रिष्टुप)

त्वां ह्यग्ने सदमित्समन्यवो देवासो देवमरतिं न्येरिर इति क्रत्वा न्येरिरे।

अमर्त्यं यजत मर्त्येष्वा देवमादेवं जनत प्रचेतसं विश्वमादेवं जनत
प्रचेतसम् ॥१
स भ्रातरं वरुणमग्न आ ववृत्स्व देवाँ अच्छा सुमती यज्ञवनसं
ज्येष्ठं यज्ञवनसम् ।
ऋतावानमादित्यं चर्षणीधृतं राजानं चर्षणीधृतम् ॥२
सखे सखायमभ्या ववृत्स्वाशुं न चक्रं रथ्येव रंह्यास्मभ्यं दस्म रंह्या ।
अग्ने मृळीकं वरुणे सचा विदो मरुत्सु विश्वभानुषु ।
तोकाय तुजे शुशुचान शं कृध्यस्मभ्यं दस्म शं कृधि ॥३
त्वं नो अग्ने वरुणस्य विद्वान्देवस्य हेळोऽव यासिसीष्ठाः ।
यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषांसि प्र मुमुग्ध्यस्मत् ॥४
स त्वं नो अग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठो अस्या उषसो व्युष्टौ ।
अव यक्ष्व नो वरुणं रराणो वीहि मृळीकं सुहवो न एधि ॥५॥१२

हे अग्ने ! तुम प्रकाशमान हो। वेग से चलते हो। शत्रु को विजय करने की इच्छा वाले स्पर्द्धा से युक्त देवता तुम्हें युद्ध के निमित्त प्राप्त करते हैं। यजमान तुम्हारी स्तुति करते हुए आकर्षित करते हैं। तुम अविनाशी, प्रकाशमान और अत्यन्त ज्ञानी हो। मनुष्यों को यज्ञ-कर्म के निमित्त प्राप्त करने के लिए देवताओं ने तुम्हें प्रकट किया। तुम कर्मों के ज्ञाता को सब यज्ञों में प्रत्यक्ष रहने के लिए देवताओं ने तुम्हारी उत्पत्ति की है ॥ १ ॥ हे अग्ने ! वरुण तुम्हारे भाई हैं। वे हवियों के पात्र, यज्ञ का उपभोग करने वाले, जल वाले, प्रशंसित, अदिति के पुत्र हैं। वे जल-वृष्टि द्वारा मनुष्यों को धारण करने वाले हैं। वे सुन्दर प्रज्ञा वाले एवं शोभनीय हैं। इन वरुण को स्तुति करने वालों के सामने लाओ ॥ २ ॥ हे अग्ने ! तुम मित्र-भाव से युक्त हो। जैसे गमनोपयुक्त रथ में जुते दो घोड़े जल्दी चलने वाले पहियों को लक्ष्य पर पहुँचाते हैं, वैसे ही तुम अपने मित्र वरुण को हमारे पास पहुँचाओ। हे अग्ने ! तुम्हारे सहयोग से वरुण ने सुखदायक हवियाँ प्राप्त की हैं तथा अत्यन्त तेजस्वी मरुतों के लिए भी सुखदायक हव्य-अर्जन किया है। हे अग्ने ! तुम

हमारी सन्तान को सुख दो और हमको कल्याण प्रदान करो ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! तुम सर्व कर्मों के ज्ञाता हो । प्रकाशमान वरुण को हमारे प्रति क्रोधित न होने दो । तुम यज्ञ करने वालों में श्रेष्ठ, हवियों के वहन करने वाले और अत्यन्त प्रकाशमान हो । तुम हर प्रकार के पापों से हमारी रक्षा करो ॥ ४ ॥ हे अग्ने ! रक्षण कर्मों द्वारा हमारे अत्यन्त समीप होओ । उषा की समाप्ति पर, प्रातः वेला में यज्ञादि कार्मों की सिद्धि के निमित्त हमारे अत्यन्त निकट आओ । हमारे निमित्त जल से होने वाले रोगों को पहिले ही नष्ट कर दो । तुम यजमानों को अभीष्ट फल देने हो । इस पुष्टिप्रद हवि का सेवन करो । हम तुम्हें भले प्रकार आहूत करते हैं । तुम हमारे निकट आओ ॥५॥　　[१२]

अस्य श्रेष्ठा सुभगस्य सन्दृग्देवस्य चित्रतमा मर्त्येषु ।
शुचि घृतं न तप्तमघ्न्याया: स्पार्हा देवस्य मंहनेव धेनोः ॥६
त्रिरस्य ता परमा सन्ति सत्या स्पार्हा देवस्य जनिमान्यग्नेः ।
अनन्ते अन्तः परिवीत आगाच्छुचिः शुक्रो अर्यो रोरुचानः ॥७
स दूतो विश्वेदभि वष्टि सद्मा होता हिरण्यरथो रंसुजिह्वः ।
रोहिदश्वो वपुष्यो विभावा सदा रण्वः पितुमतीव संसत् ॥८
स चेतयन्मनुषो यज्ञबन्धुः प्र तं मह्या रशनया नयन्ति ।
स क्षेत्यस्य दुर्यासु साधन्देवो मर्तस्य सधनित्वमाप ॥९
स तू नो अग्निर्नयतु प्रजानन्नच्छा रत्नं देवभक्तं यदस्य ।
धिया यद्विश्वे अमृता अकृण्वन्द्यौष्पिता जनिता सत्यमुक्षन् ॥१०।१३

श्रेष्ठ, ऐश्वर्यवान् अग्नि की, मनुष्यों के मध्य अत्यन्त श्रेष्ठ तथा अद्भुत अनुग्रह-दृष्टि हो । जैसे दूध की इच्छा वाले मनुष्य को गौ का पवित्र दूध थनों से निकल कर उष्ण ही प्राप्त होता है, जैसे गो-दान की अभिलाषा वाले को दान स्पृहणीय होता है, वैसे अग्नि का तेज भी गाय के समान पोषण-योग्य एवं स्पृहणीय होता है ॥ ६ ॥ अग्नि के तीन रूप अग्नि, वायु और सूर्य प्रसिद्ध एवं श्रेष्ठ हैं । अनन्त आकाश में अपने तेज से व्याप्त, सब के शुद्ध करने वाले, प्रकाश से युक्त और अत्यन्त तेजस्वी अग्नि हमारे यज्ञ को

प्राप्त हों ॥ ७ ॥ वे अग्नि, देवताओं के बुलाने वाले दूत, सुवर्ण रथ वाले, कमनीय ज्वालाओं वाले सभी यज्ञों के प्राप्त होने की कामना करते हैं। सुन्दर अश्व वाले, प्रदीप्त, अग्नि अन्न से सम्पन्न घर के समान सुखकर हैं ॥ ८ ॥ अग्नि यज्ञ में व्याप्त होते हैं। वे नाना कर्मों की इच्छा वाले मनुष्यों को जानते हैं। अध्वर्युगण उन्हें उत्तरवेदी में निरन्तर स्थापित करते हैं। वे यजमानों का अभीष्ट सिद्ध करते हुए उनके घर में रहते हैं। वे प्रकाशमान अग्नि धन-सम्पन्नों के साथ निवास करते हैं ॥ ९ ॥ इस रमणीय ऐश्वर्य को स्तुति करने वाले भजते हैं, अग्नि का यह श्रेष्ठ ऐश्वर्य हमारे सामने आवे। अविनाशी देवताओं ने अग्नि को यज्ञ के निमित्त उत्पन्न किया है। आकाश उनके पालक पिता रूप है। अध्वर्यु लोग घृतादि की आहुतियों से उस सत्य-भूत अग्नि को सींचते हैं ॥ १० ॥ [१२]

स जायत प्रथमः पस्त्यासु महो बुध्ने रजसो अस्य योनौ ।
अपादशीर्षा गुहमानो अन्तायोयुवानो वृषभस्य नीळे ॥ ११
प्र शर्ध आर्त प्रथमं विपन्यां ऋतस्य योना वृषभस्य नीळे ।
स्पार्हो युवा वपुष्यो विभावा सप्त प्रियासोऽजनयन्त वृष्णे ॥ १२
अस्माकमत्र पितरो मनुष्या अभि प्र सेदुर्ऋतमाशुषाणाः ।
अश्मव्रजाः सुदुघा वव्रे अन्तरुदुस्रा आजन्नुषसो हुवानाः ॥ १३
ते मर्मृजत ददृवांसो अद्रिं तदेषामन्ये अभितो वि वोचन् ।
पश्वयन्त्रासो अभि कारमर्चन्विदन्त ज्योतिश्चकृपन्त धीभिः ॥ १४
ते गव्यता मनसा दृध्रमुब्धं गा येमानं परि षन्तमद्रिम् ।
दृळ्हं नरो वचसा दैव्येन व्रजं गोमन्तमुशिजो वि वव्रुः ॥ १५ । १४

अग्नि सबसे श्रेष्ठ है। वे घरों में रहने वाले मनुष्यों के मध्य घरों में प्रधान पुरुष के समान निवास करते हैं। वे महान जन-समूह के आश्रयस्थान रूप एवं स्वयं बिना पाँव वाले हैं। वे मस्तक रूप होते हुए भी शिरो-वर्जित हैं। वे सबके भीतर रमे रहते हैं तथा जल वर्षक मेघों में व्याप्त होते हुए धूमाकार लगते हैं ॥ ११ ॥ हे अग्ने! तुम जलों के उत्पत्ति स्थान

मेघ के नीड़ रूप अन्तरिक्ष में, स्तुतियों से युक्त हुए व्याप्त रहते हो। सर्व-श्रेष्ठ तेज तुम्हारे पास उपस्थित रहता है। जो अग्निदेव सबके चाहने योग्य, सतत युवा, कमनीय एवं प्रकाश से युक्त है, सप्त होता उन्हीं के लिए स्तुतियां उच्चारित करते हैं ॥ १२ ॥ इस लोक में हमारे पितर यज्ञ-साधन के निमित्त अग्नि के सम्मुख उपस्थित हुए। उन्होंने उषा का आह्वान किया और अग्नि की उपासना से प्राप्त हुई शक्ति के द्वारा पर्वत की गुफाओं में छाए हुए घोर अन्धकार में से दुहने योग्य, पयस्विनी गौओं को बाहर निकाला ॥ १३ ॥ उन्होंने पर्वत को तोड़ते समय अग्नि की पूजा की। अन्य ऋषियों ने भी उनके कर्मों का सर्वत्र बखान किया। उन्हें पशु-रक्षा के उपायों का पूर्ण ज्ञान था। उन्होंने अभीष्ट फल देने वाले अग्नि की स्तुति द्वारा देखने वाली इन्द्रिय का लाभ प्राप्त किया तथा अपनी उत्तम बुद्धि द्वारा यज्ञ-कर्म का साधन किया ॥ १४ ॥ पूर्वजगण कर्मों के करने में अग्रगण्य थे। वे अग्नि की सदा कामना करते थे। उन्होंने गौ के प्राप्त करने की इच्छा से अत्यन्त दृढ़ गौओं से भरे हुए गौशाला के समान पर्वत को अग्नि की स्तुतियों से प्राप्त शक्ति द्वारा खोला ॥ १५ ॥ [१४]

ते मन्वत प्रथमं नाम धेनोस्त्रिः सप्त मातुः परमाणि विन्दन् ।
तज्जानतीरभ्यनूषत व्रा आविर्भुवदरुणीर्यशसा गोः ॥ १६
नेशत्तमो दुधितं रोचत द्यौरुद्देव्या उषसो भानुरर्त ।
आ सूर्यो बृहतस्तिष्ठदज्राँ ऋजु मर्तेषु वृजिना च पश्यन् ॥ १७
आदित्पश्चा बुबुधाना व्यख्यन्नादिद्रत्नं धारयन्त द्युभक्तम् ।
विश्वे विश्वासु दुर्यासु देवा मित्र धिये वरुण सत्यमस्तु ॥ १८
अच्छा वोचेय शुशुचानमग्निं होतारं विश्वभरसं यजिष्ठम् ।
शुच्यूधो अतृणन्न गवामन्धो न पूतं परिषिक्तमंशोः ॥ १९
विश्वेषामदितिर्यज्ञियानां विश्वेषामतिथिर्मानुषाणाम् ।
अग्निर्देवानामव आवृणानः सुमृळीको भवतु जातवेदाः ॥ २० । १५

हे अग्ने ! स्तुति करने वाले अङ्गिरा आदि ऋषियों ने ही वाणी–

रूपिणी माता से उत्पन्न स्तुतियों के साधन रूप शब्दों का प्रथम बार ज्ञान प्राप्त किया फिर सत्ताईस छन्दों को जाना। इसके पश्चात् इनको जानने वाली उषा की स्तुति की और तब आदित्य के तेज से युक्त अरुण वर्ण वाली उषा का अविर्भाव हुआ ॥ १६ ॥ रात्रि के द्वारा उत्पन्न अन्धकार उषा की प्रेरणा से नष्ट हुआ फिर अन्तरिक्ष में प्रकाशमान् हुआ। उषा की आभा प्रकट हुई। मनुष्यों के सत्यासत्य कर्मों को देखने में समर्थ आदित्य सुदृढ़ पर्वत पर चढ़ गए ॥ १७ ॥ सूर्य के उदित होने पर अङ्गिरा आदि ऋषियों ने पणियों के द्वारा चुराई गई गौओं को जाना तथा पीछे से उन्हें भले प्रकार देखा। इनके सब स्थानों को यज्ञ-कर्म में भाग प्राप्त करने के पात्र देवता प्राप्त हुए। हे मित्रता की भावना से ओत-प्रोत अग्निदेव ! तुम वरुण के क्रोध को शान्त करने वाले हो। तुम्हारी पूजा करने वाले को सुन्दर फल प्राप्त हो ॥ १८ ॥ हे अग्ने तुम देवताओं का आह्वान करने वाले, अत्यन्त प्रदीप्त वाले, ससार का पालन करने वाले एवं सब की अपेक्षा अधिक यज्ञ-कर्म करने वाले हो, हम तुम्हारा स्तवन करते हैं। तुम्हारे निमित्त आहुति देने वाले यजमान न तो दूध दुहते हैं और न सोम का संस्कार करते हैं। वे केवल तुम्हारी पूजा करते हैं ॥ १९ ॥ अग्निदेव, यज्ञ के पात्र सभी देवताओं को प्रसन्न करने वाले हैं। वे अग्नि सब मनुष्यों के लिए अतिथि के समान पूजनीय है। स्तोताओं का हव्य भक्षण करने वाले अग्निदेव स्तुति करने वालों को सुखी करें ॥ २० ॥　[१५]

२ सूक्त

(ऋषि—वामदेवः। देवता—अग्निः। छन्दः—पंक्तिः, त्रिष्टुप्)

यो मर्त्येष्वमृत ऋतावा देवो देवेष्वरतिर्निधायि ।
होता यजिष्ठो मह्ना शुचध्यै हव्यैरग्निर्मनुष ईरयध्यै ॥ १
इह त्वं सूनो सहसो नो अद्य जातो जाताँ उभयाँ अन्तरग्ने ।
दूत ईयसे युयुजान ऋष्व ऋजुमुष्कान्वृषणः शुक्रांश्च ॥ २
अत्या वृधस्नू रोहिता घृतस्नू ऋतस्य मन्ये मनसा जविष्ठा ।
अन्तरीयसे अरुषा युजानो युष्मांश्च देवान्विश आ च मर्तान् ॥ ३

अर्यमणं वरुणं मित्रमेषामिन्द्राविष्णू मरुतो अश्विनोत ।
स्वश्वो अग्ने सुरथः सुराधा एदु वह सु हविषे जनाय ॥ ४
गोमाँ अग्नेऽविमाँ अश्वी यज्ञो नृवत्सखा सदमिदप्रमृष्यः ।
इळावाँ एषो असुर प्रजावान्दीर्घो रयिः पृथुबुध्नः सभावान् ॥ ५ १६

अविनाशी अग्नि सत्य स्वरूप से मनुष्यों के मध्य रहते हैं। जो प्रकाशमान् अग्निदेव इन्द्रादि देवताओं के साथ मिलकर शत्रुओं को हराने वाले हैं, वे अग्नि देवताओं को बुलाने में समर्थ हैं तथा सबसे अधिक यज्ञानुष्ठान करते हैं। वे उत्तरवेदी पर अपनी महिमा द्वारा ही प्रदीप्त होने के लिए विराजते हैं। तथा हविवहन करते हुए, यजमानों को मोक्ष प्राप्त कराने के लिए प्रकट हुए हैं ॥ १ ॥ हे बलोत्पन्न अग्निदेव ! तुम आज हमारे कार्य में सिद्ध हुए हो। तुम दर्शनीय हो, अपने पुष्ट, तेजस्वी, बली घोड़ों को रथ में जोड़कर देवताओं और मनुष्यों के बीच हविवाहक बनकर दूतरूप से प्राप्त होते हो ॥ २ ॥ हे अग्ने ! तुम सत्य के कारण रूप हो। मैं तुम्हारे दोनों लाल रङ्ग वाले घोड़ों की स्तुति करता हूँ। तुम्हारे ये घोड़े मन से भी अधिक वेग वाले हैं। वे अन्न और जल की वर्षा करते है। तुम उन तेजस्वी घोड़ों को अपने रथ में जोड़कर देवताओं और मनुष्यों के बीच में पधारो ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! तुम्हारे घोड़े, रथ एवं ऐश्वर्य सभी श्रेष्ठ हैं। अर्यमा वरुण, मित्र इन्द्र, विष्णु, मरुद्गण तथा दोनों अश्विनी कुमारों को हवियुक्त यजमानों के निमित्त इन मनुष्यों के मध्य बुलाओ ॥ ४ ॥ हे शक्तिशाली अग्निदेव ! हमारा यह यज्ञ गौ, बैल और अश्व-लाभ कराने वाला हो। जो यज्ञ अध्वर्युओं और यजमानों द्वारा किया जाता है, वह यज्ञ हव्य से सम्पन्न तथा सन्तानों से युक्त हो और अनुष्ठान धन तथा ऐश्वर्यों का कारणभूत और उपदेश करने वाले ज्ञानियों से पूर्ण हो ॥ ५ ॥ [१६]

यस्त इध्मं जभरत्सिष्विदानो मूर्धानंवा ततपते त्वाया ।
भुवस्तस्य स्वतवाँः पायुरग्ने विश्वस्मात्सीमघायत उरुष्य ॥ ६
यस्ते भराद्न्नियते चिदन्नं निशिषन्मन्द्रमतिथिमुदीरत् ।

आ देवयुरिनधते दुरोणे तस्मिन्रयिध्रुवो अस्तु दास्वान् ॥७
यस्त्वा दोषा य उषसि प्रशंसात्प्रियं वा त्वा कृणवते हविष्मान्।
अश्वो न स्वे दम आ हेम्यावान्तमंहसः पीपरो दाश्वांसम् ॥८
यस्तुभ्यमग्ने अमृताय दाशद् दुवस्त्वे कृणवते यतस्रुक्।
न स राया शशमानो वि योषन्नैनमंहः परि वरदघयोः ॥६
यस्य त्वमग्ने अध्वरं जुजोषो देवो मर्तस्य सुधितं रराणः।
प्रीतेदसद्धोत्रा सा यविष्ठासाम यस्य विधतो वृधासः ॥१०।१७

हे अग्ने ! तुम्हारे निमित्त लकड़ियों को ढोने वाला जो मनुष्य पसीने से युक्त होता है, जो तुम्हारी कामना से अपने मस्तक को काष्ठ के बोझ से भारी करता है, तुम उसका पालन करते हुए धन से युक्त करते हो। तुम उसके अहित चिन्तकों से भी उसकी रक्षा करते हो ॥ ६ ॥ हे अग्ने ! अन्न की कामना से जो तुम्हें देने के निमित्त हव्य संचित करता है, जो तुमको सोम-रस देता है, जो तुम्हें उत्तर वेदी पर अतिथि रूप से प्रतिष्ठित करता है तथा जो व्यक्ति देवत्व की कामना से अपने घर में तुम्हें स्थापित करता है, उसका पुत्र धर्ममार्गी, दृढ़ तथा उदार हो ॥ ७ ॥ हे अग्ने ! जो मनुष्य रात्रि के समय तथा जो व्यक्ति उषा वेला में तुम्हारा स्तवन करता है और हविवान् यजमान तुम्हें प्रसन्न करने का यत्न करता हैं, तुम उस यजमान की सुवर्ण से बनी झूल वाले अश्व के समान चलते हुए आकर रक्षा करो ॥ ८ ॥ हे अग्ने ! तुम्हारा कभी नाश नहीं होता। जो यजमान तुमको हवि देता हैं, जो यजमान तुम्हारे निमित्त स्रुक को ठीक करता है तथा जो यजमान तुम्हारी पूजा-सेवा करता है, वह स्तुति करने वाला यजमान कभी भी निर्धन न हो। हिंसकों की हिंसा उसे कभी भी स्पर्श न करे ॥ ६ ॥ हे सद्यःयुवा अग्ने ! तुम सदा प्रसन्न रहते हो तथा प्रकाशमान हो। जिस यजमान का भले प्रकर सम्पादित और हिंसा-शून्य भावना से दिया हुआ अन्न सेवन करते हो, वह होता निश्चय ही प्रेम करने वाला है। अग्नि की सेवा करने वाले जो यजमान यज्ञ को बढ़ाते हैं, हम उन्हीं का अनुसरण करेंगे ॥ १० ॥ [१७]

चित्तिमचित्तिं चिनवद्वि विद्वान्पृष्ठेव वीता वृजिना च मर्तान् ।
राये न जः स्वपत्याय देव दितिं च रास्वादितिमुरुष्य ॥११
कविं शशासुः कवयोऽदब्धा निधारयन्तो दुर्यास्वायोः ।
अतस्त्वं दृश्याँ अग्न एतान्पड्भिः पश्येरद्भुताँ अर्य एवैः ॥१२
त्वमग्ने वाघते सुप्रणीतिः सुतसोमाय विधते यविष्ठ ।
रत्नं भर शशमानाय घृष्वे पृथुश्चन्द्रमवसे चर्षणिप्राः ॥१३
अधा ह यद्वयमग्ने त्वाया पड्भिर्हस्तेभिश्चकृमा तनूभिः ।
रथं न क्रन्तो अपसा भुरिजोर्ऋतं येमुः सुध्य आशुषाणाः ॥१४
अधा मातुरुषसः सप्त विप्रा जायेमहि प्रथमा वेधसो नॄन् ।
दिवस्पुत्रा अङ्गिरसो भवेमाद्रिं रुजेम धनिनं शुचन्तः ॥१५।१८

जैसे अश्व को पालने वाला उसकी पीठ के कसे हुए साज को अलग कर देता है, वैसे ही अग्नि पाप पुण्य को पृथक् करें। हे अग्ने ! हमको सुन्दर पुत्र से युक्त धन प्रदान करो। तुम दान देने वाले को धन प्रदान करो और उसका निकट से पालन करो ॥ ११ ॥ हे अग्ने ! मनुष्यों के घर में निवास करने वाले तथा कभी भी निरादृत न होने वाले देवताओं ने तुम अत्यन्त ज्ञानी को होता नियुक्त किया है। हे अग्ने ! तुम यज्ञ का पालन करने वाले एवं मेधावान् हो। तुम अपने चञ्चल तेज के द्वारा देवताओं को दर्शनीय बनाओ ॥ १२ ॥ हे सद्यः युवा अग्ने ! तुम अत्यन्त तेज वाले हो। तुम मनुष्यों की इच्छाओं को पूर्ण करते हो। तुम उत्तरवेदी पर प्रतिष्ठित किए जाने के पात्र हो। जो यजमान तुम्हारे निमित्त सोम का अभिषव करता है, तुम्हारी सेवा करता हुआ स्तोत्र उच्चारण करता है, उसकी रक्षा के निमित्त उसे प्रसन्नताप्रद श्रेष्ठ धन प्रदान करो ॥ १३ ॥ हे अग्ने ! जिस कारण हम तुम्हारी अभिलाषा करते हुए हाथ-पाँव तथा देह को कार्य-रत करते हैं, उसी कारण उत्तम कार्य वाले, यज्ञ-कार्य में लगे हुए अङ्गिरादि ऋषियों ने अपने हाथों से अरणि मन्थन द्वारा शिल्पी के पथ निर्माण करने के समान तुम सत्य के कारणरूप को प्रकट किया ॥ १४ ॥ हम सात विप्र आरम्भिक मेधावी हैं !

हमने माता रूप उषा के प्रारम्भकाल से अग्नि को उत्पन्न किया है। हम प्रकाशमान् आदित्य के पुत्र अङ्गिरा हैं। हम तेजस्वी होकर जल से पूर्ण मेघ को विदीर्ण करेंगे ॥ १५ ॥ [१८]

अधा यथा: नः पितरः परासः प्रत्नासो अग्न ऋतमाशुषाणाः ।
शुचीदयन्दीधितिमुक्थशासः क्षामा भिदंतो अरुणीरप व्रन् ॥१६
सुकर्माणः सुरुचो देवयंतोऽयो न देवा जनिमा धमंतः ।
शुचंतो अग्निं ववृधंत इंद्रमूर्वं गव्यं परिषदन्तो अग्मन् ॥१७
आ यूथेव क्षुमति पश्वो अख्यद्देवानां यज्जनिमान्त्युग्र ।
मर्तानां चिदुर्वशीरकृप्रन्वृधे चिदर्य उपरस्यायोः ॥१८
अकर्म ते स्वपसो अभूम ऋतमवस्रन्नुषसो विभातीः ।
अनूनमग्निं पुरुधा सुश्चंद्रं देवस्य मर्मृजतश्चारु चक्षुः ॥१९
एता ते अग्न उचथानि वेधोऽवोचाम कवये ता जुषस्व ।
उच्छोचस्व कृणुहि वस्यसो नो महो रायः पुरुवार प्र यन्धि ॥२०॥१९

हे अग्ने ! हमारे पितरों ने श्रेष्ठ, परम्परागत और सत्य के कारण-रूप यज्ञ कर्मों को करके उत्तम पद तथा तेज को प्राप्त किया। उन्होंने उक्थों के द्वारा अन्धकार का नाश किया और पणियों द्वारा अपहृत गौओं को ढूँढ़ निकाला ॥ १६ ॥ धौंकनी के द्वारा स्वच्छ हुए लौह के समान, यज्ञादि श्रेष्ठ कार्यों में लगे, देवताओं की कामना वाले स्तोता अपने मनुष्य जन्म को यज्ञादि कार्यों के द्वारा स्वच्छ करते हैं। वे अग्नि को प्रदीप्त करते हुए इन्द्र को बढ़ाते हैं। उन्होंने चारों ओर उपासना करते हुए वृहद् गो-समूह को पाया था ॥ १७ ॥ हे अग्निदेव ! तुम तेजवान् हो। अन्न से युक्त घर में पशुओं के रहने के समान देवताओं की गौओं का सामीप्य अङ्गिरादि को प्राप्त है। उनके द्वारा लाई गई गौओं ने प्रजाओं को पुष्ट किया। वर्द्धन-सामर्थ्य से युक्त मनुष्य सन्तानवान् तथा पोषण-सामर्थ्य से युक्त होगए ॥१८॥ हे अग्ने ! हम तुम्हारी पूजा करते हैं, उसी से हम श्रेष्ठ कर्म वाले बनते हैं। अन्धकार का नाश करने वाली उषा सम्पूर्ण तेजों से युक्त हुई प्रसन्नता देने

वाले अग्नि को धारण करने वाली है। तुम प्रकाश से युक्त हो। हम तुम्हारे रमणीय तेज की उपासना करते हैं॥ १९॥ हे अग्निदेव! तुम विद्वान् हो। हम तुम्हारे निमित्त स्तोत्रों का उच्चारण करते हैं, तुम इनको ग्रहण करो। तुम प्रदीप्त होकर हमको बढ़ाओ। तुम बहुतों द्वारा वरणीय हो। हमको उत्तम धन प्रदान करो। श्रेष्ठ घर वालों में उत्तम निवास हमको दो॥ २०॥ [१९]

३ सूक्त

(ऋषि—वामदेवः। देवता—अग्नि। छन्द—त्रिष्टुप्, बृहती, पंक्तिः)

आ वो राजानमध्वरस्य रुद्रं होतारं सत्ययजं रोदस्योः।
अग्निं पुरा तनयित्नोरचित्ताद्धिरण्यरूपमवसे कृणुध्वम् ॥१
अयं योनिश्चकृमा यं वयं ते जायेव पत्य उशती सुवासाः।
अर्वाचीनः परिवीतो नि षीदेमा उ ते स्वपाक प्रतीचीः ॥२
आशृण्वते अदृपिताय मन्म नृचक्षसे सुमृळीकाय वेधः।
देवाय शस्तिममृताय शंस ग्रावेव सोता मधुषुद्यमीळे ॥३
त्वं चिन्नः शम्या अग्ने अस्या ऋतस्य बोध्यृतचित्स्वाधीः।
कदा त उक्था सधमाद्यानि कदा भवन्ति सख्या गृहे ते ॥४
कथा ह तद्वरुणाय त्वमग्ने कथा दिवे गर्हसे कन्न आगः।
कथा मित्राय मीळ्हुषे पृथिव्यै ब्रवः कदर्यम्णे कद्भगाय ॥५।२०

हे पुरुषो! देवताओं के आह्वान करने वाले, यज्ञ के स्वामी, आकाश पृथिवी को अन्न से पूर्ण करने वाले, सुवर्ण के समान आभा वाले तथा शत्रुओं को रुलाने में समर्थ रौद्र रूप वाले अग्निदेव की, मृत्यु के पूर्व ही रक्षा प्राप्त करने के निमित्त पूजा करो॥ १॥ हे अग्ने! पति की कामना वाले एवं सुन्दर वस्त्रों की सुशोभित जननी जिस प्रकार पति के लिए स्थान देती है, वैसे ही हम भी उत्तर वेदी रूप स्थान तुम्हारे लिए देते हैं। तुम्हारा यही स्थान है। हे अग्निदेव! तुम श्रेष्ठ कर्मों को करने वाले हो। तुम अपने तेज से

सुशोभित हुए हमारे सामने पधारो । यह स्तुति तुम्हारी उपासना में पहुँचे ॥ २ ॥ हे स्तोता ! तुम स्तोत्रों को सुनने वाले, निरालस्य, सुखदाता, द्रष्टा एवं अविनाशी अग्नि की कामना से स्तुतियों का उच्चारण करो । पाषाण जैसे सोम का अभिषव करने में समर्थ हैं, उसी प्रकार यजमान अग्नि के निमित्त स्तुति करने में रत रहते हैं ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! हमारे इस यज्ञानुष्ठान में तुम देवता बनो । तुम सत्य के जानने वाले और श्रेष्ठ कर्मों के करने वाले हो । तुम हमारे स्तोत्र को जानो । आह्लाद उत्पन्न करने वाले तुम्हारे स्तोत्र कब कहे जायेंगे ! कब तुम हमारे घर में मैत्री भाव से व्याप्त होगे ? ॥ ४ ॥ हे अग्ने ! हमारे पापों की बात वरुण के सामने क्यों करते हो ? हमारी निन्दा सूर्य से क्यों करते हो ? हमारा तुम्हारे प्रति कौन-सा अपराध हुआ है ? अभीष्ट फल देने वाले मित्र, पृथिवी, अर्यमा और भग से तुमने हमारी बात कही ? ॥ ५ ॥ [२०]

कद्धिष्ण्यासु वृधसानो अग्ने कद्वाताय प्रतवसे शुभंये ।
परिज्मने नासत्याय क्षे ब्रवः कदग्ने रुद्राय नृघ्ने ॥ ६
कथा महे पुष्टिम्भराय पूष्णे कद्रुद्राय सुमखाय हविर्दे ।
कद्विष्णव उरुगायाय रेतो ब्रवः कदग्ने शरवे बृहत्यै ॥ ७
कथा शर्धाय मरुतामृताय कथा सूरे बृहते पृच्छ्यमानः ।
प्रति ब्रवोऽदितये तुराय साधा दिवो जातवेदश्चिकित्वान् ॥ ८
ऋतेन ऋतं नियतमीळ आ गोरामा सचा मधुमत्पक्वमग्ने ।
कृष्णा सती रुशता धासिनैषा जामर्येण पयसा पीपाय ॥ ९
ऋतेन हि ष्मा वृषभश्चिदक्तः पुमाँ अग्निः पयसा पृष्ठ्येन ।
अस्पन्दमानो अचरद्वयोधा वृषा शुक्रं दुदुहे पृश्निरूधः ॥ १० । २१

हे अग्ने ! तुम जब यज्ञ में बढ़ते हो, तब उस बात को क्यों कहते हो ? महान् बली, शुभकारी, सर्वत्र गतिमान्, सत्य में अग्रणी वायु से भी वह बात क्यों कहते हो ? पृथिवी तथा पापियों का संहार करने वाले रुद्र से वह बात क्यों कहते हो ॥ ६ ॥ हे अग्निदेव ! उस श्रेष्ठ एवं पालक पूषा से, यज्ञ के

पात्र एवं हविर्युक्त रुद्र से, बहुत सी स्तुतियों के पात्र विष्णु से तथा महान् संवत्सर के समक्ष वह बात क्यों कहते हो ? ॥ ७ ॥ हे अग्ने ! सत्य के कारण रूप मरुद्गण में वह बात क्यों कहते हो ? पूछे जाने पर भी सूर्य से, अदिति से तथा द्रुतगामी वायु से क्यों कहते हो ? हे सबको जानने वाली मेधावी ! तुम महान् कर्मों को सिद्ध करो ॥ ८ ॥ हे अग्ने ! हम सत्य के कारणभूत यज्ञ से सम्बन्धित दुग्ध को गौओं से नित्य माँगते हैं। वह गौएँ कच्ची अवस्था में भी पक्व एवं मधुर दूध को धारण करती हैं। उनमें काली गौएँ भी पुष्टि-प्रद, प्राणदाता, श्वेत दूध देकर मनुष्यों को पुष्ट करती हैं ॥ ९ ॥ इच्छित फल की वर्षा करने वाले श्रेष्ठ अग्निदेव पोषक दूध द्वारा सींचे जाते हैं। अन्नदाता अग्निदेव अपने सम्पूर्ण तेज को एकत्र करते हुए गमन करते हैं। जल की वर्षा करने वाले आदित्य अन्तरिक्ष का दोहन करते हैं ॥ १० ॥ [२१]

ऋतेनाद्रिं व्यसन्भिदन्तः समङ्गिरसो नवन्त: गोभिः ।
शुनं नरः परि षदन्नुषासमाविः स्वरभवज्जाते अग्नौ ॥ ११
ऋतेन देवीरमृता अमृक्ता अर्णोभिरापो मधुमद्भिरग्ने ।
वाजी न सर्गेषु प्रस्तुभानः प्र सदमित्स्रवितवे दधन्युः ॥ १२
मा कस्य यक्षं सदमिद्धुरो गा मा वेशस्य प्रमिनतो मापेः ।
मा भ्रातुरग्ने अनृजोर्ऋणं वेर्मा सख्युर्दक्षं रिपोर्भुजेम ॥ १३
रक्षा णो अग्ने तव रक्षणेभी रारक्षाणः सुमख: प्रीणानः ।
प्रतिष्फुरविरुज वीड्वंहो जहि रक्षो महि चिद्वावृधानम् ॥ १४
एभिर्भव सुमना अग्ने अर्कैरिमान्त्स्पृश मन्मभिः शूरवाजान् ।
उत ब्रह्माण्यङ्गिरो जुषस्व सं ते शस्तिर्देववाता जरेत ॥ १५
एता विश्वा विदुषे तुभ्यं वेधो नीथान्यग्ने निण्या वचांसि ।
निवचना कवये काव्यान्यशंसिषं मतिभिर्विप्र उक्थैः ॥ १६ । २२

गौओं को रोकने वाले पर्वत को "मेधातिथि" आदि ने चीर डाला और तब गौओं को पाया। कर्मों में अग्रसर अङ्गिराओं ने उषा को सुख से प्राप्त किया। फिर अरणि मन्थन से अग्नि के प्रकट होने पर सूर्य उदित हुए

॥ ११ ॥ हे अग्ने ! अविनाशिनी, मधुर जल वाली नदियाँ यज्ञ द्वारा प्रेरणा प्राप्त कर, चलने के लिए उमङ्गित अश्व के समान निर्विघ्न रूप से सदा बहती हैं ॥ १२ ॥ हे अग्ने ! जो कोई हमारी हिंसा करे, उसके यज्ञ में तुम कभी भी न पहुँचना, किसी दुष्ट पड़ौसी के यज्ञ में कभी मत जाना । हमारे सिवाय किसी अन्य को मित्र न बनाना । तुम कुटिल बुद्धि वाले बन्धु की हवियों की इच्छा मत करना । हम भी शत्रु के दिए अन्न का सेवन नहीं करते । केवल तुम्हारे दिए धन को ही भोगेंगे ॥ १३ ॥ हे अग्ने ! तुम उत्तम यज्ञ वाले हो । तुम हमारी रक्षा करते हो । तुम हवि द्वारा प्रसन्न होकर अपना आश्रय प्रदान करते हुए हमारी रक्षा करो । तुम हमको बढ़ाओ । हमारे घोर पाप का नाश करते हुए इस बढ़े हुए अज्ञान को नष्ट कर डालो ॥ १४ ॥ हे अग्ने ! हमारे उपासना योग्य स्तोत्रों द्वारा तुम हम पर स्नेह करो । हमारी स्तुतियों से युक्त हवियों को स्वीकार करो । तुम हवि रूप अन्न को ग्रहण करने वाले हो हमारे स्तोत्रों को ग्रहण करो । देवताओं के निमित्त की जाने वाली स्तुतियां तुम्हें बढ़ावें ॥ १५ ॥ हे अग्ने ! तुम विधायक हो । तुम कर्मों के ज्ञाता तथा मनुष्यों के द्रष्टा हो । हम बुद्धिमान मनुष्य तुम्हारी कामना से फलदायक, गूढ़ अत्यन्त उच्चारण के योग्य, हमारे द्वारा रचित इस सम्पूर्ण स्तोत्र का भले प्रकार उच्चारण करते हैं ॥ १६ ॥ [२२]

४ सूक्त

(ऋषि—वामदेवः । देवता—रक्षोहाऽग्निः । छन्द—त्रिष्टुप् । पंक्तिः, बृहती)

कृणुष्व पाजः प्रसितिं न पृथ्वीं याहि राजेवामवाँ इभेन ।
तृष्वीमनु प्रसितिं द्रूणानोऽस्तासि विध्य रक्षसस्तपिष्ठैः ॥ १
तव भ्रमास आशुया पतन्त्यनु स्पृश धृषता शोशुचानः ।
तपूंष्यग्ने जुह्वा पतङ्गानसन्दितो वि सृज विष्वगुल्काः ॥ २
प्रति स्पशो वि सृज तूर्णितमो भवा पायुर्विशो अस्या अदब्धः ।
यो नो दूरे अघशंसो यो अन्त्यग्ने माकिष्टे व्यथिरादधर्षीत् ॥ ३
उदग्ने तिष्ठ प्रत्या तनुष्व न्यमित्राँ ओषतात्तिग्महेते ।

यो नो अरातिं समिधान चक्रे नीचा तं धक्ष्यतसं न शुष्कम् ॥ ४
ऊर्ध्वो भव प्रति विध्याध्यस्मदाविष्कृणुष्व दैव्यान्यग्ने ।
अव स्थिरा तनुहि यातुजूनां जामिमजामिं प्र मृणीहि शत्रून् ॥ ५ । २३

हे अग्ने ! तुम अपनी तेज-राशि को व्याधि द्वारा अपने जाल को बढ़ाने के समान विस्तृत करो। मन्त्री को साथ लेकर राजा के गमन करने के समान तुम अपने भय रहित तेज के साथ गमन करो तुम अपनी द्रुत वेग वाली सेना के साथ शत्रु की सेना का संहार करो। शत्रुओं को नष्ट कर डालो। तुम अपने तीक्ष्ण तेज से असुरों को विदीर्ण कर डालो ॥ १ ॥ हे अग्ने ! तुम्हारी गतिमती, द्रुतगामिनी किरणें सब जगह जाती हैं। तुम अत्यन्त तेजस्वी हो। शत्रुओं को हनने में समर्थ तेज द्वारा शत्रुओं को जला डालो। शत्रु तुमको वाधित नहीं कर सकते। तुम आकाश से गिरने वाले तारों के समान वेग से जाने वाले अपने तेज को प्रेरित करो ॥ २ ॥ हे अग्ने ! तुम अत्यन्त वेग वाले हो। शत्रुओं को रोकने वाली अपनी शक्ति को शत्रुओं के प्रति चलाओ। तुम्हें कोई हिंसित नहीं कर सकता। दूर या पास से हमारा अनिष्ट-चिन्तन करने वाले से हमारी सन्तानों की रक्षा करो। हमको कोई भी शत्रु वशीभूत न कर पावे, इसका ध्यान रखो, क्योंकि हम साधक तुम्हारे ही हैं ॥ ३ ॥ हे तीक्ष्ण ज्वाला वाले अग्निदेव ! दुष्टों का संहार करने को तैयार होओ। शत्रुओं पर अपनी ज्वालाओं का आवरण डाल दो और उन्हें भस्म कर डालो। हे अग्ने ! हमारे साथ शत्रुता का व्यवहार करने वाले दुष्ट को सूखे काठ के समान जला डालो ॥ ४ ॥ हे अग्ने ! तुम दुष्टों का संहार करने को तैयार होओ। हमसे अधिक बलवान शत्रुओं को एक-एक कर मारो। अपने दिव्य तेज को प्रत्यक्ष करो। जीवों को सन्तापित करने वाले दुष्टों को विजय रहित करो। पहले पराजित हुये अथवा अपराजित शत्रुओं का नाश कर डालो ॥ ५ ॥ [२३]

स ते जानाति सुमतिं यविष्ठ य ईवते ब्रह्मणे गातुमैरत् ।
विश्वान्यस्मै सुदिनानि रायो द्युम्नान्यर्यो वि दुरो अभि द्यौत् ॥ ६
सेदग्ने अस्तु सुभगः सुदानुर्यस्त्वा नित्येन हविषा य उक्थैः ।

पेप्रीषति स्व आयुषि दुरोणे विश्वेदस्मै सुदिना सासदिष्टिः ॥७॥
अर्चामि ते सुमतिं घोष्यर्वाक्सं ते वावाता जरतामियं गीः ।
स्वश्वास्त्वा सुरथा मर्जयेमास्मे क्षत्राणि धारयेरनु द्यून् ॥८॥
इह त्वा भूर्या चरेदुप त्मन्दोषावस्तर्दीदिवांसमनु द्यून् ।
क्रीळन्तस्त्वा सुमनसः सपेमाभि द्युम्ना तस्थिवांसो जनानाम् ॥९॥
यस्त्वा स्वश्वः सुहिरण्यो अग्न उपयाति वसुमता रथेन ।
तस्य त्राता भवसि तस्य सखा यस्त आतिथ्यमानुषग्जुजोषत् ॥१०॥

हे अत्यन्त युवा अग्ने ! तुम गतिमान [illegible] स्तुति करने वाला मनुष्य तुम्हारी कृपा प्राप्त करता है। [illegible] तुम उसके निमित्त समस्त सौभाग्यशाली दिनों को, [illegible] को ग्रहण करो। तुम उसके सामने प्रकाशमान होओ ॥ [illegible] व्यक्ति नित्य हवि-दान एवं मन्त्र रूप स्तुतियों [illegible] तुम्हारी प्रीति की इच्छा करता है, वह व्यक्ति [illegible] हो। वह कठिनता से प्राप्त होने वाली आयु को [illegible] उस यजमान के लिए सभी दिन सौभाग्य को [illegible] का फल प्राप्त करने के साधनों से सम्पन्न हो ॥ [illegible] तुम्हारी कृपा-पूर्ण बुद्धि का स्तवन करते हैं। [illegible] हुए वाक्य प्रतिध्वनित होते हुए तुम्हारा स्तवन [illegible] एवं श्रेष्ठ रथ और अश्वों से युक्त तुम्हारी सेवा [illegible] निमित्त नित्यप्रति शोभन अन्न धारण करो ॥ ८ ॥ [illegible] प्रदीप्त होते हो। इस लोक में मनुष्य तुम्हारा [illegible] तुम्हारी सेवा करते हैं। शत्रुओं के धन को [illegible] में सन्तानों के सहित मोद करते हुए प्रसन्न हृदय से [illegible] सेवा करते हैं ॥ ९ ॥ हे अग्ने ! जो मनुष्य यज्ञ के [illegible] धन आदि से सम्पन्न रथ के सहित तुम्हारे निकट आता है, [illegible] रक्षा करते हो। जो मनुष्य तुम्हें अतिथि मानकर तुम्हारा पूजन [illegible] तुम उसके प्रति मित्र-भाव रखने वाले होओ ॥१०॥

महो रुजामि बन्धुता वचोभिस्तन्मा पितुर्गोतमादन्वियाय ।
त्वं नो अस्य वचसश्चिकिद्धि होतर्यविष्ठ सुक्रतो दमूनाः ॥११
अस्वप्नजस्तरणयः सुशेवा अतन्द्रासोऽवृका अश्रमिष्ठाः ।
ते पायवः सध्र्यञ्चो निषद्याग्ने तव नः पान्त्वमूर ॥१२
ये पायवो मामतेयं ते अग्ने पश्यन्तो अन्धं दुरितादरक्षन् ।
ररक्ष तान्त्सुकृतो विश्ववेदा दिप्सन्त इद्रिपवो नाह देभुः ॥१३
त्वया वयं सधन्य स्त्वोतास्तव प्रणीत्यश्याम वाजान् ।
उभा शंसा सूदय सत्यतातेऽनुष्ठुया कृणुह्यह्रयाण ॥१४
अया ते अग्ने समिधा विधेम प्रति स्तोमं शस्यमानं गृभाय ।
दहाशसो रक्षसः पाह्य स्मान्द्रुहो निदो मित्रमहो अवद्यात् ॥१५॥२५

हे अग्ने ! तुम अत्यन्त युवा, बुद्धिमान एवं होता रूप हो । स्तोत्र द्वारा तुमसे जो हमारा भ्रातृभाव उत्पन्न हुआ है, उसके द्वारा हम आसुरी वृत्ति वाले शत्रुओं को विदीर्ण करें । यह स्तोत्र रूप वाणी गौतमों द्वारा हमको प्राप्त हुई है । तुम शत्रुओं का संहार करने वाले हो । हमारे स्तुति रूप वचनों पर पूरी तरह ध्यान देने की कृपा करो ॥ ११ ॥ हे अग्ने ! तुम सर्वज्ञाता हो । तुम्हारी रश्मियाँ सदा चैतन्य रहती हैं । वे सदा गमनशील प्रमाद-रहित अहिंसित, अश्रान्त एवं सुसंगठित रहती हुई रक्षा-कार्य में समर्थ हैं । वे रश्मियाँ इस यज्ञ स्थान पर रमण करती हुई हमारी रक्षा करें ॥ १२ ॥ हे अग्ने ! तुम्हारी इन रक्षणक्षम रश्मियों ने ममता के नेत्रहीन पुत्र दीर्घतमा पर अनुग्रह कर उसकी शाप से रक्षा की । हे अग्निदेव ! तुम अत्यन्त मेधावी, हो । अपनी उन रश्मियों का स्नेह पूर्वक पालन करते हो । तुम्हारे शत्रु तुम्हारा नाश करने की इच्छा करते हुये भी अपने प्रयत्न में विफल होते हैं ॥ १३ ॥ हे अग्ने ! तुम निसंकोच गमन करते हो । हम स्तुति करने वाले तुम्हारी कृपा से धनवान होकर तुम्हारा आश्रय प्राप्त करें । तुम्हारी प्रेरणा से हमको अन्न-लाभ हो । हे अग्ने ! तुम सत्य का विस्तार करने वाले हो । तुम पाप का नाश करने में समर्थ हो । निकट या दूर के शत्रुओं का तुम नाश करो और सभी कार्यों का साधन करो ॥ १४ ॥ हे अग्ने ! प्रस्तुत स्तुति

द्वारा हम तुम्हारी सेवा करें। हमारे स्तोत्र को ग्रहण करो। जो दुष्ट तुम्हारी स्तुति नहीं करते, उन्हें भस्म कर डालो। हे अग्ने! तुम मित्रों द्वारा पूजनीय हो। हमको शत्रुओं और निंदकों की निंदापूर्ण वार्ताओं से बचाओ ॥ १५ ॥ [२५]

५ सूक्त

(ऋषि—वामदेवः। देवता—वैश्वानरः। छन्द–त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

वैश्वानराय मीळ्हुषे सजोषाः कथा दाशेमाग्नये बृहद्भाः।
अनूनेन बृहता वक्षथेनोप स्तभायदुपमिन्न रोधः ॥१
मा निन्दत य इमां मह्यं रातिं देवो ददौ मर्त्याय स्वधावान्।
पाकाय गृत्सो अमृतो विचेता वैश्वानरो नृतमो यह्वो अग्निः ॥२
साम द्विबर्हा महि तिग्मभृष्टिः सहस्ररेता वृषभस्तुविष्मान्।
पदं न गोरपगूळ्हं विविद्वानग्निर्मह्यं प्रेदु वोचन्मनीषाम् ॥३
प्रतॉ अग्निर्बभसत्तिग्मजम्भस्तपिष्ठेन शोचिषा यः सुराधाः।
प्र ये मिनन्ति वरुणस्य धाम प्रिया मित्रस्य चेततो ध्रुवाणि ॥४
अभ्रातरो न योषणो व्यन्तः पतिरिपो न जनयो दुरेवाः।
पापासः सन्तो अनृता असत्या इदं पदमजनता गभीरम् ॥५।१

हम सब समान प्रीति वाले साधक यजमान उन अभीष्टों की वर्षा करने वाले, अत्यन्त दीप्तिमान वैश्वानर अग्नि को प्रसन्न करने के निमित्त किस प्रकार हवि दें? जैसे छप्पर को खम्भा धारण करता है वैसे ही वे अग्निदेव अपने सम्पूर्ण रूप द्वारा आकाश को धारण करते हैं ॥१॥ हे होताओ! हवियुक्त होकर हम मरणधर्मा परिपक्व बुद्धि वाले यजमानों को जो अग्निदेव धन देते हैं, उनका निरादर न करो। वे अविनाशी अग्निदेव अत्यन्त मेधावी हैं। वे श्रेष्ठ नेतृत्व वाले वैश्वानर अग्नि अत्यन्त महान् हैं ॥ २ ॥ मध्यम एवं उत्तम दोनों स्थानों में व्याप्त अग्निदेव अपने तीक्ष्ण तेज से युक्त हैं। वे अभीष्टों की वर्षा करने वाले, सारयुक्त एवं धन-संपन्न होते हुए भी पर्वत में

छिपे गोष्ठ के समान रहस्यपूर्ण हैं। उनका ज्ञान प्राप्त करना उचित है। विद्वजन महान् स्तोत्रों के अध्ययन द्वारा हमको उनका स्वरूप ज्ञान करावें ॥३॥ जो व्यक्ति मेधावी मित्र और वरुण के प्रिय तेज की हिंसा करना चाहता है, उसे तीक्ष्ण दांत वाले सुन्दर धन युक्त अग्निदेव अपने अत्यन्त क्लेशदायी तेज के द्वारा भस्म कर डालें ॥ ४ ॥ जैसे पालन करने वाले भाई से द्वेष करने वाली स्त्री तथा पति से द्वेष करने वाली मिथ्याचारिणी स्त्री दुःख देने वाली गम्भीर दशा को प्राप्त हो जाती है, वैसे ही यज्ञ-विहीन एवं अग्नि से द्वेष करने वाला सत्य-रहित तथा सत्य वाणी से शून्य पापाचारी अधःपतन को प्राप्त होते हैं ॥ ५ ॥ [१]

इदं मे अग्ने कियते पावकामिनते गुरुं भारं न मन्म ।
बृहद्दधाथ धृषता गभीरं यह्वं पृष्ठं प्रयसा सप्तधातु ॥६
तमिन्न्वे व समना समानमभि क्रत्वा पुनती धीतिरश्याः ।
ससस्य चर्मन्नधि चारु पृश्नेरग्रे रुप आरुपितं जबारु ॥७
प्रवाच्यं वचसः किं मे अस्य गुहा हितमुप निणिग्वदन्ति ।
यदुस्त्रियाणामप वारिव व्रन्पाति प्रियं रुपो अग्रं पदं वेः ॥८
इदमु त्यन्महि महामनीकं यदुस्त्रिया सचत पूर्व्यं गौः ।
ऋतस्य पदे अधि दीद्यानं गुहा रघुष्यद्रघुयद्विवेद ॥९
अध द्युतानः पित्रोः सचासामनुत गुह्यं चारु पृश्नेः ।
मातुष्पदे परमे अन्ति षद्गोर्वृष्णः शोचिषः प्रयतस्य जिह्वा ॥१०।२

हे पावक ! हम तुम्हारे प्रति किये जाने वाले व्रत को नहीं छोडते। जैसे दुर्बल को कोई भारी बोझा से लाद दे उसी प्रकार तुम हमको सुन्दर धन प्रदान करो। वह धन शत्रु को रगड़ने वाला, अन्न से युक्त, पोषण करने में समर्थ, आनन्दवर्धक एवं महान् सप्त धातुओं से युक्त है ॥ ६ ॥ यह सब प्रकार उपयुक्त, समान शोधन करने वाली स्तुति पूजन विधि के द्वारा वैश्वानर अग्नि को प्राप्त हो। वह स्तुति वैश्वानर अग्नि को चढ़ाने वाली उज्ज्वल पृथिवी के समीप से अचल आकाश पर विचरण करने के निमित्त पूर्व दिशा में

ट हुई है ॥७॥ विद्वानों का कथन है कि [illegible] ते हैं, उस दूध को वैश्वानर अग्नि गुहा में [illegible] मंडल के प्रिय स्थान के रक्षक हैं। [illegible] हा जाने के योग्य है ॥ ८ ॥ जिन अग्निदेव [illegible] म कर्म में सेवा करती है, जो अग्नि स्वयं प्रकाशमान [illegible] हैं, जो शीघ्र गतिमान एवं वेगवान हैं, वे [illegible] डल में व्याप्त उन वैश्वानर अग्नि को हम भले प्रकार [illegible] ता माता के समान आकाश पृथिवी के बीच में [illegible] र गौ के ऊर्ध्व भाग में श्रेष्ठ एवं सुस्वादु दुग्ध [illegible] ं, उन अभीष्टों की वर्षा करने वाले प्रकाशमान [illegible] वर्णी गौ के ऊर्ध्व स्थान में पय-पान करने की [illegible] ॥ १० ॥

ृतं वोचे नमसा पृच्छ्यमानस्तवाशसा जातवेदो यदीदम्।
वमस्य क्षयसि यद्ध विश्वं दिवि यदु द्रविणं यत्पृथिव्याम् ॥११॥
कं नो अस्य द्रविणं कद्ध रत्नं वि नो वोचो जातवेदश्चिकित्वान्।
ुहाध्वनः परमं यन्नो अस्य रेकु पदं न निदाना अगन्म ॥१२॥
का मर्यादा वयुना कद्ध वाममच्छा गमेम रघवो न वाजम्।
कदा नो देवीरमृतस्य पत्नीः सूरो वर्णेन ततनन्नुषासः ॥१३॥
अनिरेण वचसा फल्ग्वेन प्रतीत्येन कृधुनातृपासः।
अधा ते अग्ने किमिहा वदन्त्यनायुधास आसता सचन्ताम् ॥१४॥
अस्य श्रिये समिधानस्य वृष्णो वसोरनीकं दम आ रुरोच।
रुशद्वसानः सुदृशीकरूपः क्षितिर्न राया पुरुवारो अद्यौत् ॥१५॥

मुझसे कोई अत्यन्त आदर पूर्वक पूछे [illegible] सत्य बात कहूँ। हे अग्ने! तुम्हारी स्तुति करते हुए [illegible] प्राप्त करें तो तुम ही इस धन के अधिपति बनो। [illegible] स्वामी हो। पृथिवी और आकाश में जितने भी धन [illegible] अधीश्वर हो ॥ ११ ॥ इस धन की सामर्थ्य [illegible]

कारी धन कौन सा है ? हे अग्निदेव ! तुम जो जानते हो, वह हमको बताओ। इस धन को प्राप्त करने का जो सरल मार्ग है, उसका श्रेष्ठ उपाय बताओ। जिससे हम अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में निन्दा के भागी न बनें ॥ १२ ॥ मर्यादा क्या है ? करने योग्य कर्तव्य कौन-कौन से हैं ? जानने योग्य ज्ञान कौन से हैं ? वेगवान् अश्व जैसे युद्ध को जाता है एवं शीघ्र कार्य-क्षम व्यक्ति निरालस्य हुआ ज्ञान विज्ञानों को प्राप्त करता है, वैसे हम भी कब गतिमान होंगे और ज्ञानैश्वर्य को प्राप्त करेंगे ? उज्ज्वल प्रकाश वाली अविनाशिनी उषा सूर्य के प्रकाश से युक्त हुई कब हमारे निमित्त प्रकाशित होगी ॥ १३ ॥ हे अग्ने ! अन्न से वंचित, विरुद्ध ज्ञान वाला, अतृप्त मनुष्य इस लोक में स्वल्प वचन से तुम्हारे प्रति क्या कहता है ? वह हथियारों से रहित निहत्थे व्यक्ति की भांति असत् ज्ञान से युक्त हुये क्लेश पाते हैं ॥ १४ ॥ इस सुखपूर्वक देदीप्यमान अग्नि की तेज राशि यज्ञ स्थान में प्रशंसित होती है। यजमान को सुख देने के निमित्त वे उज्ज्वल तेज को धारण करते हैं, अतः उनका स्वरूप अत्यन्त सुन्दर है। जैसे अश्वादि धनों से युक्त हुआ राजा चमकता है, वैसे ही वे अग्निदेव यजमानों की स्तुतियों द्वारा पूजित होकर चमकते हैं ॥ १५॥ [३]

६ सूक्त

(ऋषि—वामदेवः। देवता—अग्निः। छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

ऊर्ध्व ऊ षु णो अध्वरस्य होतरग्ने तिष्ठ देवताता यजीयान्।
त्वं हि विश्वमभ्यसि मन्म प्र वेधसश्चित्तिरसि मनीषाम् ॥ १ ॥
अमूरो होता न्यसादि विक्ष्वग्निर्मन्द्रो विदथेषु प्रचेताः।
ऊर्ध्वं भानुं सवितेवाश्रेन्मेतेव धूमं स्तभायदुप द्याम् ॥२॥
यता सुजूर्णी रातिनी घृताची प्रदक्षिणिद् देवतातिमुराणः।
उदु स्वरुर्नवजा नाक्रः पश्वो अनक्ति सुधितः सुमेकः ॥३॥
स्तीर्णे बर्हिषि समिधाने अग्ना ऊर्ध्वो अध्वर्युर्जुजुषाणो अस्थात्।
पर्यग्निः पशुपा न होता त्रिविष्ट्येति प्रदिव उराणः ॥४॥

परि त्मना मितद्रुरेति होताग्निर्मन्द्रो मधुवचा ऋतावा ।
द्रवन्त्यस्य वाजिनो न शोका भयन्ते विश्वा भुवना यदभ्राट् । ५ ।४

हे होता अग्ने ! तुम याज्ञिकों में श्रेष्ठ हो । तुम हमसे परमोच्च पद पर अवस्थित होओ । तुम सभी शत्रुओं के धनों को जीतने वाले हो । स्तुति करने वालों की स्तुतियों को प्रशस्त करो ॥ १ ॥ वे अग्निदेव यज्ञ का संपादन करने वाले, प्रसन्नता को उत्पन्न करने वाले अत्यन्त ज्ञानी और मेधावी हैं। वे यज्ञ मंडप में यजमानों के मध्य विराजमान होते हैं । वे उदय होते हुए सूर्य के समान ऊँचे उठते हैं और खम्भे के समान धूम को धारण करते हैं ॥ २ ॥ प्राचीन एवं संयत जुहू घृत से पूर्ण हुआ है। यज्ञ की वृद्धि करने वाले अध्वर्यु प्रदक्षिणा करते हुए अपनी कामना को प्राप्त करते हैं । नवोत्पन्न यूप ऊपर उठता हुआ सुखकारी होता है । हितकर्त्ता यजमान गवादि पशुओं को प्राप्त करता है ॥ ३ ॥ कुश के बिछाये जाने पर तथा अग्नि के समृद्ध होने पर अध्वर्युगण दोनों का आदर करने के निमित्त प्रस्तुत होते हैं । यज्ञ का संपादन करने वाले प्राचीन अग्निदेव थोड़े से हव्य को भी प्रचुर करते हैं। वे पालकों के समान ऐश्वर्य वृद्धि करते हुए उत्तम, मध्यम, अधम तीनों श्रेणी के जीवों पर अनुग्रह करते हैं ॥ ४ ॥ प्रसन्नता प्रदान करने वाले, होता रूप, मिष्टभाषी, यज्ञ से युक्त अग्निदेव परिमित गति वाले होकर सर्वत्र गमन करते हैं। उनका प्रकाशपुंज घोड़े के समान सब ओर दौड़ता है । वे जब प्रदीप्त होते हैं तब अखिल विश्व के प्राणी डर जाते हैं ॥ ५ ॥ [४]

भद्रा ते अग्ने स्वनीक सन्दृग्घोरस्य सतो विषुणस्य चारुः ।
न यत्ते शोचिस्तमसा वरन्त न ध्वस्मानस्तन्वी रेप आ धुः ।६
न यस्य सातुर्जनितोरवारि न मातरापितरा नू चिदिष्टौ ।
अधा मित्रो न सुधितः पावकोग्निर्दीदाय मानुषीषु विक्षु ।७
द्विर्यं पञ्च जीजनन्त्संवसानाः स्वसारो अग्नि मानुषीषु विक्षु ।
उषर्बुधमथर्यो न दन्तं शुक्रं स्वासं परशुं न तिग्मम् । ८
तव त्ये अग्ने हरितो घृतस्ना रोहितास ऋज्वञ्चः स्वञ्चः ।

अरुणासो वृषण ऋजुमुष्का आ देवतातिमह्वन्त दस्माः ।९
ये ह त्ये ते सहमाना अयासस्त्वेषासो अग्ने अर्चयश्चरन्ति ।
श्येनासो न दुवसनासो अर्थं तुविष्वणसो मरुतं न शर्धः ।१०
अकारि ब्रह्म समिधान तुभ्यं शंसात्युक्थं यजते व्यू धाः ।
होतारमग्निं मनुषो नि षेदुर्नमस्यन्त उशिजः शंसमायोः । ११ । ५

हे अग्ने ! तुम्हारी ज्वालाएं सुन्दर हैं, तुम दुष्टों को भयभीत करने वाले एवं सर्वव्यापक हो । तुम्हारा मनोहर और कल्याणकारी स्वरूप भले प्रकार दर्शनीय है । रात्रि का अन्धकार भी तुम्हारे प्रकाश को रोकने में समर्थ नहीं है । राक्षसादि दुष्ट तुम्हारे शरीर पर पापमय प्रयोग करने में सफल नहीं हो सकते ॥ ६ ॥ हे वैश्वानर अग्निदेव ! तुम वर्षा के कारणभूत हो । तुम्हारा दान किसी के द्वारा रोका नहीं जा सकता । जिस अग्नि को प्रेरित करने में माता-पिता रूप पृथिवी-आकाश शीघ्र ही समर्थ नहीं होते, वे अग्नि तृप्त होकर पवित्र करने वाले होते हैं और मनुष्यों के बीच मित्र के समान प्रतिष्ठित हुए प्रकाशित होते हैं ॥ ७ ॥ मनुष्यों की दसों अंगुलियाँ, नारी के समान जिस अग्नि को प्रदीप्त करती हैं वे अग्नि उषा काल में जागने वाले, हव्य भक्षण करने वाले, उत्तम प्रकाश से चमकने वाले एवं सुन्दर स्वरूप वाले हैं । वे तीखे मुख वाले फरसे के समान शत्रुओं का नाश करते हैं ॥ ८ ॥ हे अग्ने ! तुम्हारे उन घोड़ों को हम अपने यज्ञ के सम्मुख बुलाते हैं । उनके मुख से फेन निकलता है । वे लाल वर्ण वाले सीधे मार्ग पर चलने वाले हैं । उनकी चाल सुन्दर है और वे दमकते हुए शरीर वाले युवावस्था से युक्त, बलवान तथा देखने योग्य हैं ॥ ९ ॥ अग्ने ! तुम्हारी रश्मियाँ शत्रुओं को वश करने में समर्थ हैं । वे गमनशील, दमकती हुई और पूजा के योग्य रश्मियाँ मरुतों के समान विविध नाद करने वाली हैं तथा वे घोड़े के समान गन्तव्य स्थान पर पहुंचने में पूर्ण समर्थ हैं ॥ १० ॥ हे देदीप्यमान् अग्निदेव ! यह महान् स्तोत्र तुम्हारे निमित्त ही हमने किया है । तुम्हारे निमित्त ही विद्वान पुरुष श्रेष्ठ वचनों का उच्चारण करते हैं । यजमान तुम्हारा यज्ञ करते हैं । इसलिए तुम हमको धनैश्वर्य प्रदान करो । मनुष्यों के होता अग्नि का

पूजन करने के लिए तथा पशु आदि धनों की कामना के साथ ऋत्विक् आदि विद्वान यहाँ बैठे हैं ॥ ११ ॥ [५]

७ सूक्त

(ऋषि—वामदेवः । देवता—अग्निः । छन्द—त्रिष्टुप्, उष्णिक्, अनुष्टप्)

अयमिह प्रथमो धायि धातृभिर्होता यजिष्ठो अध्वरेष्वीड्यः ।
यमप्नवानो भृगवो विरुरुचुर्वनेषु चित्रं विभ्वं विशेविशे ।१
अग्ने कदा त आनुषग्भुवद्देवस्य चेतनम् ।
अधा हि त्वा जगृभ्रिरे मर्तासो विक्ष्वीड्यम् । २
ऋतावानं विचेतसं पश्यन्तो द्यामिव स्तृभिः ।
विश्वेषामध्वराणां हस्कर्तारं दमेदमे । ३
आशुं दूतं विवस्वतो विश्वा यश्चर्षणीरभि ।
आजभ्रुः केतुमायवो भृगवाणं विशेविशे । ४
तमीं होतारमानुषक्चिकित्वांसं नि षेदिरे ।
रण्वं पावकशोचिषं यजिष्ठं सप्त धामभिः । ५ ।६

यह अग्नि सब से श्रेष्ठ, सब के आदि में वर्तमान, सर्व सुखों के दाता, पूजनीय एवं सभी यज्ञों में स्तुति करने के योग्य हैं। इन्हें आदि काल में भृगुओं ने प्रदीप्त किया था। वे अग्नि याज्ञिकों में श्रेष्ठकर्मा, तेजस्वी एवं पाप नाशक हैं। इन परमेश्वर स्वरूप अग्नि को यज्ञ करने वाले विद्वान प्रतिष्ठित करते हैं ॥ १ ॥ हे अग्ने ! तुम मनुष्यों के द्वारा पूजा करने के योग्य हो। तुम अत्यन्त दीप्तिमान् हो। तुम्हारा प्रकाश कब अनुकूल होगा ? तुमको जीवन-दाता रूप से यह मरणधर्मा मनुष्य कब ग्रहण करेंगे ? ॥ २ ॥ वे अग्निदेव विविध ज्ञानों से युक्त, माया से रहित तथा नक्षत्रों से युक्त आकाश के समान सभी यज्ञों को सम्पन्न करने वाले हैं। उन दर्शनीय को ऋत्विक् आदि मेधावी जन प्रत्येक यज्ञ स्थान में प्रतिष्ठित करते हैं ॥ ३ ॥ जो अग्निदेव प्रजाओं के सुख के निमित्त अपना तेजोमय प्रकाश देते हैं, वे शीघ्र गमनशील, यजमान

के दूत स्वरूप एवं ज्ञान के प्रकाश से युक्त हैं। उन अग्निदेव का प्रकट होना प्रत्येक प्रजाजन के लिए कल्याण करने वाला हो ॥ ४ ॥ उन होता रूप अग्नि को अध्वर्यु आदि ने यथा स्थान प्रतिष्ठित किया है। वे तेजस्वी एवं पवित्र करने वाली प्रदीप्ति से युक्त हैं। वे अत्यन्त दानशील तथा सभी के सखा रूप हैं। वे सब तेजोयुक्त अग्नि अनुकूल होकर यज्ञ स्थान में निवास करें ।५। [६]

तं शश्वतीषु मातृषु वन आ वीतमश्रितम्।

चित्रं सन्तं गुहा हितं सुवेदं कूचिदर्थिनम् । ६

ससस्य यद्वियुता सस्मिन्नूधन्नृतस्य धामन्रणयन्त देवाः ।
महाँ अग्निर्नमसा रातहव्यो वेरध्वराय सदामिदृतावा ।७
वेरध्वरस्य दूत्यानि विद्वानुभे अन्ता रोदसी सञ्चिकित्वान् ।
दूत ईयसे प्रदिवउराणो विदुष्टरो दिव आरोधनानि ।८
कृष्णं त एम रुशतः पुरो भाश्चरिष्णवर्चिर्वपुषामिदेकम् ।
यदप्रवीता दधते ह गर्भं सद्यश्चिज्जातो भवसीदु दूतः ।९
सद्यो जातस्य ददृशानमोजो यदस्य वातो अनुवाति शोचिः ।
वृणक्ति तिग्मामतसेषु जिह्वां स्थिरा चिदन्ना दयते वि जम्भैः । १०
तृषु यदन्ना तृषुणा ववक्ष तृषुं दूतं कृणुते यह्वो अग्निः ।
वातस्य मेळिं सचते निजूर्वन्नाशुं न वाजयते हिन्वे अर्वा ॥ ११ । ७

मातृभूत जलों में तथा वृक्षों में विद्यमान, जलने के भय से बहुत से प्राणियों द्वारा असेवित, गुहा में अवस्थित, अद्भुत, मेधावी और सर्वत्र हव्य सामग्री को ग्रहण करने वाले अग्नि की मनुष्यों ने उपासना की है ॥ ६ ॥ देवता निद्रा को त्याग कर उषाकाल में जिन अग्नि को यज्ञ स्थान में स्तुतियों द्वारा प्रसन्न करते हैं, सत्य से युक्त महान् अग्निदेव नमस्कारपूर्वक दिए हुए हव्य को स्वीकार करते हुए यजमान् द्वारा किये गए यज्ञ को जानते रहें ॥ ७ ॥ हे अग्ने ! तुम ज्ञानवान् हो। यज्ञ के दौत्य कर्म जानने वाले हो। तुम इन दोनों आकाश-पृथिवी के बीच अवस्थित हुए अन्तरिक्ष को भली प्रकार जानते हो। हे अग्निदेव ! तुम प्राचीन हो। अल्प हव्य को भी बढ़ाकर

अधिक कर देते हो। तुम अत्यन्त मेधावी हो, सर्वश्रेष्ठ एवं देवताओं के दूत हो। तुम देवताओं को हवि पहुँचाने के लिए स्वर्ग के उच्च स्थान को भी प्राप्त होते हो ॥ ८ ॥ हे अग्ने ! तुम प्रकाश से युक्त हो। तुम्हारा चलने का मार्ग काले रंग का है। तुम्हारी कान्ति आगे से ही दीखती है। तुम्हारा तेज सभी तेजोमय पदार्थों में सर्वश्रेष्ठ है। तुम्हारी प्राप्ति के निमित्त तुम्हारे उत्पत्ति कारण काष्ठ को ग्रहण किया जाता है और तुम उत्पन्न होते ही यजमान के दूत बन जाते हो ॥ ९ ॥ अरणियों को मथने के पश्चात् उत्पन्न होने वाले अग्नि के तेज को ऋत्विज आदि ही देखते हैं। जब अग्नि की शिखा रूप लपटों के लक्ष्य पर वायु प्रवाहमान होती है, तब अग्नि अपनी तीक्ष्ण ज्वाला को वृक्षों के समूह में व्याप्त कर देते हैं तथा अन्न रूप काष्ठादि को अपने तेज से खा जाते हैं ॥ १० ॥ अग्निदेव शीघ्रगामी किरणों द्वारा अन्नादि काष्ठ को शीघ्र ही जला डालते हैं। अग्नि महान् हैं। वे शीघ्र गमन करने वाले दूत बन जाते हैं। वे काठों को जलाकर वायु के साथ मिल जाते हैं। जैसे अश्वारोही अपने अश्व को पुष्ट करता है, वैसे यह गतिमान अग्नि अपनी रश्मियों को पुष्ट करते हैं और प्रेरणा देते हैं ॥ ११ ॥ [७]

८ सूक्त

(ऋषि—वामदेवः। देवता—अग्निः। छन्द—गायत्री)

दूतं वो विश्ववेदसं हव्यवाहममर्त्यम्। यजिष्ठमृञ्जसे गिरा ॥१
स हि वेदा वसुधितिं महाँ आरोधनं दिवः। स देवाँ एह वक्षति ॥२
स वेद देव आनमं देवाँ ऋतायते दमे। दाति प्रियाणि चिद्वसु ॥३
स होता सेदु दूत्यं चिकित्वाँ अन्तरीयते। विद्वाँ आरोधनं दिवः ॥४
ते स्याम ये अग्नये ददाशुर्हव्यदातिभिः। य ईं पुष्यन्त इन्धते ॥५
ते राया ते सुवीर्यैः ससवांसो वि शृण्विरे। ये अग्ना दधिरे दुवः ॥६
अस्मे रायो दिवेदिवे सं चरन्तु पुरुस्पृहः। अस्मे वाजास ईरताम ॥७
स विप्रश्चर्षणीनां शवसा मानुषाणाम्। अति क्षिप्रेव विध्यति ॥८।८

हे अग्ने ! तुम समस्त धनों के स्वामी, देवताओं को हवि पहुँचाने वाले, अविनाशी, अत्यन्त यज्ञ करने वाले एवं देवताओं के निमित्त दौत्य-कर्म करने वाले हो। तुम अग्निदेव को हम साधकगण स्तुतियों द्वारा बढ़ाते हैं ॥ १ ॥ वे अग्नि महान् है। वे यजमानों का मनोरथ सिद्ध करने वाले धन का दान करना जानते हैं। वे देवलोक को चढ़ने वाले स्थान के भी ज्ञाता हैं। वे अग्निदेव इन्द्रादि देवों को हमारे यज्ञ में बुलावें ॥ २ ॥ वे अग्नि प्रकाशमान हैं। वे इन्द्रादि देवों को नमस्कार करने के क्रम को जानने वाले हैं। वे यज्ञ की अभिलाषा करने वाले यजमान को यज्ञ स्थान में अभीष्ट धन देते हैं ॥३॥ दौत्य कर्म के ज्ञाता अग्निदेव होता रूप हैं। स्वर्गारोहण के योग्य स्थान को जानने वाले हैं तथा आकाश और पृथिवी के मध्य गमन करते रहते हैं ॥ ४ ॥ जो यजमान उन्हें काष्ठ के द्वारा प्रज्ज्वलित करता है, जो उन्हें हव्यदान द्वारा बढ़ाता हुआ प्रसन्न करता है, हम भी उस यजमान के समान कर्म करते हुए अग्नि को प्रसन्न करें ॥ ५ ॥ जो यजमान अग्नि का पूजनादि परिचर्या करते हैं वे धन से युक्त होते हुए, विभिन्न ऐश्वर्यों को भोगते हुए सन्तानादि सुखों से पूर्ण होते हैं ॥ ६ ॥ ऋत्विक् आदि द्वारा कामना किया हुआ धन प्रतिदिन हमारे पास आवे और उसके द्वारा हमको विभिन्न ज्ञान-विज्ञान तथा बलादि की प्राप्ति हो ॥ ७ ॥ ये अग्निदेव विद्वान हैं। वे मनुष्यों के दुःखों को वेग से चलाने वाले बाणों के समान अपने बल से प्रहार करते हुए नष्ट कर डालें ॥ ८ ॥ [८]

९ सूक्त

(ऋषि--वामदेवः । देवता---अग्निः । छन्द--गायत्री)

अग्ने मृळ महाँ असि य ईमा देवयुं जनम् । इयेथ । बर्हिरासदम् ॥१
स मानुषीषु दूळभो विक्षु प्रावीरमर्त्यः । दूतो विश्वेषां भुवत् ॥२
स सद्म परिणीयते होता मन्द्रोदिविष्टिषु । उत पोता नि षीदति ॥३
उत ग्ना अग्निरध्वर उतो गृहपतिर्दमे । उत ब्रह्मा नि षीदति ॥४
वेषि ह्यध्वरीयतामुपवक्ता जनानाम् । हव्या च मानुषाणाम् ॥५
वेषीद्वस्य दूत्यं यस्य जुजोषो अध्वरम् । हव्यं मर्तस्य वोळहवे ॥६

अस्माकं जोष्यध्वरमस्माकं यज्ञमङ्गिर: । अस्माकं शृणुधी हवम् ॥७
परि वाजपतिः कविरग्निर्हव्यान्यक्रमीत् ...

पर् दूळभो रथोऽस्मां अश्नोतु विश्वतः । येन रक्षसि दाशुषः ॥८ ।९

हे अग्ने ! हमको सुख दो । तुम देवताओं की इच्छा करने वाले एवं महान् हो । तुम यजमान के निकट कुश पर विराजमान होने की इच्छा से आते हो ॥ १॥ राक्षसादि दुष्टों द्वारा भी जिनकी हिंसा नहीं हो सकती, जो मर्त्य लोक में स्वच्छन्द विचरण करने में समर्थ हैं, वे अग्निदेव अविनाशी हैं । वे सब देवताओं के दूत हैं ॥ २ ॥ ऋत्विज् आदि द्वारा यज्ञ-गृह में ले जाए जाकर अग्निदेव स्तुति के पात्र होते हैं या वे पोता हुए यज्ञ-स्थान में जाते हैं ॥ ३ ॥ या वे अग्निदेव अध्वर्यु अथवा देवपत्नी रूप होते हैं । अथवा यज्ञ-गृह में गृहपति रूप से प्रतिष्ठित होते है । अथवा यज्ञ में ब्रह्मा रूप से विराजमान होते हैं ॥ ४ ॥ हे अग्ने ! तुम यज्ञ की कामना करने वाले मनुष्यों की हवियों की अभिलाषा करते हो । तुम अध्वर्यु आदि के कर्मों के ज्ञाता ब्रह्मा रूप हो । तुम यज्ञ कर्मों के उपदेष्टा स्वरूप हो ॥ ५ ॥ हे अग्ने ! तुम हवियाँ वहन करने के निमित्त जिस यजमान के यज्ञ का सेवन करते हो, उस यजमान के यज्ञ में दौत्य कर्म करने के लिए भी तुम इच्छा करते हो ॥ ६ ॥ हे तेजस्वी ! तुम हमारे यज्ञ का सेवन करो । हमारे हव्य को ग्रहण करो और आह्वान करने वाले हमारे स्तोत्र को सुनने का अनुग्रह करो ॥ ७ ॥ हे अग्ने ! तुम अपने जिस रथ पर चढ़ कर सब दिशाओं में गमन करते हुए हव्यदाता यजमान की रक्षा करते हो, तुम्हारा वह रथ कभी भी हिंसित नहीं हो सकता । वह रथ हमारे सब ओर व्याप्त होता हुआ रक्षा करे ॥ ८ ॥ [९]

१० सूक्त

(ऋषि—वामदेवः । देवता—अग्निः । छन्द—गायत्री ।)

अग्ने तमद्याश्वं न स्तोमैः क्रतुं न भद्रं हृदिस्पृशम् ।
ऋध्यामा त ओहैः ॥१

अधा ह्यग्ने क्रतोर्भद्रस्य दक्षस्य साधोः ।
रथीर्ऋतस्य बृहतो बभूथ ॥२

एभिर्नो अर्कैर्भवा नो अर्वाङ् स्वर्ण ज्योतिः ।
अग्ने विश्वेभिः सुमना अनीकैः ॥३
आभिष्टे अद्य गीर्भिर्गृणन्तोऽग्ने दाशेम ।
प्र ते दिवो न स्तनयन्ति शुष्माः ॥४
तव स्वादिष्ठाग्ने संदृष्टिरिदा चिदह्न इदा चिदक्तोः ।
श्रिये रुक्मो न रोचत उपाके ॥५
घृतं न पूतं तनूररेपाः शुचि हिरण्यम् ।
तत्ते रुक्मो न रोचत स्वधावः ॥६
कृतं चिद्धि ष्मा सनेमि द्वेषोऽग्न इनोषि मर्तात् ।
इत्था यजमानादृतावः ॥७
शिवा नः सख्या सन्तु भ्रात्राग्ने देवेषु युष्मे ।
सा नो नाभिः सदने सस्मिन्नूधन् ॥८।१०

हे अग्ने ! हम ऋत्विग्गण स्तुति द्वारा आज तुमको बढ़ाते हैं। जैसे घोड़ा सवार को चढ़ाता है, वैसे ही तुम हवियों को वहन करते हो। तुम यज्ञ करने वाले का उपकार करते हो। तुम भजन करने योग्य तथा अत्यन्त प्रिय एवं सुखकारी हो ॥ १ ॥ हे अग्ने ! तुम हमारे भजन के योग्य हो। तुम बढ़े हुए, अभीष्ट फल को सिद्ध करने वाले, सत्य के आधाररूप एवं महान् हो तथा रथी के समान नेतृत्व करने वाले हो ॥ २ ॥ हे अग्ने ! तुम प्रकाश से युक्त सूर्य के समान सम्पूर्ण तेज से पूर्ण एवं श्रेष्ठ अन्तःकरण वाले हो। तुम हमारे द्वारा पूजन के योग्य स्तोत्र द्वारा उत्तम चित्त वाले होकर हमारे सामने आओ ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! हम आज वाणी द्वारा स्तुति करके तुम्हारे लिए हव्य प्रदान करेंगे। सूर्य रश्मि के सामने तुम्हारी पवित्र करने वाली ज्वाला शब्दवान् है। अथवा मेघ के समान गर्जनशील है ॥ ४ ॥ हे अग्ने ! तुम्हारी परम प्रिय प्रदीप्ति अलङ्कार के समान पदार्थों को आश्रित करने के निमित्त उनके पास रात-दिन सुशोभित होती है ॥ ५ ॥ हे अग्ने ! तुम अन्न से युक्त हो। तुम्हारा स्वरूप शुद्ध घृत के समान पाप से शून्य है। तुम्हारा पवित्र एवं

शुद्ध तेज आभूषण के समान प्रकाशमान है ॥ ६ ॥ हे सत्य से युक्त अग्ने ! तुम चिरन्तन होते हुए भी यजमानों द्वारा उत्पन्न होते हो । तुम यजमानों के पाप को दूर करने में निश्चय ही समर्थ हो ॥ ७ ॥ हे अग्ने ! तुम प्रकाशमान हो । तुम्हारे प्रति हमारा जो बन्धुत्व और मैत्री भाव है, वह कल्याणकारी हो । यह मैत्रीभाव एवं भ्रातृत्व संपूर्ण यज्ञ में हमारा बन्धन रूप हो ॥ ८ ॥ [१०]

११ सूक्त (दूसरा अनुवाक)

(ऋषि—वामदेवः । देवता—अग्निः । छन्द—त्रिष्टुप्, बृहती, पंक्तिः)

भद्रं ते अग्ने सहसिन्ननीकमुपाक आ रोचते सूर्यस्य ।
रुशद्दृशे ददृशे नक्तया चिदरूक्षितं दृश आ रूपे अन्नम् ॥ १
वि षाह्यग्ने गृणते मनीषां खं वेपसा तुविजात स्तवानः ।
विश्वेभिर्यद्वावनः शुक्र देवैस्तन्नो रास्व सुमहो भूरि मन्म ॥ २
त्वदग्ने काव्या त्वन्मनीषास्त्वदुक्था जायन्ते राध्यानि ।
त्वदेति द्रविणं वीरपेशा इत्थाधिये दाशुषे मर्त्याय ॥३
त्वद्वाजी वाजम्भरो विहाया अभिष्टिकृज्जायते सत्यशुष्मः ।
त्वद्रयिर्देवजूतो मयोभुस्त्वदाशुर्जूजुवाँ अग्ने अर्वा ॥४
त्वामग्ने प्रथमं देवयन्तो देवं मर्ता अमृत मन्द्रजिह्वम् ।
द्वेषोयुतमा विवासन्ति धीभिर्दमूनसं गृहपतिममूरम् ॥ ५
आरे अस्मदमतिमारे अंह आरे विश्वां दुर्मतिं यन्निपासि ।
दोषा शिवः सहसः सूनो अग्ने यं देव आ चित्सचसे स्वस्ति ॥६ ॥११

हे अग्ने ! तुम बल से युक्त हो। तुम्हारा भजन योग्य तेज सूर्य के दीप्यमान तेज के समान है । तुम्हारा तेज सुन्दर एवं दर्शनीय है, वह रात्रि में भी छिपता नहीं । तुम अत्यन्त रूप वाले हो । तुम्हारी प्रेरणा से घृतादि युक्त अन्न उत्पन्न होता है ॥ १ ॥ हे बहुत जन्म वाले अग्निदेव ! तुम यज्ञ करने वालों के द्वारा पूजित हुए, स्तोता यजमान के निमित्त पुण्य लोक का द्वार खोलो तुम सुन्दर तेज से युक्त हो । देवताओं के साथ तुम यजमान को जो धन प्रदान करते हो, हमको भी वही इच्छित धन प्रदान करो ॥ २ ॥ हे

अग्ने ! हवियों का वहन करना और देवताओं के आगमन सम्बन्धी कार्य तुम्हारे द्वारा ही प्रकट हुए हैं। स्तुति रूपी वाणी तुम्हारे द्वारा ही उत्पन्न हुई है और आराधना के योग्य मन्त्र भी तुमसे ही प्रकट हुए हैं । सत्य कर्म वाले एवं हविदाता यजमान के निमित्त पुष्टिदायक धन एवं अन्न भी तुम्हारे द्वारा ही उत्पन्न हुए हैं ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! शक्तिशाली, हव्य वहन करने वाले यज्ञ कर्मों के साधक, महान् और सत्य बल से युक्त पुत्र तुम्हारे द्वारा ही प्रकट हुए हैं। देवताओं द्वारा प्रेरित कल्याणकारी ऐश्वर्य तुम्हारे द्वारा प्रकट होता है। विशेष गति वाला, वेगवान्, शीघ्रगामी अश्व भी तुम्हारे द्वारा ही उत्पन्न हुआ ॥ ४ ॥ हे अग्ने ! तुम अविनाशी हो । देवताओं की कामना करने वाले मनुष्य स्तुतियों द्वारा तुम्हारी सेवा करते हैं। तुम देवताओं में आदि देवता हो । तुम दीप्तिमान हो । तुम्हारी जिह्वा देवताओं को बलवान् बनाने वाली है। तुम पापों को दूर करते हो तथा दैत्यों का संहार करने की कामना करते रहते हो ॥ ५ ॥ हे बलोत्पन्न अग्निदेव ! तुम रात्रि के समय मङ्गलकारी एवं प्रकाशमान होकर हमारे कल्याण के निमित्त जागरूक रहते हो। जिस कारण-वश तुम यजमानों को पुष्ट करते हो, उसी से हमारे समीप उत्पन्न हुई मति-हीनता को हटाओ। हमारे पास से पाप को हटा दो। हमारे पास से कुबुद्धि को दूर करो ॥ ६ ॥ [११]

१२ सूक्त

(ऋषि—वामदेवः । देवता—अग्निः । छन्द—त्रिष्टुप्-पंक्तिः)

यस्त्वामग्न इनधते यतस्रुक्त्रिस्ते अन्नं कृणवत्सस्मिन्नहन् ।
स सु द्युम्नैरभ्यस्तु प्रसक्षत्तव क्रत्वा जातवेदश्चिकित्वान् । १
इध्मं यस्ते जभरच्छश्रमाणो महो अग्ने अनीकमा सपर्यन् ।
स इधानः प्रति दोषामुषासं पुष्यन्रयिं सचते घ्नन्नमित्रान् ।२
अग्निरीशे बृहतः क्षत्रियस्याग्निर्वाजस्य परमस्य रायः ।
दधाति रत्नं विधते यविष्ठो व्यानुषङ्मर्त्याय स्वधावान् ।३
यच्चिद्धि ते पुरुषत्रा यविष्ठाचित्तिभिश्चकृमा कच्चिदागः ।

क्रुधी ष्व स्मां अदितेरनागान्व्येनांसि शिश्रथो विष्वगग्ने ।४
महश्चिदग्न एनसो अभीक ऊर्वाद्देवानामुत मर्त्यानाम् ।
मा ते सखायः सदमिद्रिषाम यच्छा तोकाय तनयाय शं योः ।५
यथा ह त्यद्वसवो गौर्यं चित्पदि षिताममुञ्चता यजत्राः ।
एवो ष्व स्मन्मुञ्चता व्यंहः प्रतार्यग्ने प्रतरं न आयुः ।६

हे अग्ने ! स्रुक को स्थिर कर जो यजमान तुम्हें प्रदीप्त करता है एवं जो तुम्हें नित्यप्रति तीनों सवनों में हविरूप अन्नदान करता है, वह तुम्हें तृप्ति करने वाले कर्म द्वारा तुम्हारे तेज का ज्ञान प्राप्त कर धन से शत्रुओं को जीतता है ॥ १ ॥ हे अग्ने ! जो व्यक्ति तुम्हारे लिए यज्ञ-साधक काष्ठ को लाता है तथा जो व्यक्ति काष्ठ की खोज में थक कर तुम्हारे तेज की पूजा करता है एवं रात और दिन में तुम्हें प्रज्ज्वलित करता है, वह वह यजमान सन्तान और पशुओं से सम्पन्न होकर शत्रुओं का नाश करता और धन प्राप्त करता है ॥ २ ॥ वे अग्नि महान् शक्ति के स्वामी तथा श्रेष्ठ अन्न और पशु-रूप धन के अधिपति हैं । अत्यन्त युवा एवं अन्नवान् अग्नि सेवा करने वाले यजमान को सुन्दर धन से सम्पन्न करें ॥ ३ ॥ हे सद्यः युवा अग्निदेव ! तुम्हारे सेवकों के मध्य हम अज्ञान के वश में पड़े हुए तुम्हारा अाराध करते हैं, तुम पृथ्वी के निकट हमको उन अपराधों और पापों से बचा दो । हे अग्ने ! तुम सर्वत्र प्राप्त हो । हमारे पापों को हटाओ ॥ ४ ॥ अग्ने ! तुम हमारे मित्र हो । हमने इन्द्रादि देवताओं अथवा सद् मनुष्यों का जो अपराध या पाप किया है, उस घोर पाप से हम कभी भी विघ्नों को प्राप्त न हों । तुम हमारी सन्तान को भी पाप-रूप उपद्रवों से बचाते हुए सुख प्रदान करो ॥ ५ ॥ हे अग्ने ! तुम पूज्य एवं निवास से युक्त हो । तुमने जिस प्रकार पाँवों से बँधी हुई गौ को बचाया था, उसी प्रकार हमको पाप से बचाओ, हे अग्ने ! हमारी आयु तुम्हारे द्वारा बढ़ाई गई है, तुम इसे और भी बढ़ाओ ॥ ६ ॥ [१२]

१३ सूक्त

(ऋषि—वामदेवः । देवता—अग्निः । छन्दः—त्रिष्टुप्)

प्रत्यग्निरुषसामग्रमख्यद्विभातीनां सुमना रत्नधेयम् ।

यातमश्विना सुकृतो दुरोणमुत्सूर्यो ज्योतिषा देव एति ॥१
ऊर्ध्वं भानुं सविता देवो अश्रेद्द्रप्सं दविध्वद्गविषो न सत्वा ।
अनु व्रतं वरुणो यन्ति मित्रो यत्सूर्यं दिव्यारोहयन्ति ॥ २
यं सीमकृण्वन्तमसे विपृचे ध्रुवक्षेमा अनवस्यन्तो अर्थम् ।
तं सूर्यं हरितः सप्त यह्वीः स्पशं विश्वस्य जगतो वहन्ति ॥३
वहिष्ठेभिर्विहरन्यासि तन्तुमवव्ययन्नसितं देव वस्म ।
दविध्वतो रश्मयः सूर्यस्य चर्मेवावाधुस्तमो अप्स्वन्तः ॥ ४
अनायतो अनिबद्धः कथायं न्यङ्ङुत्तानोऽव पद्यते न ।
कया याति स्वधया को ददर्श दिवः स्कम्भः समृतः पाति नाकम् ॥५॥१३

हे श्रेष्ठ मन वाले अग्निदेव ! अन्धकार का नाश करने वाली उषा के प्रकाश के पहले ही तुम प्रवृद्ध होते हो। हे अश्विनीकुमारो ! तुम यजमान के घर में गमन करो। ऋत्विक् आदि को प्रेरणा देने वाले सूर्य अपने तेज सहित उषा काल में उदित होते हैं ॥ १ ॥ सूर्यदेव किरणों को विकसित करते हैं। जब किरणें सूर्य को आकाश में चढ़ाती हैं, तब वरुण, मित्र और अन्य सभी देवता अपने कर्मों के पीछे चलते है, उसी प्रकार, जिस प्रकार बलिष्ठ बैल गौओं की इच्छा कर धूल उड़ाता हुआ गौओं के पीछे चलता है ॥ २ ॥ सृष्टि रचयिता देवताओं ने संसार के कार्य को न त्याग कर अन्धेरे को नष्ट करने के निमित्त जिस सूर्य की रचना की, वह सूर्य समस्त प्राणियों को जानने वाले हैं। उन्हें सात घोड़े धारण करते हैं ॥ ३ ॥ हे प्रकाशमान् सूर्य ! तुम संसार का पालन करने वाले अन्न के निमित्त रश्मियों को बढ़ाते हो। तुम ही उस काले रङ्ग की रात्रि को भगाते हो और अत्यन्त बोझ को भी ढो लेने वाले घोड़ो द्वारा गमन करते हो। सूर्य की गतिमान रश्मियाँ अन्तरिक्ष में स्थित अंधकार को दूर करने वाली हों ॥ ४ ॥ प्रत्यक्ष प्राप्त सूर्य को कोई बाँध नहीं सकता। नीचे रहने वाले सूर्य की कोई हिंसा नहीं कर सकता। वे किस बल से ऊँचे उठते हुए चलते हैं ? आकाश में खम्भे के समान हुए सूर्य स्वर्ग को आश्रय देते हैं। इसे कौन देखता है ? ॥ ५ ॥ [१३]

१४ सूक्त

(ऋषि—वामदेवः। देवता—अग्निर्लि ङ्गोक्ता वा। छन्द–पंक्तिः, त्रिष्टुप्)
प्रत्यग्निरुषसो जातवेदा अख्यद्देवो रोचमाना महोभिः।
आ नासत्योरुगाया रथेनेमं यज्ञमुप नो यातमच्छ ॥१
ऊर्ध्वं केतुं सविता देवो अश्रेज्ज्योतिर्विश्वस्मै भुवनाय कृण्वन्।
आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं वि सूर्यो रश्मिभिश्चेकितानः ॥२
आवहन्त्यरुणीर्ज्योतिषागान्मही चित्रा रश्मिभिश्चेकिताना।
प्रबोधयन्ती सुविताय देव्यु षा ईयते सुयुजा रथेन ॥३
आ वां वहिष्ठा इह ते वहन्तु रथा अश्वास उषसो व्युष्टौ।
इमे हि वां मधुपेयाय सोमा अस्मिन्यज्ञे वृषणा मादयेथाम् ॥४
अनायतो अनिबद्धः कथायं न्यङ्ङुत्तानोऽव पद्यते न।
कया याति स्वधया को ददर्श दिवः स्कम्भः समृतः पाति
नाकम् ॥ ५ । १४

जैसे तेजवंत सूर्य स्वयं प्रकाशित हुआ उषा को प्रकाशमान करता है, वैसे ही धनैश्वर्य के अधिपति अग्नि महान् सम्पत्तियों से प्रकाशित होने वाली अपनी किरणों को प्रकाशित करते हैं। अश्विद्वय! तुम गमनशील हो। रथ पर चढ़कर तुम दोनों इस यज्ञ को आकर प्राप्त होओ ॥ १ ॥ प्रकाशमान सूर्य सब लोकों को प्रकाशित करके किरणों के आश्रय पर चलते हैं। सबके द्रष्टा सूर्य ने अपनी रश्मियों द्वारा आकाश, पृथिवी और अंतरिक्ष को पूर्ण किया है ॥ २ ॥ धनों को धारण करने वाली, महती, ज्योतिर्मती अरुण वर्ण वाली उषा रश्मियों के द्वारा रूप वाली हुई प्रकट होती है। वह उषा जीवमात्र को चैतन्य करती हुई अपने सुशोभित रथ द्वारा कल्याण के निमित्त गमनशील होती है ॥ ३ ॥ हे अश्विनीकुमारो! उषा के उदय होने पर वहन करने की अत्यन्त क्षमता वाले गमनशील घोड़े तुमको इस यज्ञ-स्थापन में पहुँचावें। तुम दोनों ही कामनाओं की वर्षा करने वाले हो। यह सोम तुम्हारे निमित्त प्रस्तुत है, अतः इस यज्ञ में सोम पीकर पुष्टि को प्राप्त

करो ।। ४ ।। प्रत्यक्ष उपलब्ध सवितादेव को बांधने में कोई भी समर्थ नहीं है वे नीचे रहें तब भी उनकी हिंसा किया जाना संभव नहीं । वे किस बल से ऊँचे उठते हुए चलते हैं ? वे ही आकाश में स्तंभ के समान स्वर्ग के आश्रय-भूत हैं । इसे कौन देखता है ? अर्थात् इस तत्व का ज्ञाता कोई नहीं है ।। ५ ।। [१४]

१५ सूक्त

(ऋषि – वामदेवः । देवता—अग्नि, सोमक और अश्विनी । छन्द—गायत्री)

अग्निर्होता नो अध्वरे वाजी सन्परि णीयते ।

देवो देवेषु यज्ञियः ।।१

परि त्रिविष्टयध्वरं यात्यग्नी रथीरिव । आ देवेषु प्रयो दधत् ।।२

परि वाजपतिः कविरग्निर्हव्यान्यक्रमीत् । दधद्रत्नानि दाशुषे ।।३

अयं यः सृञ्जये पुरो दैववाते समिध्यते । द्युमाँ अमित्रदम्भनः ।।४

अस्य घा वीर ईवतोऽग्नेरीशीत मर्त्यः ।

तिग्मजम्भस्य मीळ्हुषः ।।५ ।१५

यज्ञ का सम्पादन करने वाले देवताओं में यज्ञ के योग्य एवं प्रदीप्तिवान् अग्निदेव को हमारे यज्ञ में, तेज चलने वाले घोड़े के समान लाया जाता है ।। १ ।। वे अग्निदेव, देवताओं के निमित्त हविरूप अन्न धारण करते हुए नित्य प्रति तीन बार गमनशील रथ के समान चलते हैं ।। २ ।। अन्नों की रक्षा करने वाले मेधावी अग्निदेव हविदाता यजमान को सुन्दर धन प्रदान करते हुए हविरन्न को सब ओर से व्याप्त करते हैं ।। ३ ।। जो अग्निदेव वायु के सम्पर्क से अधिक प्रकाशित होते हुए शत्रुओं का नाश करने में समर्थ हैं, वह तेजस्वी अग्नि विद्वानों द्वारा प्राप्त होने योग्य हैं । वे शत्रु-विजय के कार्य में सब से आगे प्रदीप्तियुक्त होते हैं ।। ४ ।। वीर स्तोता तीक्ष्ण तेज वाले शत्रुओं पर अस्त्र-शस्त्रादि की वर्षा करने में समर्थ एवं गमनशील अग्नि पर अपना अधिकार बतावें ।। ५ ।। [१५]

तमर्वन्तं न सानसिमरुषं न दिवः शिशुम् । मर्मृज्यन्ते दिवेदिवे ।।६

बोधद्यन्मा हरिभ्यां कुमारः साहदेव्यः । अच्छा न हूत उदरम् ॥७
उत त्या यजता हरी कुमारात्साहदेव्यात् । प्रयता सद्य आ ददे ॥ ८
एष वां देवावश्विना कुमारः साहदेव्यः । दीर्घायुरस्तु सोमकः ॥ ९
तं युवं देवावश्विना कुमारं साहदेव्यम् । दीर्घायुषं कृणोतन ॥ १०।१६

वहनशील अश्व के समान हवि-वाहक, आकाश के पुत्र के समान, सूर्य की तरह प्रदीप्ति वाले तथा समान भजनीय अग्निदेव की यजमान गण बारम्बार सेवा करें ॥ ६ ॥ "सहदेव" के पुत्र राजा "सोमक" ने इन दोनों अश्वों को हमको देने का विचार प्रकट किया, तब हम उनके पास जाकर इन दोनों को लेकर चले आए ॥ ७ ॥ "सहदेव-पुत्र" राजा "सोमक" के पास से उन परिचर्या योग्य सुन्दर घोड़ों को हमने उसी दिन ले लिया ॥ ८ ॥ हे अश्विनी कुमारो ! तुम दोनों उज्ज्वल तेज वाले हो । "सहदेव-पुत्र" राजा "सोमक" ने तुम दोनों को तृप्त किया है, "सोमक" सौ वर्ष की आयु प्राप्त करें ॥ ९ ॥ हे अश्विनी कुमारो ! तुम दोनों उज्ज्वल कान्ति वाले हो । "सहदेव" के पुत्र राजा "सोमक" को तुम दीर्घ आयु प्रदान करो ॥ १० ॥ [१६]

१६ सूक्त

(ऋषि—वामदेवः । देवता—इन्द्रः । छन्द—त्रिष्टुप् पंक्तिः)

आ सत्यो यातु मघवां ऋजीषी द्रवन्त्वस्य हरय उप नः।
तस्मा इदन्धः सुषुमा सुदक्षमिहाभिपित्वं करते गृणानः ॥ १
अव स्य शूराध्वनो नान्तेऽस्मिन्नो अद्य सवने मन्दध्यै ।
शंसात्युक्थमुशनेव वेधाश्चिकितुषे असुर्याय मन्म ॥ २
कविर्न निण्यं विदथानि साधन्वृषा यत्सेकं विपिपानो अर्चात् ।
दिव इत्था जीजनत्सप्त कारूनह्ना चिच्चक्रुर्वयुना गृणन्तः ॥ ३
स्वर्यद्वेदि सुदृशीकमर्कैर्महि ज्योती रुरुचुर्यद्ध वस्तोः ।
अन्धा तमांसि दुधिता विचक्षे नृभ्यश्चकार नृतमो अभिष्टौ ॥ ४
ववक्ष इन्द्रो अमितमृजीष्यु भे आ पप्रौ रोदसी महित्वा ।

अतश्चिदस्य महिमा विरेच्यभि यो विश्वा भुवना बभूव ॥ १५ । १७

सोम के स्वामी, मत्थ से युक्त इन्द्र हमारे पास आवें। इनके घोड़े हमारे पास आवें। हम यजमान इन्द्र के निमित्त ही अन्न के सार रूप सोम को सिद्ध करेंगे। वे इन्द्र हमारे द्वारा पूजित होकर हमारी कामना को सिद्ध करें ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! तुम शत्रुओं को डराने वाले हो। दिन के इस मध्य सवन में, जैसे, अपने निर्दिष्ट स्थान पर पहुँच कर अश्वों को विमुक्त किया जाता है, वैसे ही तुम हमको विमुक्त करो, जिससे सवन में हम तुम्हें पुष्ट कर सकें। हे इन्द्र ! तुम शत्रुओं का नाश करने वाले एवं सर्वज्ञाता हो। उशना के समान, यजमानगण तुम्हारे निमित्त सुन्दर स्तोत्र को कहते हैं ॥ २ ॥ गूढ़ अर्थों का सम्पादन करने वाले कवियों के समान, कामनाओं की वर्षा करने वाले इन्द्र कार्यों का सम्पादन करते हैं। जब सेवन के योग्य सोम को अधिक परिमाण में पीकर इन्द्र पुष्टि को प्राप्त करते हैं तब आकाश से सप्त रश्मियाँ मनुष्यों के लिए ज्ञानदात्री होती हैं ॥ ३ ॥ जब प्रकाश स्वरूप आकाश रश्मियों के द्वारा उत्तम प्रकार से दर्शनीय होता है, तब देवतागण तेज से चमकते हुए, उस स्वर्ग में निवास करते हैं। सबका नेतृत्व करने वाले सविता देव ने प्रकट होकर मनुष्यों के देखने के लिए गम्भीर अँधेरे का नाश कर डाला ॥ ४ ॥ सोमवान् इन्द्र अत्यन्त महिमावान् हो जाते हैं। वे अपनी महिमा से आकाश और पृथिवी दोनों को सम्पन्न करते हैं। इन्द्र ने सब लोकों को व्याप्त किया है क्योंकि वे सब लोकों के महान् हैं ॥ ५ ॥ [१७]

विश्वानि शक्रो नर्याणि विद्वानपो रिरेच सखिभिर्निकामैः ।
अश्मानं चिद्ये विभिदुर्वचोभिर्व्रजं गोमन्तमुशिजो वि वव्रुः ॥ ६
अपो वृत्रं वव्रिवांसं पराहन्प्रावत्ते वज्रं पृथिवी सचेताः ।
प्रार्णांसि समुद्रियाण्यैनोः पतिर्भवञ्छवसा शूर धृष्णो ॥ ७
अपो यदद्रिं पुरुहूत दर्दराविर्भुवत्सरमा पूर्व्यं ते ।
स नो नेता वाजमा दर्षि भूरिं गोत्रा रुजन्नङ्गिरोभिर्गृणानः ॥ ८
अच्छा कविं नृमणो गा अभिष्टौ स्वर्षाता मघवन्नाधमानम् ।

ऊतिभिस्तमिषणो द्युम्नहूतौ नि मायावान्ब्रह्मा दस्युरर्त ॥ ९
आ दस्युघ्ना मनसा याह्यस्तं भुवत्ते कुत्सः सख्ये निकामः ।
स्वे योनौ नि षदतं सरूपा वि वां चिकित्सदृतचिद्ध नारी ॥ १० । १८

वे इन्द्र मनुष्यों के लिए हितकारक सभी कार्यों को जानते हुए जल वर्षा आदि करते हैं। उन्होंने कामनायुक्त मित्र-भाव वाले मरुद्गण के लिए जल-वर्षा की थी। जिन मरुद्गण ने वाणो की ध्वनि से ही पर्वतों को चीर डाला, उन्होंने इन्द्र की कामना करते हुए गौओं से पूर्ण गोष्ठ को खोल दिया ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारा वज्र लोकों की रक्षा करने वाला है। उसने जलों के आवरण रूप मेघ को गतिमान किया। यह चैतन्य पृथिवी तुमसे पूर्ण हुई है तुम अत्यन्त वीर एवं वर्षणशील हो। हे इन्द्र ! तुम अपनी ही शक्ति से लोकों का पालन करते हुए सामुद्रिक और आकाशस्थ जल को प्रेरित करो ॥ ७ ॥ हे इन्द्र ! तुम बहुतों द्वारा बुलाए गए हो। जब तुमने वर्षा वाले जल को देखकर मेघ को चीरा था, जब तुम्हारे निमित 'सरमा" ने पणियों द्वारा चुराई गई गौओं का रहस्योद्घाटन किया था। तुम अङ्गिराओं द्वारा स्तुत्य होकर हमको अन्न देते और हमारा कल्याण करते हो ॥ ८ ॥ हे धनेश्वरयुक्त इन्द्र ! मनुष्य तुम्हारा आदर करते हैं। धन देने के निमित्त "कुत्स" के सामने गए थे। पुकारने पर तुमने शत्रुओं के उपद्रवों से उनको बचाकर आश्रय दिया था। अपनी सुमति से कपटी ऋत्विकों के कार्यों को तुमने जान लिया और "कुत्स" के धन की इच्छा करने वाले शत्रु को नष्ट कर कर डाला ॥ ९ ॥ हे इन्द्र ! तुमने शत्रुओं को मारने का निश्चय कर लिया और "कुत्स" के घर में जा पहुँचे। "कुत्स" भी तुम्हारी मित्रता के लिए आतुर था। तब तुम दोनों अपने स्थान पर अवस्थित हुए। सत्य को देखने वाली तुम्हारी पत्नी शची तुम दोनों का एक रूप देखकर अत्यन्त संशय में पड़ गई ॥ १० ॥   [१०]

यासि कुत्सेन सरथमवस्युस्तोदो वातस्य हर्योरीशानः ।
ऋज्रा वाजं न गध्यं युयूषन्कविर्यदहन्पार्याय भूषात् ॥ ११
कुत्साय शुष्णमशुषं नि बर्हीः प्रपित्वे अह्नः कुयवं सहस्रा ।

सद्यो दस्यून्प्रमृण कुत्स्येन प्र सूरश्चक्रं वृहतादभीके ॥ १२
त्वं पिप्रुं मृगयं शूशुवांसमृजिश्वने वैदथिनाय रन्धीः ।
पञ्चाशत्कृष्णा नि वपः सहस्रात्कं न पुरो जरिमा वि दर्दः ॥ १३
सूर उपाके तन्वं दधानो वि यत्ते चेत्यमृतस्य वर्पः ।
मृगो न हस्ती तविषीमुषाणः सिंहो न भीम आयुधानि विभ्रत् ॥ १४
इन्द्रं कामा वसूयन्तो अग्मन्त्स्वर्मीळ्हे न सवने चकानाः ।
श्रवस्यवः शशमानास उक्थैरोको न रण्वा सुदृशीव पुष्टिः ॥ १५ । १६

जब ज्ञानी "कुत्स" ग्रहण करने योग्य अन्न के समान शीघ्रगामी दोनों घोड़ों को अपने रथ में छोड़कर संकटावस्था से छुटकारा पाने में समर्थ हुए, तब हे इन्द्र ! तुमने उसके रथ पर उसकी रक्षा करने के लिए एक साथ गमन किया। तुम शत्रुओं का नाश करने वाले, वायु के समान गति वाले अश्वों के स्वामी हो ॥ ११ ॥ हे इन्द्र ! तुमने कुत्स के कारण शुष्ण को मार डाला। दिन के आरम्भ में तुमने कुयव नामक दैत्य का वध किया। उसी समय तुमने अपने वज्र द्वारा बहुत से शत्रुओं का संहार किया। युद्ध में तुमने सूर्य के चक्र को भी तोड़ दिया ॥ १२ ॥ हे इन्द्र ! तुमने "पिप्रु" और "प्रवृद्ध मृगय" नामक असुरों का वध किया। तुमने "विदथि" के पुत्र "ऋजिश्वा" को बन्दी बनाया और पचास सहस्र काले रंग वाले दैत्यों को मार डाला। जैसे बुढ़ापा रूप का नाश कर देता है, वैसे ही तुमने शम्बर के नगरों का नाश कर डाला ॥ १३ ॥ हे इन्द्र ! तुम अविनाशी हो। तुम जब सूर्य के समीप प्रकट होते हो तब तुम्हारा रूप अत्यन्त दीप्तिमान होता है। सूर्य के सामने सभी फीके पड़ जाते हैं, परन्तु इन्द्र का रूप अधिक तेजोमय हो जाता है। हे इन्द्र ! तुम मृगया के समान शत्रु को जलाते और शस्त्र धारण करते हो तथा उस समय सिंह के समान विकराल हो जाते हो ॥ १४ ॥ दैत्यों द्वारा उत्पन्न भय को निवारण करने के निमित्त इन्द्र की आश्रय-कामना वाले एवं धन की अभिलाषा करने वाले, युद्ध के समान यज्ञ में इन्द्र से अन्न माँगते हैं। वे स्तोत्रों द्वारा इन्द्र को स्तुति करते हुए उनके समीप जाते हैं। उस समय वे

इन्द्र उनके लिए आश्रयस्थान के समान रक्षक और रमणीय एवं दर्शनीय धन के समान ऐश्वर्य सम्पन्न होते हैं ॥ १५ ॥

[१६]

तमिद्व इन्द्रं सुहवं हुवेम यस्ता चकार नर्या पुरूणि ।
यो मावते जरित्रे गध्यं चिन्मक्षू वाजं भरति स्पार्हराधाः ॥१६
तिग्मा यदन्तरशनिः पताति कस्मिञ्चिच्छूर मुहुके जनानाम् ।
घोरा यदर्य समृतिर्भवात्यध स्मा नस्तन्वो बोधि गोपाः ॥१७
भुवोऽविता वामदेवस्य धीनां भुवः सखावृको वाजसातौ ।
त्वामनु प्रमतिमा जगन्मोरुशंसो जरित्रे विश्वध स्याः ॥१८
एभिर्नृभिरिन्द्र त्वायुभिष्ट्वा मघवद्भिर्मघवन्विश्व आजौ ।
द्यावो न द्युम्नैरभि सन्तो अर्यः क्षपो मदेम शरदश्च पूर्वीः ॥१९
एवेदिन्द्राय वृषभाय वृष्णे ब्रह्माकर्म भृगवो न रथम् ।
नू चिद्यथा नः सख्या वियोषदसन्न उग्रोऽविता तनूपाः ॥२०
नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो न पीपेः ।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥२१॥२०

इन्द्र ने मनुष्यों के कल्याण के निमित्त अनेकों प्रसिद्ध कार्य किए हैं। वे इन्द्र धनैश्वर्य से युक्त एवं कामना के योग्य हैं। वे हमारे समान साधक को ग्रहण करने योग्य अन्न को शीघ्र ले जाते हैं। हे मनुष्यो! तुम्हारे निमित्त हम साधकगण उन इन्द्र का सुन्दर आह्वान करते हैं ॥ १६ ॥ हे इन्द्र! तुम वीर हो। मनुष्यों द्वारा होने वाले युद्ध में यदि हमारे बीच तीक्ष्ण वज्रपात हो अथवा शत्रुओं से हमारा अत्यन्त घोर संग्राम हो, तब तुम हमारे शरीरों को अपने नियन्त्रण में रखते हुए हर प्रकार से हमारी रक्षा करना ॥ १७ ॥ हे इन्द्र! तुम वामदेव द्वारा किए जाने वाले यज्ञ-कार्य की रक्षा करो। तुम किसी के द्वारा हिंसित नहीं किए जा सकते। तुम संग्राम में हमारे प्रति सुहृदयता का व्यवहार करो। तुम अत्यन्त सुन्दर मति वाले हो। तुम हमारे समीप आओ। हे इन्द्र! तुम सदा स्तोताओं की प्रशंसा करने वाले बनो ॥ १८ ॥ हे इन्द्र! तुम ऐश्वर्यसंपन्न हो। हम अपने शत्रुओं पर विजय

प्राप्त करने के लिए सभी संग्रामों में तुम्हारी कामना करते हैं। जैसे धनवान् अपने धन से दमकता है, वैसे ही हम भी धन एवं पुत्र पौत्रादि कुटुम्बियों के साथ दीप्तियुक्त हों। हम अपने शत्रुओं को हराकर रातों और वर्षों में प्रसन्नता से तुम्हारा स्तवन करते रहें ॥ १९ ॥ हम वही कार्य करेंगे जिससे इन्द्र के साथ हुई हमारी मैत्री का विच्छेद न हो और शरीरों की रक्षा करने वाले तेजस्वी इन्द्र हमारा पालन करते रहें। अनुभवी रथ निर्माता जैसे सुन्दर रथ बनाता है, वैसे ही हम भी कामनाओं की वर्षा करने वाले, नित्य युवा इन्द्र के निमित्त सुन्दर स्तोत्रों को रचते हैं ॥ २० ॥ हे इन्द्र! तुम पुरातन काल में ऋषियों द्वारा पूजित होकर और अब हमारे द्वारा नमस्कृत होकर, जल द्वारा नदी को पूर्ण करने के समान स्तुति करने वालों के अन्न-धन की वृद्धि करते हो। हम तुम्हारे निमित्त नवीन स्तोत्र बनाते हैं, जिससे हम रथादि से युक्त हुए स्तुति वचनों द्वारा तुम्हें सदा प्रसन्न करते रहें ॥ २१ ॥ [२०]

१७ सूक्त

(ऋषि—वामदेवः देवता—इन्द्रः । छन्द—पंक्तिः, त्रिष्टुप्)

त्वं महाँ इन्द्र तुभ्यं ह क्षा अनु क्षत्रं मंहना मन्यत द्यौः ।
त्वं वृत्रं शवसा जघन्वान्त्सृजः सिन्धूँरहिना जग्रसानान् ॥१

तव त्विषो जनिमन्रेजत द्यौ रेजद्भूमिर्भियसा स्वस्य मन्योः ।
ऋघायन्त सुभ्वः पर्वतास आर्दन्धन्वानि सरयन्त आपः ॥२

भिनद्गिरिं शवसा वज्रमिष्णन्नाविष्कृण्वानः सहसान ओजः ।
वधीद्वृत्रं वज्रेण मन्दसानः सरन्नापो जवसा हतवृष्णीः ॥३

सुवीरस्ते जनिता मन्यत द्यौरिन्द्रस्य कर्ता स्वपस्तमो भूत् ।
य ईं जजान स्वर्यं सुवज्रमनपच्युतं सदसो न भूम ॥४

य एक इच्च्यावयति प्र भूमा राजा कृष्टीनां पुरुहूत इन्द्रः ।
सत्यमेनमनु विश्वे मदन्ति रातिं देवस्य गृणतो मघोनः ॥५।२१

हे इन्द्र ! तुम महान् हो। महती पृथिवी ने तुम्हारी शक्ति का समर्थन किया और आकाश ने तुम्हारे बल का अनुमोदन किया। तुमने अपने बल से लोकों को ढक लेने वाले वृत्रासुर को मारा। वृत्र ने जिन नदियों को वशीभूत किया, तुमने उनको मुक्त कर दिया ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! तुम अत्यन्त तेजस्वी हो। तुम्हारे प्राकट्य पर आकाश तुम्हारे क्रोध के भय से कांप गया। उस समय पृथिवी भी कांप गई और मेघ समूह को तुमने बाँध लिया। तुम्हारी प्रेरणा से प्राणियों की प्यास मिटाने के निमित्त उन मेघों ने मरुभूमि में जल वर्षा की ॥ २ ॥ शत्रुओं को हराने वाले इन्द्र ने अपने तेज के प्रकाश और शक्ति द्वारा वज्र को चलाकर पर्वतों को चीर डाला। सोम पीकर पुष्ट होने के पश्चात् इन्द्र ने अपने वज्र से वृत्र को मार दिया। उस वृत्र के नष्ट होने पर जल निरावरण हो वेग से गिरने लगा ॥ ३ ॥ तुम अत्यन्त पूजा के योग्य, वज्र से युक्त, दिव्य स्थान के अधिपति एवं अविनाशी हो। तुम अत्यन्त महिमा वाले हो। जिन तेजस्वी प्रजापति ने तुम्हें प्रकट किया था, वे अपने को सुन्दर पुत्र वाले मानते थे। इन्द्र के जनक प्रजापति का कर्म अत्यन्त श्रेष्ठ और प्रशंसित था ॥ ४ ॥ मनुष्यमात्र के स्वामी, बहुतों द्वारा बुलाए गए, देवताओं में मुख्य इन्द्र शत्रु द्वारा उत्पन्न किए गए भय को मिटाते हैं। वे ऐश्वर्यवान् एवं प्रदीप्तिवान् हैं। उन सखा रूप इन्द्र के लिए सभी यजमान स्तोत्रों द्वारा नमस्कार करते हैं ॥ ५ ॥　　[२१]

सत्रा सोमा अभवन्नस्य विश्वे सत्रा मदासो बृहतो मदिष्ठाः ।
सत्राभवो वसुपतिर्वसूनां दत्रे विश्वा अधिथा इन्द्र कृष्टीः ॥६

त्वमध प्रथमं जायमानोऽमे विश्वा अधिथा इन्द्र कृष्टीः ।
त्वं प्रति प्रवत आशयानमहिं वज्रेण मघवन्वि वृश्चः ॥७
सत्राहणं दाधृषिं तुम्रमिन्द्रं महामपारं वृषभं सुवज्रम् ।
हन्ता यो वृत्रं सनितोत वाजं दाता मघानि मघवा सुराधाः ॥८
अयं वृतश्चातयते समीचीर्य आजिषु मघवा शृण्व एकः ।
अयं वाजं भरति यं सनोत्यस्य प्रियासः सख्ये स्याम ॥९

अयं शृण्वे अध जयन्नुत घ्नन्नयमुत प्र कृणुते युधा गाः ।
यदा सत्यं कृणुते मन्युमिन्द्रो विश्वं दृळहं भयत एजदस्मात् ॥१०।२२

सभी सोम इन्द्र के निमित्त उत्पन्न होते हैं। यह सोम शक्ति उत्पन्न करने वाले हैं और उन महान् इन्द्र को प्रसन्नता देते हैं। हे इन्द्र ! तुम ऐश्वर्य-वान् सभी प्रजाओं का पालन-पोषण करते हो ॥ ६ ॥ हे धनैश्वर्य सम्पन्न इन्द्र ! तुमने उत्पन्न होते ही वृत्र के भय से बचाने के लिए प्रजाओं का रक्षण किया। तुमने सब प्रदेशों को जलयुक्त कर देने के उद्देश्य से जल के रोकने वाले वृत्र को छिन्न-भिन्न कर डाला ॥ ७ ॥ बहुत से शत्रुओं को मारने वाले, विकराल शत्रुओं को प्रेरणा देने वाले, महान् एवं अविनाशी इन्द्र का हम स्तवन करते हैं, वे इन्द्र अभीष्टों की वर्षा करने वाले और सुन्दर वज्र वाले है। उन्होंने वृत्र का संहार किया था। वे अन्न प्रदान करने वाले उज्ज्वल धनों के अधिपति हैं। वे सदा धन प्रदान करते रहते हैं। उन इन्द्र का हम स्तवन करते हैं ॥ ८ ॥ जो इन्द्र अत्यन्त धनवान् एवं युद्ध में अद्वितीय वीर सुने गए है, वे सुसंगत और विशाल शत्रु-सेना का संहार करने में भी समर्थ हैं। वे जिस अन्न-धन को धारण करते हैं, वही यजमान को प्रदान करते हैं। इन इन्द्र के साथ हमारा सख्य भाव अटूट रहे ॥ ९ ॥ वे इन्द्र शत्रुओं के पशुओं को छीन लेते हैं। 'जब वे क्रोधित होते हैं तब यह स्थावर जंगम रूप अखिल विश्व इन्द्र के भय से नितांत भीत हो उठता है ॥ १० ॥ [२२]

समिन्द्रो गा अजयत्सं हिरण्या समश्विया मघवा यो ह पूर्वीः ।
एभिर्नृभिर्नृतमो अस्य शाकै रायो विभक्ता सम्भरश्च वस्वः ॥११
कियत्स्विदिन्द्रो अध्येति मातुः कियत्पितुर्जनितुर्यो जजान ।
यो अस्य शुष्मं मुहुकैरियर्ति वातो न जूत स्तनयद्भिरभ्रैः ॥१२
क्षियन्तं त्वमक्षियन्तं कृणोतीयर्ति रेणुं मघवा समोहम् ।
विभञ्जनुरशनिमाँ इव द्यौरुत स्तोतारं मघवा वसौ धात् ॥१३
अयं चक्रमिषणत्सूर्यस्य न्येतशं रीरमत्ससृमाणम् ।
आ कृष्ण ईं जुहुराणो जिघर्ति त्वचो बुध्ने रजसो अस्य योनौ ॥१४

असिक्न्यां यजमानो न होता ॥१५॥२३

जिन ऐश्वर्यशाली इन्द्र ने दैत्यों पर विजय प्राप्त की थी तथा शत्रुओं के महान् धन पर अधिकार किया था, जिन इन्द्र ने शत्रुओं को जीतकर उनके घोड़ों को छीन लिया था, वे सर्व समर्थ इन्द्र सब में अग्रणी और स्तुति करने वालों से पूजित होकर पशुओं को बाँटने और धनादि की रक्षा करने वाले हों ॥ ११ ॥ इन्द्र ने अपने माता-पिता से कितना बल प्राप्त किया ? जिन इन्द्र ने अपने पिता प्रजापति के पास से इस संसार को उत्पन्न कर संसार को शक्ति दी थी, उन इन्द्र का, गर्जना करने वाले मेघ से प्रेरित वायु से समान आह्वान किया जाता है ॥ १२ ॥ इन्द्र धनवान् हैं, वे निर्धन मनुष्य को धन से पूर्ण करते हैं। अन्तरिक्ष के समान इन्द्र वज्रयुक्त, शत्रु-संहारक इन्द्र सब पापों को मिटाते हैं और स्तुति करने वाले को धन देते हैं ॥ १३ ॥ इन्द्र ने सूर्य के शस्त्र को प्रेरणा दी तथा संग्रामोद्यत एतश को निवारण किया, टेढ़ी गति और काले रङ्ग वाले मेघ ने तेज के आश्रयरूप और जलपूर्ण अन्तरिक्ष में वास करने वाले इन्द्र का अभिषेक किया था ॥ १४ ॥ जैसे यजमान अँधेरी रात में भी इन्द्र का आह्वान करता है, वैसे ही इन्द्र प्रजाओं को रात्रि में भी ऐश्वर्यादि प्रदान करते हैं ॥ १५ ॥ [२३]

गव्यन्त इन्द्रं सख्याय विप्रा अश्वायन्तो वृषणं वाजयन्तः ।
जनीयन्तो जनिदामक्षितोतिमा च्यावयामोऽवते न कोशम् ॥१६
त्राता नो बोधि ददृशान आपिरभिख्याता मर्डिता सोम्यानाम् ।
सखा पिता पितृतमः पितॄणां कर्तेमु लोकमुशते वयोधाः ॥ १७
सखीयतामविता बोधि सखा गृणान इन्द्र स्तुवते वयोधाः ।
वयं ह्या ते चकृमा सबाध आभिः शमीभिर्महयन्त इन्द्र ॥ १८
स्तुत इन्द्रो मघवा यद्ध वृत्रा भूरीण्येको अप्रतीनि हन्ति ।
अस्य प्रियो जरिता यस्य शर्मन्नकिर्देवा वारयन्ते न मर्ताः ॥ १९
एवा न इन्द्रो मघवा विरप्शी करत्सत्या चर्षणीधृदनर्वा ।
त्वं राजा जनुषां धेह्यस्मे अधि श्रवो माहिनं यज्जरित्रे ॥२०

नूष्टुत इन्द्र न गृणान इषं जरित्रे नद्यो न पीपेः।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥२१।२४

हम बुद्धिमान स्तोता गौ, अश्व, अन्न और सुन्दर सन्तान उत्पन्न करने वाली स्त्री की अभिलाषा करते हैं। हम अभीष्ट पूर्ण करने वाले, सन्तान-दात्री भार्या के देने वाले तथा सदा अक्षय रक्षा करने वाले इन्द्र के मित्र भाव को उसी प्रकार चाहते हैं, जिस प्रकार कूप से जल निकालने की इच्छा करने वाले व्यक्ति जल पात्र को प्राप्त करना चाहते हैं ॥ १६ ॥ हे इन्द्र ! तुम हमारे रक्षक, देखने वाले, बन्धु, उपदेशकर्त्ता एवं शोभन गुणों से युक्त हो। तुम हमारे पूर्व पुरुषों के भी पिता तुल्य पूज्य, संतानों को सुख देने वाले, मित्र, ज्ञान और बल के देने वाले हो। तुम उत्तम लोकों की अभिलाषा करने वाले को श्रेष्ठ पद देते हो ॥ १७ ॥ हे इन्द्र ! हम तुम्हारा सख्य भाव चाहते हैं। तुम हमारे पालक बनो। तुम्हारी पूजा की जाती है, तुम हमारे मित्र बनो। स्तुति करने वाले यजमानों को अन्न दो। हे इन्द्र ! हमारे श्रेष्ठ कार्यों में विघ्न उपस्थित होने पर हम तुम्हें ही याद करते हैं। तुम हमारे आह्वान पर ध्यान देते हुए हमको जानो ॥ १८ ॥ जब हम उन इन्द्र की स्तुति करते हैं तब वे अकेले ही बहुत से दैत्यों को नष्ट कर डालते हैं। उनको विद्वान् स्तोता अत्यन्त प्रिय हैं। उनके शरण में रहने वाले को देवता या मनुष्य कोई भी नहीं रोक सकता ॥ १९ ॥ वे इन्द्र अत्यन्त धनवान्, विविध शब्द वाले, सब प्रजाओं के रक्षक तथा शत्रुओं से शून्य हैं। वे हमारी इस प्रकार की स्तुति को सुनकर हमारी सत्य पूर्ण एवं श्रेष्ठ अभिलाषाओं को पूर्ण करें। हे इन्द्र ! तुम सभी उत्पन्न प्राणियों के स्वामी हो। जिस महिमा वाले सुन्दर यश को स्तुति करने वाला प्राप्त करता है, वह अत्यन्त यश हमको प्रदान करो ॥ २० ॥ हे इन्द्र ! तुम पूर्वकाल में हुए ऋषियों द्वारा पूजित हुए, हमारे द्वारा भी स्तुत्य होकर, जल द्वारा नदी को पूर्ण करने के समान, अन्न को बढ़ाते हो। हम तुम्हारे निमित्त नवीन स्तोत्र रचते हैं, जिससे हम रथयुक्त हुए सदा तुम्हारी स्तुति एवं पूजा करते रहें ॥ २१ ॥ [२४]

१८ सूक्त

(ऋषि—वामदेवः । देवता—इन्द्रादिती । छन्द — त्रिष्टुप्, पंक्तिः,)

अयं पन्था अनुवित्तः पुराणो यतो देवा उदजायन्त विश्वे ।
अतश्चिदा जनिषीष्ट प्रवृद्धो मा मातरममुया पत्तवे कः ॥ १
नाहमतो निरया दुर्गहैतत्तिरश्चता पार्श्वान्निर्गमाणि ।
बहूनि मे अकृता कर्त्वानि युध्यै त्वेन सं त्वेन पृच्छै ॥ २
परायतीं मातरमन्वचष्ट न नानु गान्यनु नू गमानि ।
त्वष्टुर्गृहे अपिबत्सोममिन्द्रः शतधन्यं चम्वोः सुतस्य ॥ ३
किं स ऋधक् कृणवद्यं सहस्रं मासो जभार शरदश्च पूर्वीः ।
नही न्वस्य प्रतिमानमस्त्यन्तर्जातेषूत ये जनित्वाः ॥ ४
अवद्यमिव मन्यमाना गुहाकरिन्द्रं माता वीर्येणा न्यृष्टम् ।
अथोदस्थात्स्वयमत्कं वसान आ रोदसी अपृणाज्जायमानः ॥५।२५

यह मार्ग अनादि काल से चलता आ रहा है, जिसके द्वारा विभिन्न भोगों और एक-दूसरे को चाहने वाले स्त्री पुरुष, ज्ञानीजन आदि उत्पन्न होते हुए प्रवृद्ध होते हैं। उच्चपद वाले समर्थ व्यक्ति भी इसी परम्परागत मार्ग द्वारा ही उत्पन्न होते हैं। हे मनुष्य ! अपनी जनयित्री माता को अपमानित करने की चेष्टा न कर ॥ १ ॥ हम पूर्वोक्त योनि-मार्ग से बच नहीं सकते। टेढ़े मार्ग से, पशु-पक्षी के रूप में जन्म लेकर भी जीवन बड़े कष्ट से व्यतीत होता है। मैं चाहता हूं कि, इस फन्दे से निकल जाऊँ। मुझे बहुत से कर्म न करने पड़ें। परस्पर का विवाद सब झमेला मात्र है। हमको संसार-मार्ग के किनारे लगने का ही यत्न करना चाहिये ॥ २ ॥ जैसे अपनी माता के मरने पर कोई मनुष्य मोहवश कहता कि मैं भी इसके पीछे ही चला जाऊँ, अथवा न जाऊँ। कालोपरांत वह ज्ञान, धैर्य आदि से शांत होकर पिता के घर में पुत्र बन कर रहता हुआ जीवन का उपभोग करता है। उसी प्रकार यह जीवात्मा विवेकी होकर त्वष्टा के घर में सोम-पान करता है ॥ ३ ॥ अदिति ने उस बलशाली इन्द्र को मासों और वर्षों तक धारण किया था। उस महान्

इन्द्र ने अनेक विशिष्ट कार्य किए। उनकी समानता उत्पन्न हुए अथवा आगे उत्पन्न होने वालों में से कोई नहीं कर सकता ॥ ४ ॥ अदिति ने उन इन्द्र को गति देने में समर्थ मानते हुए अदृश्य रूप से धारण किया और फिर वह इन्द्र अपने ही सामर्थ्य से उत्पन्न तेज को धारण करते हुए सर्वोच्च बने और आकाश-पृथिवी दोनों को परिपूर्ण किया ॥ ५ ॥ [२५]

एता अर्षन्त्यललाभवन्तीर्ऋतावरीरिव सङ्क्रोशमानाः ।
एता वि पृच्छ किमिदं भनन्ति कमापो अद्रिं परिधिं रुजन्ति ॥६
किमु ष्विदस्मै निविदो भनन्तेन्द्रस्यावद्यं दिधिषन्त आपः ।
ममैतान्पुत्रो महता वधेन वृत्रं जघन्वाँ असृजद्वि सिन्धून् ॥७
ममच्चन त्वा युवतिः परास ममच्चन त्वा कुषवा जगार ।
ममच्चिदापः शिशवे ममृड्युर्ममच्चिदिन्द्रः सहसोदतिष्ठत् ॥८
ममच्चन ते मघवन्व्यंसो निविविध्वाँ आप हनू जघान ।
अधा निविद्ध उत्तरो बभूवाञ्छिरो दासस्य सं पिणग्वधेन ॥९
गृष्टिः ससूव स्थविरं तवागामनाधृष्यं वृषभं तुम्रमिन्द्रम् ।
अरीळ्हं वत्सं चरथाय माता स्वयं गातुं तन्व इच्छमानम् ॥१०
उत माता महिषमन्ववेनदमी त्वा जहति पुत्र देवाः ।
अथाब्रवीद्वृत्रमिन्द्रो हनिष्यन्त्सखे विष्णो वितरं वि क्रमस्व ॥११
कस्ते मातरं विधवामचक्रच्छयुं कस्त्वामजिघांसच्चरन्तम् ।
कस्ते देवो अधि मार्डीक आसीद्यत्प्राक्षिणाः पितरं पादगृह्य ॥१२
अवर्त्या शुन आन्त्राणि पेचे न देवेषु विविदे मर्डितारम् ।
अपश्यं जायाममहीयमानामधा मे श्येनो मध्वा जभार ॥१३।२६

अव्यक्त ध्वनि करती हुई जल से पूर्ण नदियाँ इन्द्र के महत्व को प्रकट करती हुई बहती हैं। हे विज्ञ! यह नदियाँ क्या कहती हैं, यह इनसे पूछो। क्या यह इन्द्र का यश-गान करती हैं? इन्द्र ने ही जल को रोकने वाले मेघ को चीर कर जल वर्षा की थी ॥ ६ ॥ वृत्र के नष्ट करने पर इन्द्र को

ब्रह्महत्या का जो पाप लगा, उस सम्बन्ध में वेदवाणी क्या कहती है ? इन्द्र के उस पाप को जल ने फेन के रूप में धारण किया । इन्द्र ने अपने महान वज्र द्वारा वृत्र को विदीर्ण कर इन नदियों को प्रवाहित किया ॥७॥ हे इन्द्र ! अत्यन्त हर्ष वाली युवती अदिति ने ममतामय होकर तुम्हें जन्म दिया। "कुपवा" नाम्नी राक्षसी ने तुम्हें अपना ग्रास बनाने की चेष्टा की। तुमको, उत्पन्न होते ही जलों ने सुख दिया। तुम अपनी सामर्थ्य सूतिका-गृह में ही राक्षसी का वध करने को उद्यत हुए ॥ ८ ॥ हे ऐश्वर्य स्वामी इन्द्र ! मदयुक्त होकर "व्यंस" नामक दैत्य ने तुम्हारी ठोड़ी के अर्द्धभाग को आघात पहुंचाया तब तुमने अपने बल से "व्यंस" के सिर को वज्र से अच्छी प्रकार कुचल डाला ॥ ९ ॥ जैसे गौ बलवान् बछड़े को उत्पन्न करती है, वैसे ही इन्द्र की माता अदिति अपनी इच्छा पर चलने वाले, सर्वशक्ति सम्पन्न सर्वविजेता इन्द्र को जन्म देती है। वह इन्द्र सबके प्रेरक, अविनाशी, सर्वव्याप्त, अभीष्टों की वर्षा करने वाले एवं कर्मों का फल देने में समर्थ हैं ॥ १० ॥ माता अदिति महान् ऐश्वर्य वाले तुम इन्द्र की कामना करती हुई कहती है कि "हे पुत्र इन्द्र ! यह सब विजयाभिलाषी वीर तुम्हें प्राप्त होते हैं।" तब इन्द्र ने कहा—'हे विष्णो तुम वृत्र को मारने की इच्छा करते हुए अत्यन्त पराक्रमी बनो' ॥ ११ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारा कौन-सा शत्रु पैरों को पकड़ कर तुम्हारे पिता की हत्या करके तुम्हारी माता को विधवा बना सकता है ? तुमको सोते या चलते में कौन मार सकता है ? तुम्हारे सिवाय ऐसा कौन देवता है जो उच्च पद पा सकता है ? ॥ १२ ॥ हमने दरिद्रतावश कुत्ते की अन्तड़ियों को भी पकाया। तब हमारे लिए देवताओं में इन्द्र के सिवाय और कोई भी सुख देने वाला नहीं हुआ। जब हमने अपनी भार्या को असम्मानित होते हुए देखा, तब इन्द्र ने ही हमारी रक्षा की और मधुर रस प्रदान किया ॥ १३ ॥ [२६]

१६ सूक्त

(ऋषि—वामदेवः । देवता—इन्द्र । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

एवा त्वामिन्द्रः वज्रिन्नत्र विश्वे देवासः सुहवास ऊमाः ।

महामुभे रोदसी वृद्धमृष्वं निरेकमिद्वृणते वृत्रहत्ये ॥ १
अवासृजन्त जिव्रयो न देवा भुवः सम्राळिन्द्र सत्ययोनिः ।
अहन्नहिं परिशयानमर्णः प्र वर्तनीररदो विश्वधेनाः ॥ २
अतृप्णुवन्तं वियतमबुध्यमबुध्यमानं सुषुपाणमिन्द्र ।
सप्त प्रति प्रवत आशयानमहिं वज्रेण वि रिणा अपर्वन् ॥३
अक्षोदयच्छवसा क्षाम बुध्नं वार्ण वातस्तविषीभिरिन्द्रः ।
दृळ्हान्यौभ्नादुशमान ओजोऽवाभिनत्ककुभः पर्वतानाम् ॥ ४
अभि प्र दद्रुर्जनयो न गर्भं रथा इव प्र ययुः साकमद्रयः ।
अतर्पयो विसृत उब्ज ऊर्मीन्त्वं वृताँ अरिणा इन्द्र सिन्धून् ॥ ५ ॥

हे वज्रिन् ! इस यज्ञ में सुन्दर आह्वान वाले तथा रक्षा सामर्थ्य वाले सभी देवता और आकाश पृथिवी वृत्र नाश के निमित्त केवल तुमको ही भजते हैं। तुम स्तुति योग्य एवं गुणों के उत्कर्ष से बढ़े हुए तथा दर्शनीय हो ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! जैसे वृद्ध पिता अपने पुत्र को प्रेरणा देता है, वैसे ही देवतागण तुम्हें राक्षसों का संहार करने की प्रेरणा देते हैं। तुम सत्य के विकसित रूप हो। तुम समस्त भुवनों के स्वामी हो। जल को लक्ष्य कर सोते हुए वृत्र का तुमने संहार किया। सब को तृप्त करने वाली नदियों को तुमने बनाया था ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! तुमने अतृप्त इच्छा वाले, अज्ञानी, निर्बल बुरे विचार वाले, सुप्त एवं शान्त जल को ढक लेने वाले सोते हुए वृत्र का वज्र द्वारा वध किया ॥ ३ ॥ वायु अपने बल से जैसे जल को क्षुब्ध करती है, वैसे ही परम ऐश्वर्य से युक्त इन्द्र अपने बल से, आकाश को सूक्ष्म तेज से परिपूर्ण कर जल को छिन्न-भिन्न करते हैं। वे बल की कामना करने वाले इन्द्र मेघों और पर्वतों को तोड़ डालते हैं ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! जैसे माताएँ पुत्र के पास जाती हैं वैसे ही मरुत तुम्हारे पास गए थे। वैसे ही वृत्र वध के निमित्त तुम्हारे निकट रथ पहुँचा था। तुमने नदियों को जल से परिपूर्ण कर डाला। मेघ को विदीर्ण कर वृत्र द्वारा रोके हुए जल को गिरा दिया ।५। [१]

त्वं महीमवनिं विश्वधेनां तुर्वीतये वय्याय क्षरन्तीम् ।

अश्मयो नमसैजदर्णः सुतरणाँ अकृणोरिन्द्र सिन्धून् ॥ ६
प्राग्रुवो नभन्वो न वक्वा ध्वस्रा अपिन्वद्युवतीर्ऋतज्ञाः ॥
धन्वान्यज्राँ अपृणक्तृषाणाँ अधोगिन्द्रः स्तर्यो दंसुपत्नीः ॥ ७
पूर्वीरुषसः शरदश्च गूर्ता वृत्रं जघन्वाँ असृजद्वि सिन्धून् ।
परिष्ठिता अतृणद्बद्बधानाः सीरा इन्द्रः स्रवितवे पृथिव्या ॥ ८
वम्रीभिः पुत्रमग्रुवो अदानं निवेशनाद्धरिव आ जभर्थ ।
व्यन्धो अख्यदहिमाददानो निर्भूदुखच्छित्समरन्त पर्व ॥ ९
प्र ते पूर्वाणि करणानि विप्राविद्वाँ आह विदुषे करांसि ।
यथायथा वृष्ण्यानि स्वगूर्ताऽपांसि राजन्नर्याविवेषीः ॥ १०
नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो न पीपेः ।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥ ११ । २

हे इन्द्र ! तुमने सबको स्नेह करने वाली "तुर्वीत" और राजा "वय्य" को इच्छित फलदात्री पृथिवी को अन्न से भर दिया और जल से परिपूर्ण किया था। हे इन्द्र ! तुमने जल को सुविधापूर्वक तैरने के योग्य कर दिया ॥ ६ ॥ शत्रु का नाश करने वाली सेना के समान इन्द्र ने किनारे को तोड़ने वाली, जल से पूर्ण, अन्नोत्पादिनी नदियों को परिपूर्ण किया उन्होंने जल-विहीन शुष्क देशों को वर्षा द्वारा पूर्ण किया और प्यासे पथिकों को शान्ति दी। जिन गौओं पर राक्षसों ने अधिकार कर लिया था, उन प्रसव से निवृत्त हुई गौओं को इन्द्र ने दुहा था ॥ ७ ॥ तमिस्रा से ढकी हुई अनेक उषाओं और वर्षों को इन्द्र ने वृत्र का वध करके विमुक्त किया और वृत्र द्वारा रोके हुए जल को भी छोड़ा। मेघ के चारों ओर ठहरी हुई और वृत्र द्वारा रोकी हुई नदियों को पृथिवी पर प्रवाहित होने के लिए छोड़ा ॥ ८ ॥ हे श्रेष्ठ घोड़ों के स्वामी इन्द्र ! "उपजिह्वका" द्वारा भक्षण किए "अग्रू पुत्र" को तुमने दीमक के बिल से निकाला। निकालते समय वह अग्रू-पुत्र अन्धा था तो भी उसने सर्प को भले प्रकार देखा। उपजिह्वका द्वारा अलग किए गए अङ्गों को इन्द्र ने जोड़ दिया था ॥ ९ ॥ हे बुद्धिमान इन्द्र ! तुम सब कुछ

जानने वाले हो। वर्षा के योग्य और मनुष्यों को सम्पन्न करने वाले वर्षा-सम्बन्धी कर्मों को जिस प्रकार तुमने किया था, उन सब कर्मों का वामदेव ने उल्लेख किया है ॥ १० ॥ हे इन्द्र! तुम पुरातन ऋषियों द्वारा पूजित हुए और हमारे द्वारा भी स्तुत हुए हो। तुम जल द्वारा नदी को पूर्ण करने के समान स्तुति करने वालों के अन्न को बढ़ाते हो। हे अश्ववान् इन्द्र! हम तुम्हारे निमित्त नवीन स्तोत्र को करते हैं, जिसके द्वारा हम रथवान् हुए तुम्हारी स्तुति और परिचर्या करते रहें ॥ ११ ॥ [२]

२० सूक्त

(ऋषि—वामदेवः। देवता—इन्द्रः। छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

आ न इन्द्रो दूरादा न आसादभिष्टिकृदवसे यासदुग्रः।
ओजिष्ठेभिर्नृपतिर्वज्रबाहुः सङ्गे समत्सु तुर्वणिः पृतन्यून् ॥ १
आ न इन्द्रो हरिभिर्यात्वच्छार्वाचीनोऽवसे राधसे च।
तिष्ठाति वज्री मघवा विरप्शीमं यज्ञमनु नो वाजसातौ ॥ २
इमं यज्ञं त्वमस्माकमिन्द्र पुरो दधत्सनिष्यसि क्रतुं नः।
श्वघ्नीव वज्रिन्त्सनये धनानां त्वया वयमर्य आजिं जयेम ॥ ३
उशन्नु षु णः सुमना उपाके सोमस्य नु सुषुतस्य स्वधावः।
पा इन्द्र प्रतिभृतस्य मध्वः समन्धसा ममदः पृष्ठ्येन ॥ ४
वि यो ररप्श ऋषिभिर्नवेभिर्वृक्षो न पक्वः सृण्यो न जेता।
मर्यो न योषामभिमन्यमानोऽच्छा विवक्मि पुरुहूतमिन्द्रम् ॥ ५ । ३

हे इन्द्र! तुम कामनाओं के देने वाले और तेज से युक्त हो। तुम हमको शरण देने के निमित्त दूर हो तो भी आओ। पास हो तो भी आकर हमारी रक्षा करो। तुम युद्धस्थल में शत्रुओं का संहार करते हो। तुम वज्र धारण करने वाले हो। तुम मनुष्यों का पालन करते और तेजस्वी मरुद्गण से युक्त हो ॥ १ ॥ हमारे सामने आने वाले इन्द्र शरण देने और धन देने के लिए अपने घोड़ों के सहित हमारे पास पधारें। वे इन्द्र वज्रधारी धनैश्वर्य से युक्त और महान हैं। संग्राम का अवसर होने पर वे हमारे कार्यों में सहयोगी

हों ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! हमारे साथ मैत्रीभाव रखते हुए हमारे द्वारा किये जाते हुए इस यज्ञ को परिपूर्ण करो । हे वज्रिन् ! हम तुम्हारी स्तुति करते हैं । जैसे शिकारी मुर्गों का शिकार करता है, वैसे हम तुम्हारे बल से धन प्राप्त करने के लिए संग्राम में विजेता हों ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! तुम अश्वों के स्वामी हो । तुम हर्षयुक्त मन से हमारे पास आओ तथा हमको चाहते हुए उत्तम प्रकार से सिद्ध किये गए मदकारी सोम-रस को पीओ । दिन के मध्य सवन में उज्ज्वल स्तोत्र के साथ हर्षप्रदायक सोम का पान करो ॥ ४ ॥ जो इन्द्र पके फल वाले वृक्ष के समान और शस्त्र-कुशल विजेता के समान वीर हैं, जो नवीन ऋषियों द्वारा अनेक प्रकार से पूजित होते हैं, उन इन्द्र के निमित्त हम प्रशंसायुक्त स्तोत्र उच्चारित करते हैं ॥ ५ ॥   [५]

गिरिर्न यः स्वतवाँ ऋष्व इन्द्रः सनादेव सहसे जात उग्रः ।
आदर्ता वज्रं स्थविरं न भीम उद्नेव कोशं वसुना न्यृष्टम् ॥६
न यस्य वर्ता जनुषा न्वस्ति न राधस आमरीता मघस्य ।
उद्वावृषाणस्तविषीव उग्रास्मभ्यं दद्धि पुरुहूत रायः ॥७
ईक्षे रायः क्षयस्य चर्षणीनामुत व्रजमपवर्तासि गोनाम् ।
शिक्षानरः समिथेषु प्रहावान्वस्वो राशिमभिनेतासि भूरिम् ॥८
कया तच्छृण्वे शच्या शचिष्ठो यया कृणोति मुहु का चिदृष्वः ।
पुरु दाशुषे विचयिष्ठो अंहोऽथा दधाति द्रविणं जरित्रे ॥९
मा नो मर्धीरा भरा दद्धि तन्नः प्र दाशुषे दातवे भूरि यत्ते ।
नव्ये देष्णे शस्ते अस्मिन्त उक्थे प्र ब्रवाम वयमिन्द्र स्तुवन्तः ॥१०
नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो न पीपेः ।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥ ११ । ४

जो पर्वत के समान विशाल हैं, जो तेज से तेजस्वी हैं, जो शत्रुओं को वश में करने के लिए प्राचीन काल में उत्पन्न हुए, वे इन्द्र जल से भरे हुए पात्र के समान अत्यन्त तेजस्वी एवं महान् वज्र के धारण करने वाले हैं ॥६॥ हे इन्द्र ! तुम्हारे प्राकट्य-काल से ही तुम्हें कोई रोकने वाला नहीं हुआ ।

यज्ञादि शुभ कर्मों के निमित तुम्हारे द्वारा किए गए धन का नाश करने वाला भी कोई नहीं हुआ। हे शक्तिशालिन्! तुम अत्यन्त तेजस्वी और कामनाओं की वर्षा करने वाले हो। हमारे लिए धन प्रदान करो ॥ ७ ॥ हे इन्द्र! तुम मनुष्यों के धन और घरों के पर्यवेक्षक हो। तुम बाधा देने वाले राक्षसों से गौओं के झुंडों को मुक्त करते हो। तुम शैक्षणिक कार्यों में अग्रणि और युद्ध-काल में नेतृत्व कर शत्रुओं पर प्रहार करते हो। तुम उत्पन्न धनों के सम्पन्नकर्त्ता बनो ॥ ८ ॥ वह सबसे अधिक बुद्धि वाले इन्द्र किस वाणी, शक्ति और बुद्धि से युक्त हैं? किन कर्मों द्वारा वह महान् इन्द्र बारम्बार अनेक कार्यों को करते हैं? वे मनुष्यों के पापों को नष्ट करते हुए स्तुति करने वालों को धनैश्वर्य प्रदान करते हैं ॥ ९ ॥ हे इन्द्र! हमारा विनाश न करो। तुम्हारे निमित्त जो मनुष्य अपने को समर्पित करते हैं, उनको अपना देने योग्य ऐश्वर्य प्रदान करो। हम तुम्हारी पूजा करते हैं। इन अत्युत्तम प्रशस्ति वचनों द्वारा हम तुम्हारा भले प्रकार गुणानुवाद करते हैं ॥ १० ॥ हे इन्द्र तुम पुरातन कालीन ऋषियों एवं अब हमारे द्वारा भी स्तुत हुए हो। तुम नदी को पूर्ण करने वाले जलों के समान हम स्तोताओं के अन्न की वृद्धि करते हो। तुम अश्ववान् हो। हम तुम्हारे निमित्त नवीन स्तोत्र की रचना करते हैं, जिसके द्वारा हम रथ से युक्त हुए तुम्हारी स्तुति और परिचर्या करते रहें ॥ ११ ॥ [४]

२१ सूक्त

(ऋषि—वामदेवः। देवता—इन्द्र। छन्द—पंक्तिः, त्रिष्टुप्)

आ यात्विन्द्रोऽवस उप न इह स्तुतः सधमादस्तु शूरः।
वावृधानस्तविषीर्यस्य पूर्वीर्द्यौर्न क्षत्रमभिभूति पुष्यात् ॥ १
तस्येदिह स्तवथ वृष्ण्यानि तुविद्युम्नस्य तुविराधसो नॄन्।
यस्य क्रतुर्विदथ्यो न सम्राट् साह्वान्तरुत्रो अभ्यस्ति कृष्टीः ॥२
आ यात्विन्द्रो दिव आ पृथिव्या मक्षू समुद्रादुत वा पुरीषात्।
स्वर्णरादवसे नो मरुत्वान् परावतो वा सदनादृतस्य ॥३
स्थूरस्य रायो बृहतो य ईशे तमु ष्टवाम विदथेष्विन्द्रम्।
यो वायुना जयति गोमतीषु प्र धृष्णुया नयति वस्यो अच्छ ॥४

उप यो नमो नमसि स्तभायन्नियर्ति वाचं जनयन्यजध्यै ।
ऋञ्जसानः पुरुवार उक्थैरेन्द्रं कृण्वीत सदनेषु होता ॥ ५ । ५

वीरवर इन्द्र स्तुतियों द्वारा हमारी रक्षा के लिए आवें । वह वृद्धि को प्राप्त होते हुए हमारी प्रसन्नता में ही प्रसन्नता मानें । जो बल कौशल में सम्पन्न और सूर्य के समान तेजस्वी हैं, वे इन्द्र सबको पराजित करने वाले होकर हमारा पालन करें ॥ १ ॥ हे मनुष्यो ! यज्ञादि शुभ कर्म करने वाले सम्राट् के समान जिनका सबको पराजित करने वाला कर्म शत्रुओं की सेना को हराने में समर्थ है तथा हमारी रक्षा करता है, उन यशस्वी और ऐश्वर्यशाली इन्द्र के बल के कारणरूप मरुद्गण का इस यज्ञ स्थान में स्तवन करो ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! हमको आश्रय प्रदान करने के लिए स्वर्ग, पृथिवी, अन्तरिक्ष, सूर्य मंडल, जल-स्थान मेघ मण्डल अथवा जिस दूर में भी हो, वहीं से मरुद्गण के साथ यहाँ आओ ॥ ३ ॥ जो स्थिर और महान् ऐश्वर्य के स्वामी हैं जो प्राणरूप शक्ति से शत्रु की सेनाओं को पराजित करते हैं, जो अत्यन्त मेधावी हैं और स्तुति करने वालों को उत्तम धन प्रदान करते हैं, उन शत्रुहन्ता इन्द्र के निमित्त हम इस यज्ञ स्थान में स्तुति करते हैं ॥ ४ ॥ जो सम्पूर्ण विश्व को स्तंभित करते हुए गर्जन शब्द को उत्पन्न करने वाले हैं और हवियाँ ग्रहण कर वर्षा द्वारा अन्न देते हैं, जो उत्तम स्तोत्र द्वारा स्तुति के पात्र हैं, उन इन्द्र को हम यज्ञ-स्थान में बुलाते हैं ॥ ५ ॥ [५]

धिषा यदि धिषण्यन्तः सरण्यान्त्सदन्तो अद्रिमौशिजस्य गोहे ।
आ दुरोषाः पास्त्यस्य होता यो नो महान्त्संवरणेषु वह्निः ॥६
सत्रा यदीं भार्वरस्य वृष्णः सिषक्ति शुष्मः स्तुवते भराय ।
गुहा यदीमौशिजस्य गोहे प्र यद्धिये प्रायसे मदाय ॥७
वि यद्वरांसि पर्वतस्य वृण्वे पयोभिर्जिन्वे अपां जवांसि ।
विदद्गौरस्य गवयस्य गोहे यदी वाजाय सुध्यो वहन्ति ॥८
भद्रा ते हस्ता सुकृतोत पाणी प्रयन्तारा स्तुवते राध इन्द्र ।
का ते निषत्तिः किमु नो ममत्सि किं नोदुदु हर्षसे दातवा उ ॥ ९

एवा वस्व इन्द्रः सत्यः सम्राड्ढन्ता वृत्रं वरिवः पूरवे कः ।
पुरुष्टुत क्रत्वा नः शग्धि रायो भक्षीय तेऽवसो दैव्यस्य ।।१०
नू ष्टुत इंद्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो न पीपेः ।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ।। ११ ।६

जब इन्द्र की स्तुति कामना करने वाले, यजमान के घर में निवास करते हुए स्तोतागण इन्द्र के सामने स्तोत्र सहित उपस्थित हों, तब वे इन्द्र आगमन करें । वे संग्रामाभूमि में हमारे सहायक हों । वे इन्द्र अत्यन्त तेज वाले तथा यजमानों के होता रूप हैं ।। ६ ।। प्रजापति के पुत्र, संसार का भरण-पोषण करने वाले, कामनाओं की वर्षा करने वाले, इन्द्र की शक्ति स्तोता यजमान की रक्षा करती है । वह शक्ति यजमानों का पालन करने के लिए शरीर के गुफा रूप हृदय में प्रकट होती है । वह शक्ति यजमानों के घरों और कर्मों में व्याप्त होती हुई प्रसन्नता और अभीष्ट-प्राप्ति के निमित्त उत्पन्न होती हुई सदा पोषण करती हैं ।। ७ ।। इन्द्र ने मेघ के द्वार को खोल डाला । जल के वेग को परिपूर्ण किया । जब उत्तम कर्म वाले यजमान इन्द्र को हवियाँ देते हैं, तब वे गवादि धन भी प्राप्त करते हैं ।। ८ ।। हे इन्द्र ! तुम्हारे दोनों हाथ कल्याण करने वाले हैं । ये सदा श्रेष्ठ कर्मों को करते हुए यजमान को धन प्रदान करते हैं । हे इन्द्र ! तुम्हारे उद्यनव की क्या स्थिति है ? तुम हमको धन प्रदान करने के लिए प्रसन्न क्यों नहीं होते ? ।। ९ ।। सत्य से युक्त, धनों के स्वामी, वृत्र का संहार करने वाले इन्द्र की यह स्तुति किये जाने पर वे यजमानों को धन प्रदान करते हैं । हे इन्द्र ! तुम बहुतों द्वारा पूजित हो । हमारी स्तुति सुनकर हमें धन प्रदान करो, जिससे हम दिव्य ऐश्वर्य का उपभोग कर सकें ।। १० ।। हे इन्द्र ! तुम पूर्वकालीन ऋषियों द्वारा स्तुत हुए । अब हमारे द्वारा स्तूयमान होकर जल द्वारा नदी को पूर्ण करने के समान स्तुति करने वालों के अन्न को बढ़ाते हो । हे अश्ववान् इन्द्र ! हम तुम्हारे लिये नूतन स्तोत्र रचते हैं, जिससे हम उत्तम रथ से युक्त हुए तुम्हारा स्तवन और परिचर्या करते रहें ।। ११ ।। [६]

२२ सूक्त (तीसरा अनुवाक)

(ऋषि—विश्वामित्रः। देवता—इन्द्रः। छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

यन्न इन्द्रो जुजुषे यच्च वष्टि तन्नो महान्करति शुष्म्या चित्।
ब्रह्म स्तोमं मघवा सोममुक्था यो अश्मानं शवसा बिभ्रदेति ॥१
वृषा वृषन्धिं चतुरश्रिमस्यन्नुग्रो बाहुभ्यां नृतमः शचीवान्।
श्रिये परुष्णीमुषमाण ऊर्णां यस्याः पर्वाणि सख्याय विव्ये ॥२
यो देवो देवतमो जायमानो महो वाजेभिर्महद्भिश्च शुष्मैः।
दधानो वज्रं बाह्वोरुशन्तं द्याममेन रेजयत्प्र भूम ॥३
विश्वा रोधांसि प्रवतश्च पूर्वीर्द्यौर्ऋष्वाज्जनिमन्रेजत क्षाः।
आ मातरा भरति शुष्म्या गोर्नृवत्परिज्मन्नोनुवन्त वाताः ॥४
ता तू त इन्द्र महतो महानि विश्वेष्वित्सवनेषु प्रवाच्या।
यच्छूर धृष्णो धृषता दधृष्वानहिं वज्रेण शवसाविवेषीः ॥५।७

वे महाबली इन्द्र हमारा हव्यरूप अन्न भक्षण करते हैं। वे ऐश्वर्य-वान् वज्र धारण कर, शक्तिशाली हुए आते हैं। हविरन्न, स्तुति, सोम तथा स्तोत्रों को ग्रहण करते हैं ॥ १ ॥ वे इन्द्र कामनाओं की वर्षा करने वाले हैं वे अपनी दोनों भुजाओं से वर्षा करने वाले वज्र को शत्रुओं पर चलाते हैं वे विकराल कर्म वाले, अग्रणि, सर्ग करने वाले होकर "परुष्णी" नदी को शरण देने के लिये पूर्ण करते हैं। उन इन्द्र ने "परुष्णी" नदी के प्रदेशों को मैत्री-कर्म के निमित्त सम्पन्न किया ॥ २ ॥ जो अत्यन्त प्रकाशमान, श्रेष्ठ दानी, उत्पन्न होते ही अन्न और अत्यन्त शक्ति से युक्त हो गये, वे इन्द्र दोनों भुजाओं में वज्र उठा कर बल से आकाश और पृथिवी को कम्पायमान करते थे ॥ ३ ॥ उन महान् इन्द्र के प्राकट्य पर सब पर्वत, सब समुद्र, आकाश और पृथिवी उनके डर से काँप गये। वे शक्तिशाली इन्द्र गतिवान आदित्य के पिता-माता आकाश पृथिवी को धारण करते हैं। इन्द्र द्वारा प्रेरणा प्राप्त वायु मनुष्य के समान शब्दकारी होता है ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! तुम महान् हो

तुम्हारा कर्म महत्वशील है और तुम सभी सवनों में स्तुतियों के पात्र हो। तुम अत्यन्त मेधावी एवं वीर हो। तुमने बलपूर्वक अपने वज्र से अहि का नाश किया था और सब लोकों को धारण किया था ॥५॥ [७]

ता तू ते सत्या तुविनृम्ण विश्वा प्र धेनवः सिस्रते वृष्ण ऊध्नः ।
अधा ह त्वद्वृषमणो भियानाः प्र सिन्धवो जवसा चक्रमन्त ॥६
अत्राह ते हरिवस्ता उ देवीरवोभिरिन्द्र स्तवन्त स्वसारः ।
यत्सीमनु प्र मुचो बद्बधाना दीर्घामनु प्रसितिं स्यन्दयध्यै ॥७
पिपीळे अंशुर्मद्यो न सिन्धुरा त्वा शमी शशमानस्य शक्तिः ।
अस्मद्र्यक्शुशुचानस्य यम्या आशुर्न रश्मिं तुव्योजसं गोः ॥८
अस्मे वर्षिष्ठा कृणुहि ज्येष्ठा नृम्णानि सत्रा सहुरे सहांसि ।
अस्मभ्यं वृत्रा सुहनानि रन्धि जहि वधर्वनुषो मर्त्यस्य ॥९
अस्माकमित्सु शृणुहि त्वमिन्द्रास्मभ्यं चित्राँ उप माहि वाजान् ।
अस्मभ्यं विश्वा इषणः पुरन्धीरस्माकं सु मघवन्बोधि गोदाः ॥१०
नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो न पीपेः ।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥११॥८

हे इन्द्र ! तुम अत्यन्त बलशाली हो। तुम्हारे सभी कर्म सत्य से ओतप्रोत हैं। तुम अभीष्टों की वर्षा करने वाले हो। तुम्हारे डर से गौऐं दूध की रक्षा करती हैं। नदियाँ तुम्हारे डर से ही बहती हैं ॥ ६ ॥ हे अश्ववान् इन्द्र ! जब तुमने वृत्र द्वारा रोकी गई इन नदियों को बहुत कालोपरांत बहने के लिये छोड़ा, तब उसी समय वे सुन्दर नदियाँ तुम्हारे आश्रय के लिए स्तुति करती थीं ॥ ७ ॥ हर्षोत्पादक सोम सिद्ध हुआ। वह गतिमान होकर तुम्हारे पास पहुँचे। द्रुतगामी सवार चलने वाले घोड़े की लगाम पकड़ कर जैसे उसे प्रेरणा देता है, वैसे ही तुम शुभ कर्म वाले स्तोता की स्तुति को प्रेरणाप्रद बनाओ ॥ ८ ॥ हे इन्द्र ! तुम शत्रुओं का सदा पराभव करने वाला, महान् बल हमको प्रदान करो, मारने के योग्य शत्रुओं को हमारे वश

में करो और हिंसा करने वाले विरोधियों के हथियारों का नाश कर दो ।।९।। हे इन्द्र ! हमारी स्तुति को सुनो । हमको विविध भाँति का अन्न-धन आदि प्रदान करो । हमारे निमित्त बुद्धियों को प्रेरणा दो और हमको गौऐं प्रदान करो ।। १० ।। हे इन्द्र ! तुम पूर्वज ऋषियों द्वारा पूजित हुए । अब हम भी तुम्हारा स्तवन करते हैं । तुम जल द्वारा नदी को पूर्ण करने के समान स्तुति करने वालों के अन्न की वृद्धि करते हो । हे इन्द्र ! तुम अश्वों के स्वामी हो । हम तुम्हारे निमित्त नूतन स्तोत्र की रचना करते हैं, जिससे हम रथ वाले होकर तुम्हारी स्तुति और परिचर्या करते रहें ।। ११ ।।   [८]

२३ सूक्त

(ऋषि—वामदेवः । देवता—इन्द्रः । छन्द–त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

कथा महामवृधत्कस्य होतुर्यज्ञं जुषाणो अभि सोममूधः ।
पिबन्नुशानो जुषमाणो अन्धो ववक्ष ऋष्वः शुचते धनाय ।।१
को अस्य वीरः सधमादमाप समानंश सुमतिभिः को अस्य ।
कदस्य चित्रं चिकिते कदूती वृधे भुवच्छशमानस्य यज्वोः ।।२
कथा शृणोति हूयमानमिन्द्रः कथा शृण्वन्नवसामस्य वेद ।
का अस्य पूर्वीरुपमातयो ह कथैनमाहुः पपुरिं जरित्रे ।।३
कथा सबाधः शशमानो अस्य नशदभि द्रविणं दीध्यानः ।
देवो भुवन्नवेदा म ऋतानां नमो जगृभ्वाँ अभि यज्जुजोषत् ।।४
कथा कदस्या उषसो व्युष्टौ देवो मर्तस्य सख्यं जुजोष ।
कथा कदस्य सख्यं सखिभ्यो ये अस्मिन्कामं सुयुजं ततस्रे ।।५।६

हमारी स्तुति इन्द्र को किस प्रकार बढ़ायेगी ? वे किस होता के यज्ञ में स्नेह भाव से आते हैं ? इन्द्र महान् हैं । वे सोम रस का स्वाद लेते हुए तथा हविरन्न की इच्छा करते हुए उज्ज्वल धन को किस यजमान के निमित्त धारण करते हैं ? ।। १ ।। इन्द्र के साथ कौन सोम पीयेगा ? कौन उनकी कृपा प्राप्त करेगा ? उनका अद्भुत धन कब बाँटा जायेगा ? वे अपने स्तोता

। बढ़ाने के लिए उसकी रक्षा करेंगे ? ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! तुम महा
ऐश्वर्य से युक्त होकर होता की बात कैसे सुनते हो ? तुम स्तोत्रों को सुनक
स्तुतिकर्त्ता होता की रक्षा की बात कैसे जानते हो ? तुम्हारे प्राचीन दा
कौन से हैं ? तुम्हारे वे दान स्तोता की इच्छा को पूर्ण करने वाले क्यों क
जाते हैं ? ॥ ३ ॥ जो यजमान कष्ट में पड़कर इन्द्र की स्तुति करते औ
यश द्वारा प्रकाश पाते हैं, वे इन्द्र के धन को कैसे प्राप्त करते हैं ? ज
प्रकाशमान इन्द्र हवि सेवन कर हम पर प्रसन्न होते हैं, तब वे हमारे स्तो
को ठीक प्रकार जानते हैं ॥ ४ ॥ प्रकाशमान इन्द्र उषा वेला में कब औ
किस प्रकार मनुष्यों से बन्धुभाव बनाते हैं ? इन्द्र के निमित्त जो होता स्तु
पुण्य को बढ़ाते हैं उनके प्रति इन्द्र कब और कैसे अपना बन्धुभाव प्रकाशि
करते हैं ? ॥ ५ ॥ [८

किमादमत्रं सख्यं सखिभ्यः कदा नु ते भ्रात्रं प्र ब्रवाम ।
श्रिये सुदृशो वपुरस्य सर्गाः स्वर्ण चित्रतममिष आ गोः ॥६
द्रुहं जिघांसन्ध्वरसमनिन्द्रां तेतिक्ते तिग्मा तुजसे अनीका ।
ऋणा चिद्यत्र ऋणया न उग्रो दूरे अज्ञाता उषसो बबाधे ॥७
ऋतस्य हि शुरुधः सन्ति पूर्वीऋतस्य धीतिर्वृजिनानि हन्ति ।
ऋतस्य श्लोको बधिरा ततर्द कर्णा बुधानः शुचमान आयोः ॥८
ऋतस्य दृळ्हा धरुणानि सन्ति पुरूणि चन्द्रा वपुषे वपूंषि ।
ऋतेन दीर्घमिषणन्त पृक्ष ऋतेन गाव ऋतमा विवेशुः ॥९
ऋतं येमान ऋतमिद्वनोत्यृतस्य शुष्मस्तुरया उ गव्युः ।
ऋताय पृथ्वी बहुले गभीरे ऋताय धेनू परमे दुहाते ॥१०
नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो न पीपेः ।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥११॥१०

हे इन्द्र ! यजमान, शत्रु को हराने वाले तुम्हारे मित्रभाव को
प्रकार स्तोताओं से कहेंगे ? कब हम तुम्हारे बन्धुभाव को प्रचारित करे
उत्तम दर्शन वाले इन्द्र के सभी कर्म स्तुति करने वालों के लिए सुख
होते हैं। सूर्य के समान अत्यन्त दर्शनीय इन्द्र के शरीर की सब कामना

हैं ॥ ६ ॥ द्रोह और हिंसा करने वाली, इन्द्र के पराक्रम को न जानने वाली राक्षसी के वध के लिए वे इन्द्र पहले से ही शस्त्रों को तेज करते हैं। जैसे ऋण सब धन को समाप्त कर देता है, वैसे ही इन्द्र उन उषाओं को पीड़ित करते हैं ॥ ७ ॥ ऋतदेव बहुत जल से युक्त हैं। उनकी स्तुति पापों को दूर करती है। उनकी ज्ञान देने वाली वाणी बहरे मनुष्यों के भी कान में पहुँच जाती है ॥ ८ ॥ ऋतदेव के अनेक रूप हैं। साधकगण उनसे अन्न की याचना करते हैं। उनके द्वारा गौएँ दक्षिणा के रूप से यज्ञ में जाती हैं ॥ ९ ॥ स्तुति करने वाले ऋतदेव को वश में करने के लिए उनका भजन करते हैं। उनका बल जल की अभिलाषा करता है। आकाश और पृथिवी दोनों ऋतदेव की हैं। स्नेहमयी तथा श्रेष्ठ आकाश-पृथिवी ऋतदेव के लिए दूध दुहती हैं ॥ १० ॥ हे इन्द्र ! तुम पूर्वज ऋषियों द्वारा स्तुत हुए। अब हम भी तुम्हारा स्तवन करते हैं। तुम जल द्वारा नदी को पूर्ण करने के समान स्तोताओं के अन्न को बढ़ाते हो। हे इन्द्र ! तुम अश्ववान् हो। हम तुम्हारे लिए नवीन स्तोत्र की रचना करते हैं, जिससे हम रथ वाले होकर तुम्हारी स्तुति और परिचर्या करते रहें ॥ ११ ॥ [१०]

२४ सूक्त

(ऋषि—वामदेवः। देवता—इन्द्रः—त्रिष्टुप् पंक्तिः)

का सुष्टुतिः शवसः सूनुमिन्द्रमर्वाचीनं राधस आ ववर्तत् ।
ददिर्हि वीरो गृणते वसूनि स गोपतिर्निष्षिधां नो जनासः ॥ १
स वृत्रहत्ये हव्यः स ईड्यः स सुष्टुत इन्द्रः सत्यराधाः ।
स यामन्ना मघवा मर्त्याय ब्रह्मण्यते सुष्वये वरिवो धात् ॥ २
तमिन्नरो वि ह्वयन्ते समीके रिरिक्वांसस्तन्वः कृण्वत त्राम् ।
मिथो यत्त्यागमुभयासो अग्मन्नरस्तोकस्य तनयस्य सातौ ॥ ३
क्रतूयन्ति क्षितयो योग उग्राशुषाणासो मिथो अर्णसातौ ।
सं यद्विशोऽववृत्रन्त युध्मा आदिन्नेम इन्द्रयन्ते अभीके ॥ ४
आदिद्ध नेम इन्द्रियं यजन्त आदित्पक्तिः पुरोळाशं रिरिच्यात् ।

वृषभं यजध्यै ॥ ५ । ११
अदित्सोमो वि पपृच्याद सुब्बीनादिज्जुजोप

वल के पुत्र इन्द्र को, सुन्दर स्तुति द्वारा धन देने के निमित्त हम किस प्रकार बुलावें ? हे मनुष्यो ! पशुओं का पालन करने वाले वीर इन्द्र हमको शत्रुओं का धन प्रदान करें। हम उनका स्तवन करते हैं ॥ १ ॥ वृत्र के लिए इन्द्र युद्ध में बुलाए जाते हैं। वे स्तुति के पात्र हैं। उत्तम प्रकार से स्तुति किए जाने पर वे यजमानों को धन देने के लिए सत्य स्वरूप बनते हैं। वे ऐश्वर्यवान् इन्द्र स्तोत्र की ओर सोम की कामना करने वाले, यजमान को धन देते हैं ॥ २ ॥ संग्राम में मनुष्य इन्द्र को आहूत करते हैं। यजमान अपने स्तोता दोनों मिलकर सन्तति-लाभ के लिए इन्द्र के पास जाते हैं ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! तुम बलवान् हो। चारों दिशाओं में रहने वाले मनुष्य जल के निमित्त इकट्ठे होकर यज्ञ करते हैं। जब युद्ध करने वाले समर भूमि में इकट्ठे होते हैं तब उनमें से कौन इन्द्र की कामना करता है ? ॥ ४ ॥ उस समय कोई वीर सशक्त इन्द्र का पूजन करते और कोई पुरोडाश लाकर इन्द्र को देते हैं। उस समय सोम सिद्ध करने वाले यजमान, सोम सिद्ध न करने वाले यजमान को धन विहीन कर देते हैं। उस समय कामनाओं की वर्षा करने वाले इन्द्र के लिए कोई यज्ञ करने की इच्छा करते हैं ॥ ५ ॥ [११]

कृणोत्यस्मै वरिवो य इत्थेन्द्राय सोममुशते सुनोति ।
सध्रीचीनेन मनसाविवेनन्तमित्सखायं कृणुते समत्सु ॥ ६
य इन्द्राय सुनवत्सोममद्य पचात्पक्तीरुत भृज्जाति धानाः ।
प्रति मनोयारुचथानि हर्यन्तस्मिन्दधद्वृषणं शुष्ममिन्द्रः ॥ ७
यदा समर्यं व्यचेदृघावा दीर्घं यदाजिमभ्यख्यदर्यः ।
अचिक्रदद् वृषणं पत्न्यच्छा दुरोण आ निशितं सोमसुद्भिः ॥ ८
भूयसा वस्नमचरत्कनीयोऽविक्रीतो अकानिषं पुनर्यन् ।
स भूयसा कनीयो नारिरेचिद्दीना दक्षा वि दुहन्ति प्र वाणम् ॥ ९
क इमं दशभिर्ममेन्द्रं क्रीणाति धेनुभिः ।
यदा वृत्राणि जंघनदथैनं मे पुनर्ददत् ॥

नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो न पीपेः ।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासः ॥ ११ ।२२

दिव्य लोक में निवास करने वाले इन्द्र के लिए जो सोम की कामना वाले उसे सिद्ध करते हैं, उनको इन्द्र धन प्रदान करते हैं। एकाग्र भाव से इन्द्र को चाहने वाले तथा सोम सिद्ध करने वाले यजमान से वे इन्द्र युद्ध क्षेत्र में सख्य भाव स्थापित करते हैं ॥ ६ ॥ आज जो इन्द्र के निमित्त सोम-रस निकालते हैं, जो पुरोडाश लाते और सुनने योग्य जौ को भूनते हैं, उन-स्तोत्र को ग्रहण करने वाले इन्द्र, यजमान की इच्छा पूर्ण करने वाले बल को धारण करते हैं ॥ ७ ॥ जब वे शत्रु संहारक प्रभु इन्द्र शत्रुओं का जान लेते हैं और जब वे भीषण संग्राम में लगे होते हैं तब उनकी भार्या सोम सिद्ध करने वाले ऋत्विक् द्वारा सोम-पान से हृष्ट और कामनाओं की वर्षा करने वाले इन्द्र का आह्वान करती है ॥ ८ ॥ कोई पुण्य करके थोड़ा धन पाता है, फिर खरीदने वाले के पास जाकर 'हमने बेचा नहीं' ऐसा कहकर शेष धन माँगता है। खरीदने वाला उससे अधिक धन नहीं देता ॥ ९ ॥ इन्द्र को कौन दस गायों के समान धन से खरीद सकता है ? वह जब बढ़ते हुए शत्रुओं का वध कर डालते हैं, तब वह उनके गवादि धन को मुझे ही सौंप देते हैं ॥ १० ॥ हे इन्द्र ! तुम पूर्वज ऋषियों द्वारा पूजित हुए। अब हम तुम्हारी स्तुति करते हैं। तुम जल से परिपूर्ण नदी के समान स्तुति करने वालों के अन्न की वृद्धि करते हो। हे इन्द्र ! तुम अश्ववान् हो। हम तुम्हारे नूतन स्तोत्र रचते हैं, जिससे हम रथ वाले होकर तुम्हारी स्तुति और परिचर्या करते रहें ॥ ११ ॥ [१२]

२५ सूक्त

(ऋषि—वामदेवः । देवता—इन्द्रः । छन्दः—पंक्तिः, त्रिष्टुप्)

को अद्य नर्यो देवकामः उशन्निन्द्रस्य सख्यं जुजोष ।
को वा महेऽवसे पार्याय समिद्धे अग्नौ सुतसोम ईट्टे ॥ १
को नानाम वचसा सोम्याय मनायुर्वा भवति वस्त उस्राः ।

क इन्द्रस्य युज्यं कः सखित्वं को भ्रात्रं वष्टि कवये क ऊती ॥ २
को देवानामवो अद्या वृणीते क आदित्याँ अदितिं ज्योतिरीट्टे ।
कस्याश्विनाविन्द्रो अग्निः सुतस्यांशोः पिवन्ति मनसाविवेनम् ॥ ३
तस्मा अग्निर्भारतः शर्म यंसज्ज्योक्पश्यात्सूर्यमुच्चरन्तम् ।
य इन्द्राय सुनवामेत्याह नरे नर्याय नृतमाय नृणाम् ॥ ४
न तं जिनन्ति बहवो न दभ्रा उर्वस्मा अदितिः शर्म यंसत् ।
प्रियः सुकृत्प्रियः इन्द्रे मनायुः प्रियः सुप्रावीः प्रियो अस्य सोमी ॥५॥१३

हितकारी, देवताओं की कामना वाला कौन-सा मनुष्य आज इन्द्र से मित्रता स्थापित करना चाहता है ? सोम का अभिषव करने वाला ऐसा कौन व्यक्ति है जो अग्नि के प्रदीप्त होने पर इन्द्र के रक्षा करने वाले आश्रय की कामना से उनका स्तवन करता है ? ॥ १ ॥ कौन-सा यजमान इन्द्र के सामने स्तुति करता हुआ नत-मस्तक होता है ? कौन इन्द्र की स्तुति की रक्षा करता है ? इन्द्र को दी हुई गौओं को कौन लेता है। इन्द्र की सहायता कौन चाहता है ? कौन उनसे मित्रता करने का अभिलाषी है ? कौन उससे बन्धुत्व भाव करना चाहता है ? कौन उन तेजस्वी इन्द्र के आश्रय की याचना करता है ? ॥ २ ॥ कौन यजमान इन्द्र आदि देवताओं से रक्षा के लिए निवेदन करता है ? आदित्य, अदिति और उदक की स्तुति कौन करता है ? अश्विनी-कुमार, इन्द्र और अग्नि किस यजमान के स्तोत्र से प्रसन्न होकर छने हुए सोमरस को इच्छानुसार पीते हैं ? ॥ ३ ॥ जो यजमान मनुष्यों के सखा, श्रेष्ठ नेतृत्व वाले इन्द्र के निमित्त सोम सिद्ध करने का संकल्प करते हैं, ऐसे यजमानों को हवियों के स्वामी अग्नि सुखी करें और सदा से उदय होने वाले सूर्य के दर्शन करने वाला बनावें ॥ ४ ॥ जो यजमान इन्द्र के निमित्त सोम सिद्ध करते हैं इन्द्र की माता अदिति उनको सुखी बनावें, सुन्दर यज्ञादि शुभ कर्म करने वाले यजमानों को इन्द्र स्नेह करें । इन्द्र की स्तुति करने के इच्छुक उनके स्नेह भाजन हों । जो शील स्वभाव वाले एवं सोम को सिद्ध करने वाले हैं वे सब इन्द्र के स्नेही बनें ॥ ५ ॥ [१३]

स्न प्राव्यः प्राशुषाळेष वीरः सुष्वेः पक्तिं कृणुते केवलेन्द्रः ।
नासुष्वेरापिर्न सखा न जामिर्दुष्प्राव्योऽवहन्तेदवाचः ॥६
न रेवता पणिना सख्यमिन्द्रोऽसुन्वता सुतपाः सं गृणीते ।
आस्य वेदः खिदति हन्ति नग्नं वि सुष्वये पक्तये केवलो भूत् ॥७
इंद्रं परेऽवरे मध्यमास इंद्रं यान्तोऽवसितास इंद्रम् ।
इंद्रं क्षियन्त उत युध्यमाना इंद्रं नरो वाजयन्तो हवन्ते ॥८।१४

इन्द्र के निकट जाने वाले और सोम सिद्ध करने वाले यजमान के पाक-कर्म को वीर इन्द्र स्वीकार करते हैं। सोम का अभिषव न करने वाले यजमान के लिए इन्द्र व्याप्त नहीं होते। वे उनसे सख्य और बन्धुत्व नहीं रखते। इन्द्र के समीप न जाने वाला, उनकी स्तुति न करने वाला उनके द्वारा हिंसित किया जाता है ॥ ६ ॥ सिद्ध सोम को पीने वाले इन्द्र सोम सिद्ध करने वाले कर्म से विहीन धनिक एवं लोलुप के साथ सख्य भाव नहीं बनाते। वे उनके किसी काम न आने वाले धन का नाश कर देते हैं। वे सोमाभिषवकर्ता तथा हविरन्न के पाककर्ता यजमान से अत्यन्त बन्धुत्व स्थापित करते हैं ॥७॥ ऊँच, नीच, मध्यम सभी प्रकार के मनुष्य इन्द्र को आहूत करते हैं। गमन-शील, उपविष्ट, घरों में रहने वाले, समरभूमि में जाने वाले तथा अन्न की कामना वाले सभी जीव इन्द्र का आह्वान करते हैं ॥ ८ ॥ [१४]

२६ सूक्त

(ऋषि—वामदेवः । देवता—इन्द्रः । छन्द—पंक्तिः, त्रिष्टुप्)

अहं मनुरभवं सूर्यश्चाहं कक्षीवाँ ऋषिरस्मि विप्रः ।
अहं कुत्समार्जुनेयं न्यृञ्जेऽहं कविरुशना पश्यता मा ॥१
अहं भूमिमददामार्यायाहं वृष्टिं दाशुषे मर्त्याय ।
अहमपो अनयं वावशाना मम देवासो अनु केतमायन् ॥२
अहं पुरो मन्दसानो व्यैरं नव साकं नवतीः शम्बरस्य ।
शततमं वेश्यं सर्वताता दिवोदासमतिथिग्वं यदावम् ॥३
प्र सु ष विभ्यो मरुतो विरस्तु प्र श्येनः श्येनभ्यः आशुपत्वा ।

अचक्रया यत्स्वधया सुपर्णो हव्यं भरन्मनवे देवजुष्टम् ॥ ४
भरद्यदि विरतो वेविजानः पथोरुणा मनोजवा असर्जि ।
तूयं ययौ मधुना सोम्येनोत श्रवो विविदे श्येनो अत्र ॥ ५
ऋजीपी श्येनो ददमानो अंशुं परावतः शकुनो मन्द्रं मदम् ।
सोमं भरद्दादृहाणो देवावान्दिवो अमुष्मादुत्तरादादाय ॥ ६
आदाय श्येनो अभरत्सोमं सहस्रं सवाँ अयुतं च साकम् ।
अत्रा पुरन्धिर जहादरातीर्मदे सोमस्य मूरा अमूरः ॥ ७ । १५

हम प्रजापति, सबको प्रेरणा देने वाले सूर्य हैं, एवं हम ही 'दीर्घतमा' के विद्वान् पुत्र 'कक्षीवान्' ऋषि हैं। हम ही कवि 'उशना' हैं। हमने ही 'अर्जुनी' के पुत्र 'कुत्स' को भले प्रकार प्रशंसित किया था। हे मनुष्यो ! हम ही क्रान्तदर्शी और सर्वप्रिय हैं॥ १ ॥ मैंने ही मनुष्य को भूमि दी। मैंने ही सत्य की वृद्धि के लिए वृष्टि की। मैंने ही शब्द करते हुए जल को प्रेरित किया। मेरी इच्छा पर सभी देवता चलते हैं॥ २ ॥ सोम पीकर हृष्ट हुए मैंने 'शम्बर' के निन्यानवे नगरों को एक ही समय में विध्वंस कर डाला। जब मैं यज्ञ में 'राजर्षि दिवोदास' की रक्षा कर रहा था, तब मैंने उनके निवास के लिए सौ नगर प्रदान किए थे॥ ३ ॥ हे मरुतो ! तुम बाज पक्षियों के प्रधानत्व प्राप्त हो। दूसरों की अपेक्षा तुम शीघ्रगामी हो। देवताओं द्वारा सेवन किए जाने वाले सोमरूप हव्य को सुपर्ण ने बिना पहिए के रथ द्वारा दिव्य लोक से लाकर मनुष्यों को दिया था॥ ४ ॥ जब श्येन डरकर आकाश से सोम लाया तब वह विशाल अन्तरिक्ष के पथ में मन के समान वेग वाला होकर उड़ा। सोमरूप अन्न के सहित वह शीघ्र गया और सोम लाने से उसका यश फैल गया॥ ५ ॥ द्रुतगामी और यशस्वी श्येन देवताओं के साथ दूर से सोम को उठाकर स्तुत्य एवं हर्षदायक सोम को ऊँचे आकाश से लेकर दृढ़ता पूर्वक पृथिवी पर चला आया॥ ६ ॥ श्येन ने हजारों लाखों यज्ञ-कर्मों द्वारा सोम को पाया और वह उसको ले आया। उस सोम के लाने पर बहुकर्मा एवं मेधावी इन्द्र ने सोम से उत्पन्न शक्ति से अज्ञानी शत्रुओं पर संहार किया॥ ७ ॥ [१५]

२७ सूक्त

(ऋषि—वामदेवः । देवता—इन्द्रः । छन्द—त्रिष्टुप्,शक्वरी)

गर्भे नु सन्नन्वेषामवेदमहं देवानां जनिमानि विश्वा ।
शतं मा पुर आयसीररक्षन्नध श्येनो जवसा निरदीयम् ॥१
न घा स मामप जोषं जभाराभीमास त्वक्षसा वीर्येण ।
ईर्मा पुरन्धिरजहादरातीरुत वातां अतरच्छूशुवानः ॥२
अव यच्छ्येनो अस्वनीदध द्योर्वि यद्यदि वात ऊहुः पुरन्धिम् ।
सृजद्यदस्मा अव ह क्षिपज्ज्यां कृशानुरस्ता मनसा भुरण्यन् ॥३
ऋजिप्य ईमिन्द्रावतो न भुज्युं श्येनो जभार बृहतो अधि ष्णोः ।
अन्तः पतत्पतत्र्यस्य पर्णमध यामनि प्रसितस्य तद्वेः ॥४
अध श्वेतं कलशं गोभिरक्तमापिप्यानं मघवा शुक्रमन्धः ।
अध्वर्युभिः प्रयतं मध्वो अग्रमिन्द्रो मदाय प्रति धत्पिबध्यै
शूरो मदाय प्रति धत्पिबध्यै ॥५॥१६

गर्भ में रहते हुए ही हमने इन्द्रादि सब देवताओं के प्राकट्य को समग्रता से जान लिया था। लोह की बनी हुई दृढ़ नगरियों में हमारा पालन हुआ था। हम ज्ञान से युक्त हो बाज के समान बड़े वेग से उड़ जाने वाले आत्मा को जानते हुए देह-बन्धन से निकल जाते हैं ॥ १ ॥ उस गर्भ में रहते हुए भी हमको मोह ने नहीं घेरा। हमने गर्भ के दुःखों को ज्ञान के बल से जीत लिया। सबको प्रेरणा देने वाले प्रभु ने गर्भ में स्थित शत्रु रूप कीटाणुओं को नष्ट किया और वृद्धि को प्राप्त होकर क्लेश पहुँचाने वाली वायु का शमन किया ॥ २ ॥ सोम लाते समय जब बाज ने आकाश से नीचे की ओर मुख करके शब्द किया, जब सोम के रक्षकों ने श्येन से सोम को छी[न] लिया, जब सोम रक्षक कृशानु ने मन के वेग से जाने वाले बाण के लि[ए] धनुष पर प्रत्यञ्चा चढ़ाई और श्येन की ओर बाण चलाया, तब श्येन सो[म] को लेकर आया ॥ ३ ॥ जैसे अश्विनीकुमारों ने इंद्र के स्वामित्व वाले दे[श] से राजा भुज्य का अपहरण किया था, उसी प्रकार इंद्र से रक्षित मह[...]

आकाश से ऋजुगामी श्येन सोम को लेकर आया । उस समय कृशानु से लड़ने के कारण उस गमनशील श्येन का एक पङ्ख बाण से बिंध जाने के कारण गिर पड़ा ॥ ४ ॥ महा पराक्रमी इंद्र पवित्र पात्र में सुरक्षित, गव्य मिश्रित, तृप्तिदायक, सार रूप सोम के अध्वर्युओं द्वारा दिये जाने पर उसके हर्ष प्रदायक रस का इस समय पान करें ॥ ५ ॥ [१६]

२८ सूक्त

(ऋषि—वामदेवः । देवता—इन्द्रसोमौ । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्ति)

त्वा युजा तव तत्सोम सख्य इन्द्रो अपो मनवे सस्रुतस्कः ।
अहन्नहिमरिणात्सप्त सिन्धूनपावृणोदपिहितेव खानि ॥१
त्वा युजा नि खिदत्सूर्यस्येन्द्रश्चक्रं सहसा सद्य इन्दो ।
अधि ष्णुना बृहता वर्तमानं महो द्रुहो अप विश्वायु धायि ॥२
अहन्निन्द्रो अदहदग्निरिन्दो पुरा दस्यून्मध्यन्दिनादभीके ।
दुर्गे दुरोणे क्रत्वा न यातां पुरू सहस्रा शर्वा नि बर्हीत् ॥३
विश्वस्मात्सीमधमाँ इन्द्र दस्यून्विशो दासीरकृणोरप्रशस्ताः ।
अबाधेथाममृणतं नि शत्रूनविन्देथामपचितिं वधत्रैः ॥४
एवा सत्यं मघवाना युवं तदिन्द्रश्च सोमोर्वमश्व्यं गोः ।
आदर्दृतमपिहितान्यश्ना रिरिचथुः क्षाश्चित्ततृदाना ॥५ ॥१७

हे सोम ! जब इंद्र तुम्हारे मित्र हुए तब तुम्हारी सहायता से उन्होंने मनुष्यों के निमित्त जल को बहाया और वृत्र का संहार किया । वृत्र द्वारा रोके हुए द्वार को खोलकर जल का प्रेरण किया ॥ १ ॥ हे सोम ! तुम्हारी सहायता से ही इंद्र ने सूर्य के रथ के ऊपर स्थित दो चक्रों वाले रथ के एक चक्र को क्षण भर में छिन्न कर दिया । सूर्य के सर्वत्र गतिमान चक्र को स्पर्धा के कारण इंद्र ने ले लिया ॥ २ ॥ हे सोम ! तुमको पीकर पराक्रमी इंद्र ने मध्याह्न काल से पूर्व ही शत्रुओं को युद्ध में नष्ट कर दिया और अग्नि ने भी अनेक शत्रुओं को भस्म किया । जैसे अरक्षित मार्ग से जाने वाले धनिक को चोर मार देता है, वैसे ही असंख्य शत्रु-सेनाओं को इंद्र ने मार डाला ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! तुम सब दुष्टों को सद्‌गुणों से विहीन करते हो । तुम उन दस्युओं को निन्दा के योग्य करते हो । हे इन्द्र और सोम ! तुम दोनों ही शत्रुओं के आक्रमण-कार्य में बाधक बनते हुए उनका संहार करो । उनका वध करने के लिए की जाने वाली स्तुतियों को स्वीकार करो ॥ ४ ॥ हे सोम ! तुमने और इन्द्र ने विशाल अश्वों और गौओं के झुण्डों को दान दिया था । हे इन्द्र और सोम ! तुम दोनों ही अत्यन्त ऐश्वर्यशाली हो । तुम दोनों ही शत्रुओं का संहार करने में समर्थ हो । तुम दोनों जो भी कर्म करते हो वह सब सत्य है ॥ ५ ॥ [१७]

२६ सूक्त

(ऋषि-- वामदेवः । देवता—इन्द्रः । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

आ नः स्तुत उप वाजेभिरूती इन्द्र याहि हरिभिर्मन्दसानः ।
तिरश्चिदर्यः सवना पुरूण्याङ्‌गूषेभिर्गृणानः सत्यराधाः ॥ १
आ हि ष्मा याति नर्यश्चिकित्वान्हूयमानः सोतृभिरुप यज्ञम् ।
स्वश्वो यो अभीरुर्मन्यमानः सुष्वाणेभिर्मदति सं ह वीरैः ॥ २
श्रावयेदस्य कर्णा वाजयध्यै जुष्टामनु प्र दिशं मन्दयध्यै ।
उद्वावृषाणो राधसे तुविष्मान्करन्न इन्द्रः सुतीर्थाभयं च ॥ ४
अच्छा यो गन्ता नाधमानमूती इत्था विप्रं हवमानं गृणन्तम् ।
उप त्मनि दधानो धुर्या३शून्सहस्राणि शतानि वज्रबाहुः ॥ ३
त्वोतासो मघवन्निन्द्र विप्रा वयं ते स्याम सूरयो गृणन्तः ।
भेजानासो बृहद्दिवस्य राय आकाय्यस्य दावने पुरुक्षोः ॥ ५ ॥ १८

हे इन्द्र ! हमारे द्वारा स्तवन करने पर हमारी रक्षा के निमित्त हविरन्न युक्त हमारे यज्ञों में अश्वों के सहित पधारो । तुम प्रसन्न मन वाले, स्तोत्रों द्वारा पूजित, सत्य स्वरूप एवं सबके स्वामी हो ॥ १ ॥ मनुष्यों का कल्याण करने वाले, सर्वज्ञानों के जानने वाले इन्द्र सोम सिद्ध करने वालों द्वारा बुलाए जाने पर यज्ञ के लिए आवें । वे इन्द्र शोभित अश्वों वाले निडर स्तुत तथा वीर मरुद्गण के साथ पुष्टि को प्राप्त करते हैं ॥ २ ॥ मनुष्यो !

इन्द्र की बल-वृद्धि के लिए तथा उन्हें हर प्रकार से पुष्ट करने के लिए उनके दोनों कानों में स्तोत्रों को श्रवण कराओ। सोम रस से सींचे गए पराक्रमी इन्द्र हमारे धन के लिए उत्तम स्थानों को भय से मुक्त करें ॥ ३ ॥ भुजाओं में वज्र धारण करने वाले इन्द्र अपने बहुसंख्यक घोड़ों को रथ में चलने के लिए जोड़ते हैं और रक्षा करने के लिए बुद्धिमान, प्रसन्न करने वाले, स्तवन करते हुए याचक यजमान के पास जाते हैं ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! तुम ऐश्वर्यवान् हो। हम तुम्हारी स्तुति करने वाले हैं। हम स्तोता विद्वान् तुम्हारे पास रक्षित हैं। तुम दीप्तिवान्, अन्नवान् और स्तुतियों के पात्र हो। धन देने वाले समय मे हम तुम्हारा भजन करें ॥ ५ ॥ [१८]

३० सूक्त

(ऋषि - वामदेवः । देवता —इन्द्रः । छन्दः—गायत्री, अनुष्टुप्)

नकिरिन्द्र त्वदुत्तरो न ज्यायां अस्ति वृत्रहन् । नकिरेवा यथा त्वम् ।१
सत्रा ते अनु कृष्टयो विश्वा चक्रेव वावृतुः । सत्रा महाँ असि श्रुतः ।२
विश्वे चनेदना त्वा देवास इन्द्र युयुधुः । यदहा नक्तमातिरः ॥३
यत्रोत बाधितेभ्यश्चक्रं कुत्साय युध्यते । मुषाय इन्द्र सूर्यम् ॥ ४
यत्र देवाँ ऋघायतो विश्वाँ अयुध्य एक इत् ।
त्वमिन्द्र वनूँरहन् ॥५ । १९

हे इन्द्र ! तुम वृत्र का नाश करने वाले हो। इस संसार में तुमसे बढ़कर कोई श्रेष्ठ नहीं। तुमसे बढ़कर बड़ा भी कोई नहीं है। तुम संसार में जितने प्रसिद्ध हो उतना प्रसिद्ध कोई नहीं ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! सर्व व्यापी पहिया जैसे गाड़ी के पीछे चलता है, वैसे ही प्रजाजन भी तुम्हारे पीछे चलते हैं। तुम सत्य ही मेधावी हो। तुम अपने गुणों द्वारा प्रसिद्ध हो ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! विजय की कामना वाले सब देवताओं ने बल के रूप में तुम्हारी सहायता पाकर राक्षसों से संग्राम किया था। तब तुमने रात-दिन शत्रुओं का संहार किया था ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! उस संग्राम में तुमने युद्ध रत 'कुत्स' और उसके सहायकों के निमित्त सूर्य पर चक्र को घुमाया और अपने जनों की रक्षा की थी ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! संग्राम में तुमने अकेले ही हिंसा

करने वाले तथा सभी देवताओं को बाधा देने वाले असुरों से युद्ध किया था, उसमें उन सभी का संहार किया था ॥ ५ ॥ [१६]

यत्रोत मर्त्याय कमरिणा इन्द्र सूर्यम् । प्राव: शचीभिरेतशम् ॥६
किमादुतासि वृत्रहन्मघवन्मन्युमत्तमः । अत्राह दानुमातिरः ॥ ७
एतद्धेतुदुत वीर्य मिन्द्र चकर्थ पौंस्यम् ।
स्त्रियं यद्दुर्हणायुवं वधीर्दु हितरं दिवः । ८
दिवश्चिद्घा दुहितरं महान्महीयमानाम् । उपासमिन्द्र सं पिणक् ॥ ९
अपोषा अनसः सरत्संपिष्टादह बिभ्युषी ।
नि यत्सीं शिश्नथद्वृषा ॥ १० ॥ २०

हे इन्द्र ! तुमने जिस युद्ध में "एतश" के निमित्त सूर्य पर भी आक्रमण किया था, उस समय घोर संग्राम द्वारा तुमने एतश ऋषि की भले प्रकार रक्षा की थी ॥ ६ ॥ हे वृत्र रूप आवरणकारी अन्धकार को दूर करने वाले इन्द्र ! और तो क्या, तुम दुष्टों पर अत्यन्त क्रोध करने वाले हो । तुम प्रजाओं को छिन्न-भिन्न करने वाले असुर का वध करो ॥ ७ ॥ हे इन्द्र तुम पुरुषोचित वीर कर्मों को करने वाले हो । जैसे सूर्य अपने प्रकाश से उषा का नाश कर देता है, वैसे ही तुम एकत्रित हुई शत्रु-सेना को नष्ट करो ॥ ८ ॥ हे इन्द्र ! सूर्य जैसे प्रकाश का दोहन करने वाली उषा को छिन्न-भिन्न कर देता है, वैसे ही तुम विजय की कामना करने वाली शत्रु-सेना को पीस डालो ॥ ९ ॥ कामनाओं के वर्षक इन्द्र ने जब उषा के रथ को छिन्न-भिन्न किया था, तब उषा डर कर इन्द्र द्वारा तोड़े हुए रथ के ऊपर से प्रकट हुई थी ॥ १० ॥ [२०]

एतदस्या अनः शये सुसम्पिष्टं विपाश्या । ससार सीं परावतः ॥ ११
उत सिन्धुं विबाल्यं वितस्थानामधि क्षमि । परि ष्ठा इन्द्र मायया ॥१२
उत शुष्णस्य धृष्णुया प्र मृक्षो अभि वेदनम् ।
पुरो यदस्य संपिणक् ॥ १३
उत दासं कौलितरं बृहतः पर्वतादधि । अवाहन्निन्द्र शम्बरम् ॥ १४

उत दासस्य वर्चिनः सहस्राणि शतावधीः ।
अधि पञ्च प्रधींरिव ॥ १५ ॥२१

इन्द्र द्वारा तोड़ा गया उषा का वह रथ विपाशा नदी के किनारे जा पड़ा । रथ के भग्न होने पर उषा दूर देश में अचेत होकर जा पड़ी ॥ ११ ॥ हे इन्द्र ! तुमने सभी जलों को तथा तिष्ठमाना नदी को इस भू मण्डल पर अपनी बुद्धि के बल से प्रकट किया था ॥ १२ ॥ हे इन्द्र ! तुम वृष्टि करने वाले हो । जब तुमने "शुष्ण" के नगरों को नष्ट किया था, तब तुमने उसके धन को भी लूटा था ॥ १३ ॥ हे इन्द्र ! तुमने "कौलितर" के पुत्र "शम्बर" नामक असुर को पर्वत से नीचे गिरा कर मार डाला ॥ १४ ॥ हे इन्द्र ! चक्र के चारों ओर स्थित शंकु के समान "वर्चि" नामक दस्यु के चारों ओर स्थित पाँच सौ सहस्र संख्यक दासों का तुमने वध किया था ॥ १५ ॥ [२१]

उत त्यं पुत्रमग्रु्व परावृक्तं शतक्रतुः । उक्थेष्विन्द्र आभजत् ॥ १६
उत त्या तुर्वशायदू अस्नातारा शचीपतिः । इन्द्रो विद्वाँ अपारयत् ॥१७
उत त्या सद्य आर्या सरयोरिन्द्र पारतः । अर्णाचित्ररथावधीः ॥ १८
अनु द्वा जहिता नयोऽन्धं श्रोणं च वृत्रहन् । नतत्ते सुम्नमष्टवे ॥ १९
शतमश्मन्मयीनां पुरामिन्द्रो व्यास्यत् । दिवोदासाय दाशुषे ॥२० ।२२

हे इन्द्र ! तुमने प्रसंशनीय कार्यों में भी उस "अग्रु" पुत्रों को दुःखों से बचाकर यश-भागी बनाया ॥ १६ ॥ शचीपति इन्द्र ने "ययाति" के शाप से च्युत राजा "यदु" और "तुर्वश" को संकट से पार किया था ॥ १७ ॥ हे इन्द्र ! तुमने तत्क्षण "सरयू" के पार रहने वाले "अर्ण" और 'चित्ररथ' नामक राजा का संहार किया ॥ १८ ॥ हे वृत्र नाशक इन्द्र ! तुमने बन्धुओं द्वारा त्यागे गए अन्धे और लँगड़े हर कृपा की थी । तुम्हारे द्वारा दिए गए सुख को नष्ट करने में कोई भी समर्थ नहीं है ॥ १९ ॥ इन्द्र ने हविर्दान करने वाले यजमान "दिवोदास" को "शम्बर" के पाषाण से बने सौ नगर दिए ॥ २० ॥ [२२]

अस्वापयद् भीतये सहस्रा त्रिंशतं हथैः । दासानामिन्द्रो मायया ॥ २१

स घेदुतासि वृत्रहन्त्समान इन्द्र गोपतिः। यस्ता विश्वानि चिच्युषे।२२
उत नूनं यदिन्द्रियं करिष्या इन्द्र पौंस्यम् अद्या नकिष्टदा मिनत्।२३
वामंवामं त आदुरे देवो ददात्वर्यमा।
वामं पूषा वामं भगो वामं देवः करूळती ॥२४।२३

इन्द्र ने अपनी माया से दस्युओं की तीन सौ सहस्र सेना को नष्ट करने के लिए हनन करने वाले अस्त्रों से पृथिवी पर सुला दिया ॥ २१ ॥ हे इन्द्र ! तुम वृत्र के हननकर्त्ता हो। तुमने सभी शत्रु-सेनाओं को रण-क्षेत्र से विचलित कर दिया। तुम गौओं के पालनकर्त्ता हो। तुम सब यजमानों के लिए समान रूप से वर्तते हो ॥ २२ ॥ हे इन्द्र ! तुम जिस सामर्थ्य और ऐश्वर्य को धारण करते हो, उसकी हिंसा आज भी कोई व्यक्ति करने में समर्थ नहीं है ॥ २३ ॥ हे इन्द्र ! तुम शत्रुओं का नाश करने वाले हो, अर्यमा तुम्हें सुन्दर धन दें। दन्तविहीन पूषा और भग भी रमणीय धन प्रदान करें ॥२४॥ [२३]

३१ सूक्त

(ऋषि—वामदेवः। देवता—इन्द्रः। छन्द—गायत्री)

कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा। कया शचिष्ठया वृता ॥१
कस्त्वा सत्यो मदानां मंहिष्ठो मत्सदन्धसः दृळहा चिदारुजे वसु ॥२
अभी षु णः सखीनामविता जरितॄणाम्। शतं भवास्यूतिभिः ॥३
अभी न आ ववृत्स्व चक्रं न वृत्तमर्वतः। नियुद्भिश्चर्षणीनाम् ॥४
प्रवता हि क्रतूनामा हा पदेव गच्छसि। अभक्षि सूर्ये सचा ॥५।२४

वे सदा बढ़ने वाले, पूजा के पात्र, मित्र रूप इन्द्र किस पूजा द्वारा हमारे सामने आवेंगे ? किस बुद्धिमान के श्रेष्ठ कर्म से प्रभावित हुए वे हमारे सामने पधारेंगे ? ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! सत्य रूप और प्रसन्न करने वाले सोम रसों के बीच, शत्रुओं के धन का नाश करने के लिए तुम्हें कौन-सा सोमरस पुष्ट करेगा ? ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! तुम मित्र रूप स्तुति करने वालों की रक्षा करते

हो, अपने विभिन्न रक्षा-साधनों सहित हमारे सामने आओ ॥ ३ ॥ हे इन्द्र! हम तुम्हारे मार्ग पर चलने वाले हैं। हम मनुष्यों की स्तुतियों से प्रसन्न होते हुए तुम हमारे सामने वृत्ताकार चक्र के समान आओ ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! तुम यज्ञ में अपने स्थान को जानते हुए यहाँ पधारो । सूर्य के साथ हम तुम्हारा सदा भजन करते हैं ॥ ५ ॥ [२४]

सं यत्त इन्द्र मन्यवः सं चक्राणि दधन्विरे । अध त्वे अध सूर्ये ॥६
उत स्मा हि त्वामाहुरिन्मघवानं शचीपते । दातारमविदीधयुम् ॥७
उत स्मा सद्य इत्परि शशमानाय सुन्वते । पुरू चिन्मंहसे वसु ॥८
नहि ष्मा ते शतं चन राधो वरन्त आमुरः ।
न च्यौत्नानि करिष्यतः ॥९
अस्माँ अवन्तु ते शतमस्मान्त्सहस्रमूतयः ।
अस्मान्विश्वा अभिष्टयः ॥१० ॥२५

हे इन्द्र ! तुम्हारे निमित्त सम्पादन की गई स्तुति तथा कर्म जब एक साथ ऊपर उठते हैं, तब वे प्रथम तुम्हारे और फिर सूर्य के होते हैं ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! तुम कर्मों के रक्षक हो। तुमको धनवान और स्तोता की इच्छा पूर्ण करने वाला तथा तेजस्वी कहा जाता है ॥ ७ ॥ हे इन्द्र ! सोम सिद्ध करने वाले तथा स्तुति करने वाले यजमान को तुम तुरन्त ही बहुत सा धन देते हो ॥ ८ ॥ हे इन्द्र ! बाधा देने वाले दैत्य भी तुम्हारे सैकड़ों ऐश्वर्यों को रोक नहीं सकते । विभिन्न पराक्रम वाले वीरकर्मा भी तुम्हारे बलों को रोक नहीं सकते ॥ ९ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारे सैकड़ों रक्षा-साधन हमारी रक्षा करें तुम्हारे हजारों रक्षा-साधन हमारी रक्षा करें, तुम्हारी समस्त प्रेरणायें हमारी रक्षा में सहायक हों ॥ १० ॥]२५]

अस्माँ इहा वृणीष्व सख्याय स्वस्तये । महो राये दिवित्मते ॥११
अस्माँ अविड्ढि विश्वहेन्द्र राया परीणसा ।
अस्मान्विश्वाभिरूतिभिः ॥१२

अस्मभ्यं ताँ अपा वृधि व्रजाँ अस्तेव गोमतः ।
नवाभिरिन्द्रोतिभिः ॥१३
अस्माकं धृष्णुया रथो द्युमाँ इन्द्रानपच्युतः । गव्युरश्वयुरीयते ॥१४
अस्माकमुत्तमं कृधि श्रवो देवेषु सूर्य । वर्षिष्ठं द्यामिवोपरि ॥१५ ।२६

हे इन्द्र ! हम यजमानों को इस यज्ञ में मित्र रूप, कभी नष्ट न होने वाला तथा प्रकाश से युक्त धन का अधिकारी बनाओ ॥ ११ ॥ हे इन्द्र ! तुम नित्यप्रति अपने महान् धन द्वारा हमारी रक्षा करो। तुम अपने सभी रक्षा-साधनों से हमारी रक्षा करो ॥ १२ ॥ हे इन्द्र ! वीर के समान अपने नवीन रक्षा-साधन द्वारा हमारे लिए और गौओं के निवास स्थान को पुष्ट करो ॥१३॥ हे इन्द्र ! तुम हमारे शत्रुओं को रगड़ने वाले, अत्यन्त तेजस्वी, अविनाशी, गौओं से युक्त, अश्वों वाले रथ में सब ओर जाने वाले हो। तुम उस रथ के सहित हमारी रक्षा करने वाले होओ ॥ १४ ॥ हे सूर्य तुम सबको प्रेरणा देने वाले हो। तुमने वर्षा करने में समर्थ आकाश को जैसे ऊपर स्थापित किया है वैसे ही देवताओं के मध्य हमारे यश को बढ़ाओ ॥ १५ ॥ [२६]

३२ सूक्त

(ऋषि— वामदेवः । देवता—इन्द्राश्वौ । छन्द—गायत्री)

आ तू न इन्द्र वृत्रहन्नस्माक मर्धमा गहि । महान्महीभिरूतिभिः ॥१
भृमिश्चिद्घासि तूतुजिरा चित्र चित्रिणीष्वा । चित्रं कृणोष्यूतये ॥२
दभ्रेभिश्चिच्छशीयांसं हंसि व्राधन्तमोजसा । सखिभिर्ये त्वे सचा ॥३
वयमिन्द्र त्वे सचा वयं त्वाभि नोनुमः । अस्माँ अस्माँ इदुदव ॥४
स नश्चित्राभिरद्रिवोऽनवद्याभिरूतिभिः । अनाधृष्टाभिरागहि ॥५ ।२७

हे इन्द्र ! तुम शत्रुओं के हननकर्त्ता हो। तुम शीघ्र हमारे सामने आओ। तुम महान् हो। अपनी महान् रक्षाओं सहित हमारे निकट पधारो ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! तुम पूजा के योग्य हो। तुम भ्रमणशील हो। तुम हमको इच्छित फल प्रदान करते हो। अद्भुत कर्म वाली प्रजा को तुम पोषण के

निमित्त धन प्रदान करते हो ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! जो यजमान तुम्हारे अनुकूल होते हैं, उन थोड़े यजमानों को साथ लेकर तुम उच्छृंखल बढ़े हुए शत्रुओं को अपने महान् पराक्रम से नष्ट करते हो ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! हम यजमान तुम्हारे द्वारा सुसङ्गत हुए हैं। हम तुम्हारी अत्यन्त स्तुति करते हैं। तुम हमारा विशेष रूप से पालन करो ॥ ४ ॥ हे वज्रिन् ! आनन्दित अद्भुत शत्रुओं द्वारा पराजित न होने वाले, तुम अपनी समृद्ध रक्षाओं सहित हमारे पास आओ ॥५॥ [२७]

भूयामो षु त्वावतः सखाय इन्द्र गोमतः। युजो वाजाय घृष्वये ॥६
त्वं ह्येक ईशिष इन्द्र वाजस्य गोमतः। स नो यन्धि महीमिषम् ॥७
न त्वा वरन्ते अन्यथा यद्दित्ससि स्तुतो मघम्।
स्तोतृभ्य इन्द्र गिर्वणः ॥८
अभि त्वा गोतमा गिरानूषत प्र दावने। इन्द्र वाजाय घृष्वये ॥९
प्र ते वोचाम वीर्या या मन्दसान आरुजः। पुरो दासीरभीत्य ॥१० ॥२८

हे इन्द्र ! हम तुम्हारे समान गो युक्त पुरुष के सहयोगी हैं। हम श्रेष्ठ धन के निमित्त तुम्हारी सहायता चाहते हैं ॥ ६ ॥ हे इन्द्र हम अकेले ही गौ, घोड़े आदि के स्वामी हैं। हमको बहुत सा अन्नादि धन प्रदान करो ॥ ७ ॥ हे इन्द्र ! तुम स्तुति के पात्र हो। स्तुति करने वालों को धन देने की इच्छा करते हो, तब तुम्हारे उस दान को रोकने की सामर्थ्य नहीं है ॥ ८ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारे उद्देश्य से गौतम वंशज ऋषि धन और अन्न के निमित्त स्तोत्र द्वारा तुम्हारा स्तवन करते हैं ॥९॥ हे इन्द्र ! तुम सोम पीकर पराक्रमी हुए "क्षेपक" राक्षसों के सब नगरों में जाकर उन्हें ध्वंस करते हो। हम स्तुति करने वाले तुम्हारे उसी पराक्रम का बखान करते हैं ॥ १० ॥ [२८]

ता ते गृणन्ति वेधसो यानि चकर्थ पौंस्या। सुतेष्विन्द्र गिर्वणः ॥११
अभीवृधन्त गोतमा इन्द्र त्वे स्तोमवाहसः। ऐषु धा वीरवद्यशः ॥१२
यच्चिद्धि शश्वतामसीन्द्र साधारणस्त्वम्। तं त्वा वयं हवामहे ॥१३
अर्वाचीनो वसो भवास्मे सु मत्स्वान्धसः। सोमानामिन्द्र सोमपाः ॥१४
अस्माकं त्वा मतीनामा स्तोम इन्द्र यच्छतु। अर्वागा वर्तया हरी ॥१५

पुरोळाशं च नो घसो जोषयासे गिरश्च नः।
वधूयुरिव योषणाम् ॥१६।२६

हे इन्द्र ! तुम स्तुति के पात्र हो। तुम जिन बलों को प्रकट करते हो तुम्हारे उन्हीं बलों का मेधावी जन सोम के सिद्ध होने पर गान करते हैं॥ ११ ॥ हे इन्द्र स्तोत्रों को वहन करने वाले गौतम वंशज स्तोत्र से तुम्हें बढ़ाते हैं तुम उन्हें पुत्रादि से युक्त अन्न दो ॥ १२ ॥ हे इन्द्र तुम सब यजमानों के प्रसिद्ध देवता हो। हम स्तुति करने वाले तुम्हें बुलाते हैं॥ १३ ॥ हे इन्द्र ! तुम उत्तम निवास देते हो। तुम हम यजमानों के सामने आओ। हे सोम-पान करने वाले इन्द्र ! तुम सोम-रूप अन्न से पुष्टि को प्राप्त होओ ॥१४॥ हे इन्द्र ! हम तुम्हारी स्तुति करने वाले हैं। हमारा स्तोत्र तुम्हें हमारे पास लावे। तुम अपने दोनो घोड़ों को हमारे सामने जोड़ो ॥ १५ ॥ हे इन्द्र ! तुम हमारे पुरोडाश को खाओ। जैसे पुरुष स्त्रियों के वचनों को सुनता है, उसी प्रकार तुम हमारे वचनों को ध्यान से सुनो ॥ १६ ॥ [२६]

सहस्रं व्यतीनां युक्तानामिन्द्रमीमहे। शतं सोमस्य खार्यः ॥१७
सहस्रा ते शता वयं गवामा च्यावयामसि। अस्मत्रा राध एतु ते ॥१८
दश ते कलशानां हिरण्यानामधीमहि। भूरिदा असि वृत्रहन् ॥१९
भूरिदा भूरि देहि नो मा दभ्रं भूर्या भर। भूरि घेदिन्द्र दित्ससि ॥२०
भूरिदा ह्यसि श्रुतः पुरुत्रा शूर वृत्रहन्। आ नो भजस्व राधसि ॥२१
प्र ते बभ्रू विचक्षण शंसामि गोषणो नपात्।
माभ्यां गा अनु शिश्रथः ॥२२
कनीनकेव विद्रधे नवे द्रुपदे अर्भके। बभ्रू यामेषु शोभेते ॥ २३
अरं म उस्रयाम्णेऽरमनुस्रयाम्णे बभ्रू यामेष्वस्रिधा ॥२४।३०

हम स्तुति करने वाले इन्द्र के समीप सीखे हुए, शीघ्र चलने वाले सहस्रों घोड़ों को माँगते हैं और सैकड़ों सोम कलशों की याचना करते हैं॥ १७ ॥ हे इन्द्र ! हम तुम्हारी सैकड़ों अथवा हजारों गौओं को अपने सामने प्राप्त करें, हमारा धन तुम्हारे पास से यहाँ आवे ॥ १८ ॥ हे इन्द्र !

हम तुम्हारे द्वारा दस कलशों में सुवर्ण धारण करें। हे वृत्र के हननकर्त्ता इन्द्र ! तुम अपरिमित दान करने वाले हो ॥ १९ ॥ हे इंद्र ! तुम बहुत सा धन देने की इच्छा करते हो। तुम बहुत धन के दाता हो। अत्यन्त धन दो। स्वल्प धन मत दो। बहुत-बहुत ऐश्वर्य प्रदान करो ॥ २० ॥ हे वृत्र के हनन करने वाले वीर इंद्र ! तुम बहुत देने वाले के रूप में यजमानों में प्रसिद्ध हो। तुम हमको धन का अधिकारी बनाओ ॥ २१ ॥ हे इंद्र ! हम तुम्हारे लाल रङ्ग वाले दोनों घोड़ों की स्तुति करते हैं। तुम गौओं के देने वाले हो। तुम स्तुति करने वालों का नष्ट नहीं करते। तुम अपने दोनों अश्वों द्वारा हमारी गौओं को पीड़ित न करना ॥२२॥ हे इंद्र ! जाने योग्य मार्ग में जैसे लाल रङ्ग के दो अश्व, शोभा पाते हैं, उसी प्रकार दृढ़ नवीन खूंटे के समान कर्मों में स्थिर स्त्री-पुरुष-रूप यजमान सुशोभित होते हैं ॥२३॥ हे इंद्र ! जब हम बैलों से जुते रथ में बैठ कर चलें अथवा पदयात्रा करें, तब तुम्हारे हिंसा रहित लाल वर्ण वाले दोनों घोड़े हमारे लिए कल्याणकारी हों ॥ २४ ॥

३३ सूक्त [चौथा अनुवाक]

(ऋषि—वामदेवः । देवता—ऋभव । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्तिः ।)

प्र ऋभुभ्यो दूतमिव वाचमिष्य उपस्तिरे श्वैतरीं धेनुमीळे ।
ये वातजूतास्तरणिभिरेवैः परि द्यां सद्यो अपसो बभूवुः ॥१
यदारमक्रन्नृभवः पितृभ्यां परिविष्टी वेषणा दंसनाभिः ।
आदिद्देवानामुप सख्यमायन्धीरासः पुष्टिमवहन्मनायै ॥२
पुनर्ये चक्रुः पितरा युवाना सना यूपेव जरणा शयाना ।
ते वाजो विभ्वाँ ऋभुरिन्द्रवन्तो मधुप्सरसो नोऽवन्तु यज्ञम् ॥३
यत्संवत्समृभवो गामरक्षन्यत्संवत्समृभवो मा अपिंशन् ।
यत्संवत्समभरन्भासो अस्यास्ताभिः शमीभिरमृतत्वमाशुः ॥४
ज्येष्ठ आह चमसा द्वा करेति कनीयान्त्रीन्कृणवामेत्याह ।

कनिष्ठ आह चतुरस्करेति त्वष्ट ऋभवस्तत्पनयद्वचो वः ॥५ ॥१

हम यजमान ऋभुगण के निमित्त दूत के समान स्तुति रूप वाणी को प्रेरित करते हैं। हम उनके समीप सोम उपस्थित करने के लिए दूध वाली गाय की याचना करते हैं। ऋभुगण वायु के समान चलने वाले हैं तथा संसार का उपकार करने वाले कर्मों को करते हैं। वे अपने वेगवान् अश्वों से क्षण भर में अन्तरिक्ष को व्याप्त करते हैं ॥ १ ॥ जब ऋभुगण ने अपने माता-पिता को युवावस्था दी और चमस बनाने आदि कार्यों को करते हुए यशवान् हुए तब उसी समय उनकी मित्रता इन्द्रादि देवताओं के साथ हो गई। वे मनस्वी और धैर्यवान् हैं तथा यजमानों के निमित्त बल धारण करते हैं ॥ २ ॥ ऋभुओं ने यूप रूप काष्ठ के समान जीर्ण और लुढ़के पड़ते हुए माता-पिता को तरुणता दी। वे बलवान् विभु और ऋभु इंद्र के साथ सोम पीते हुए हमारे यज्ञ के रक्षक हों ॥ ३ ॥ ऋभुगण ने एक वर्ष तक मरी हुई धेनु की सेवा की। उन्होंने उस मृत गाय के देह को अवयवों से सम्पन्न किया और वर्ष भर उसकी रक्षा की। अपने इन कार्यों से वे देवत्व को प्राप्त कर सके ॥ ४ ॥ बड़े ऋभु ने एक चमस को दो करने की इच्छा प्रकट की। बीच के ऋभु ने तीन करने की और छोटे ऋभु ने चार करने को कहा। हे ऋभुगण! तुम्हारे गुरु त्वष्टा ने तुम्हारे इस 'चार करने' वाली बात को स्वीकार कर लिया ॥ ५ ॥   [१]

सत्यमूचुर्नर एवा हि चक्रुरनु स्वधामृभवो जग्मुरेताम् ।
विभ्राजमानांश्चमसाँ अहेवावेनत्त्वष्टा चतुरो ददृश्वान् ॥६
द्वादश द्यून्यदगोह्यस्यातिथ्ये रणन्नृभवः ससन्तः ।
सुक्षेत्राकृण्वन्ननयन्त सिन्धून्धन्वातिष्ठन्नोषधीर्निम्नमापः ॥७
रथं ये चक्रुः सुवृतं नरेष्ठां ये धेनुं विश्वजुवं विश्वरूपाम् ।
त आ तक्षन्त्वृभवो रयिं नः स्ववसः स्वपसः सुहस्ताः ॥८
अपो ह्येषामजुषन्त देवा अभि क्रत्वा मनसा दीध्यानाः ।
वाजो देवानामभवत्सुकर्मेन्द्रस्य ऋभुक्षा वरुणस्य विभ्वा ॥९

ये हरी मेधयोक्था मदन्त इन्द्राय चक्रः सुयुजा ये अश्वा ।
ते रायस्पोषं द्रविणान्यस्मे धत्त ऋभवः क्षेमयन्तो न मित्रम् ॥१०
इदाह्नः पीतिमुत वो मदं धुर्न ऋते श्रान्तस्य सख्याय देवाः ।
ते नूनमस्मे ऋभवो वसूनि तृतीये अस्मिन्त्सवने दधात ॥ ११ ।२

उड मनुष्य रूप वाले ऋभुओं ने जो कहा वही किया। उनका कथन सत्य हुआ। फिर वे ऋभुगण तीसरे सवन में स्वधा के अधिकारी हुए। दिन के समान प्रकाशमान् चार चमसों को देखकर त्वष्टा ने उसकी इच्छा करते हुए ग्रहण किया ॥ ६ ॥ प्रत्यक्ष प्रकाशमान् सूर्य के लोक में जब वे ऋभुगण आर्द्रा से वर्षाकारक बारह नक्षत्रों तक अतिथि रूप में रहते हैं, तब वे वर्षा द्वारा कृषि को धान्य पूर्ण करते और नदियों को प्रवाहमान बनाते हैं। जल से रहित स्थान में औषधियाँ उत्पन्न होती और निचले स्थानों में जल भरा रहता है ॥ ७ ॥ जिन्होंने सुन्दर पहिए और पहिये वाले रथ को बनाया था जिन्होंने संसार को प्रेरणा देने वाली तथा अनेक रूपणि गौ को प्रकट किया था, वे उत्तम कर्म वाले, सुन्दर, अन्नवान् और सिद्धहस्त ऋभुगण हमारे धन का सम्पादन करें ॥ ८ ॥ इन्द्रादि देवताओं ने वर देने जैसे कर्म द्वारा तथा प्रसन्न मन से तेजस्वी होकर ऋभुगण के घोड़े, रथ आदि निर्माण कार्य को स्वीकार किया। उत्तम कर्म वाले छोटे ऋभु 'वाज' सब देवताओं से सम्बन्धित हुए, मध्यम ऋभु वरुण से तथा बड़े ऋभु इन्द्र से सम्बन्धित हुए ॥ ९ ॥ जिन ऋभुओं ने दो घोड़ों को बुद्धि और प्रशंसा द्वारा पुष्ट किया, जिन ऋभुओं ने उन दोनों घोड़ों को इन्द्र के रथ में जुतने योग्य किया, वे ऋभुगण हमारे निमित्त कल्याणकारी मित्र के समान धन, बल, गवादि और समस्त सुख प्रदान करें ॥ १० ॥ चमस आदि के बनाने के पश्चात् देवताओं ने तीसरे सवन में तुम्हारे लिये सोम-पान से उत्पन्न हर्ष प्रदान किया था। देवगण तपस्वी के सिवाय किसी अन्य के मित्र नहीं बनते। हे ऋभुओ ! इस तीसरे सवन में तुम हमारे लिए अवश्य ही धन दो ॥ ११ ॥ [२]

३४ सूक्त

(ऋषि—वामदेवः। देवता-ऋभवः। छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्ति)

ऋभुर्विभ्वा वाज इन्द्रो नो अच्छेमं यज्ञं रत्नधेयोप यात ।

इदा हि वो धिषणा देव्यह्नामधात्पीतिं सं मदा अग्मता वः ॥१
विदानासो जन्मनो वाजरत्ना उत ऋतुभिर्ऋभवो मादयध्वम्।
सं वो मदा अग्मत सं पुरन्धिः सुवीरामस्मे रयिमेरयध्वम् ॥२
अयं वो यज्ञ ऋभवोऽकारि यमा मनुष्वत्प्रदिवो दधिध्वे।
प्र वोऽच्छा जुजुषाणासो अस्थुरभूत विश्वे अग्रियोत वाजाः ॥३
अभूदु वो विधते रत्नधेयमिदा नरो दाशुषे मर्त्याय।
पिबत वाजा ऋभवो ददे वो महि तृतीयं सवनं मदाय ॥४
आ वाजा यातोप न ऋभुक्षा महो नरो द्रविणसो गृणानाः।
आ वः पीतयोऽभिपित्वे अह्नामिमा अस्तं नवस्व इव ग्मन् ॥५।३

हे ऋभु, विभु, वाज और इन्द्र ! धन-दान के लिये हमारे इस यज्ञ में पधारो, अभी दिवस में वाणी रूप स्तुति तुम्हारे निमित्त सोम सिद्ध करने सम्बन्धी प्रीति देती है। सोम से उत्पन्न हर्ष तुम्हारे साथ सुसङ्गत हो ॥ १ ॥ हे ऋभुओ ! तुम अन्न द्वारा सुशोभित हो। पूर्व में तुम मनुष्य थे, अब तुम देवता हो गए हो। इस बात को ध्यान रखते हुए देवताओं के साथ पुष्टि को प्राप्त होओ। हर्षकारी सोम और स्तोत्र तुम्हारे निमित्त सुसंगत हुए हैं। तुम हमारे लिये पुत्र-पौत्रादि से युक्त धन भेजो ॥ २ ॥ हे ऋभुगण ! यह यज्ञ तुम्हारे निमित्त किया गया है। तुम इसे मनुष्य के समान दीप्तिवान् होकर ग्रहण करो। सेवाकारी सोम तुम्हारे समीप उपस्थित है। तुम हमारे मुख्य साध्य हो ॥ ३ ॥ हे अग्रगण्य ऋभुओ ! हविदाता यजमान के लिये इस तीसरे सवन में तुम्हारी कृपा से दान-योग्य रत्न प्राप्त हों। हम तुम्हारे निमित्त पुष्टिप्रदायक सोम प्रदान करते हैं, तुम उसका पान करो ॥ ४ ॥ हे नेतृ-श्रेष्ठ ऋभुगण ! महान् ऐश्वर्य की प्रशंसा करते हुए तुम हमारे समीप आओ। दिन की समाप्ति में जैसे नवप्रसूता गौएँ अपने स्थान को लौटती हैं, उसी प्रकार यह सोमरस तुम्हारे पीने के निमित्त तुम्हारी ओर आता है ॥५॥ [३]

आ नपातः शवसो यातनोपेमं यज्ञं नमसा हूयमानाः।
सजोषसः सूरयो यस्य च स्थ मध्वः पात रत्नधा इन्द्रवन्तः ॥६

सजोषा इन्द्र वरुणेन सोमं सजोषाः पाहि गिर्वणो मरुद्भिः ।
अग्रेपाभिर्ऋतुपाभिः सजोषा ग्नास्पत्नीभी रत्नधाभिः सजोषाः ॥७
सजोषस आदित्यैर्मादयध्वं सजोषस ऋभवः पर्वतेभिः ।
सजोषसो दैव्येना सवित्रा सजोषसः सिन्धुभी रत्नधेभिः ॥८
ये अश्विना ये पितरा य ऊती धेनुं ततक्षुर्ऋभवो ये अश्वा ।
ये अंसत्रा य ऋधग्रोदसी ये विभ्वो नरः स्वपत्यानि चक्रुः ॥९
ये गोमन्तं वाजवन्तं सुवीरं रयिं धत्थ वसुमन्तं पुरुक्षुम् ।
ते अग्रेपा ऋभवो मन्दसाना अस्मे धत्त ये च रातिं गृणन्ति ॥१०
नापाभूत न वोऽतीतृषामानिःशस्ता ऋभवो यज्ञे अस्मिन् ।
समिन्द्रेण मदथ सं मरुद्भिः सं राजभी रत्नधेयाय देवाः ॥११॥४

हे बल से युक्त ऋभुओ ! स्तोत्र द्वारा बुलाये जाने पर तुम इस यज्ञ में आओ। तुम इन्द्र के सखा रूप एवं बुद्धिमान् हो, क्योंकि तुम इन्द्र के सम्बन्धी हो। तुम मधुर सोमरस को इन्द्र के साथ पीते हुए रत्नादि धन प्रदान करो ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! वरुण के साथ सम्यक् प्रीतिवान् होकर सोम-पान करो। तुम स्तुति के पात्र हो। मरुद्गण के साथ मिलकर तुम सोम को पिओ। प्रथम पीने वाले ऋतुओं, देवांगनाओं तथा रत्नदात्री सामर्थ्य के साथ सोम-पान करो ॥ ७ ॥ हे ऋभुओ ! आदित्यों के साथ मिल कर हर्ष को प्राप्त होओ। उपासनीय देवों के साथ मिलकर हर्ष प्राप्त करो। सविता देव के साथ सुसंगत होकर हर्ष को प्राप्त करो। पर्वतों के समान अचल एवं रत्न-दाता देवताओं के साथ मिलकर हृष्ट-पुष्ट होओ ॥ ८ ॥ जिन्होंने अश्विनी-कुमारों को रथ बनाने आदि कार्यों से अपने प्रति स्नेही बनाया, जिन्होंने जीर्ण माता-पिता को तारुण्यता दी, जिन्होंने गौ और अश्व को बनाया, जिन्होंने देवताओं के लिए अंसत्रा कवच बनाया, जिन्होंने आकाश पृथ्वी को प्रथक् किया, जिन्होंने सुन्दर सन्तान उत्पन्न करने वाला कार्य किया और जो सबके नेता रूप हैं, वे ऋभु प्रथम सोम-पान करने वाले हैं ॥ ९ ॥ जो गौ, अन्न, सन्तान तथा निवास योग्य गृहादि धनों से युक्त हैं, जो बहुत अन्न वाले धनों के पालक हैं, जो धनों की प्रशंसा करने वाले हैं, वे ऋभुगण प्रथम सोम-पान

द्वारा हृष्ट होकर हमको धनैश्वर्य दें ॥ १० ॥ हे ऋभुगण ! हमसे दूर मत जाना । हम तुमको अधिक समय तृषित नहीं रहने देंगे । तुम सुन्दर धन देने के निमित्त इन्द्र के साथ इस यज्ञ में हर्ष को प्राप्त होओ । मरुद्गण तथा अन्य तेजस्वी देवताओं के साथ पुष्ट होओ ॥११॥ [४]

३५ सूक्त

(ऋषि—वामदेवः । देवता—ऋभवः । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

इहोप यात शवसो नपातः सौधन्वना ऋभवो माप भूत ।
अस्मिन्हि वः सवने रत्नधेयं गमन्त्विन्द्रमनु वो मदासः ॥१
आगन्नृभूणामिह रत्नधेयमभूत्सोमस्य सुषुतस्य पीतिः ।
सुकृत्यया यत्स्वपस्यया चँ एकं विचक्र चमसं चतुर्धा ॥२
व्यकृणोत चमसं चतुर्धा सखे वि शिक्षेत्यब्रवीत ।
अथैत वाजा अमृतस्य पन्थां गणं देवानामृभवः सुहस्ताः ॥३
किमयः स्विच्चमस एष आस यं काव्येन चतुरो विचक्र ।
अथा सुनुध्वं मदाय पात ऋभवो मधुनः सोमस्य ॥४
शच्याकर्त पितरा युवाना शच्याकर्त्त चमसं देवपानम् ।
शच्या हरी धनुतरावतष्टेन्द्रवाहावृभवो वाजरत्नाः ॥५।५

हे "सुधन्वा" के बलवान पुत्रो ! हे ऋभुओ ! इस तृतीय सवन में यहाँ आओ, कहीं अन्यत्र गमन मत करो । हृष्टिकारक सोम इस सवन में, रत्नदान करने वाले इन्द्र के पश्चात् तुम्हारे निकट पहुंचे ॥ १ ॥ ऋभुओं द्वारा दिये जाने वाले रत्नों का दान इस तीसरे सवन में मेरे पास आवे । हे ऋभुगण तुमने अपनी हस्तकला द्वारा ही एक चमस के चार बना दिये थे और सुसिद्ध सोम का पान किया था ॥ २ ॥ हे ऋभुगण ! तुमने एक चमस के चार करते हुए कहा था—'हे मित्र रूप अग्ने ! कृपा करो ।' तब अग्नि ने उत्तर दिया था—'हे ऋभुओ ! तुम हस्त-व्यापार में कुशल हो । तुम अमरत्व प्राप्ति के मार्ग पर जाओ ॥ ३ ॥ जिस चमस के चतुरता पूर्वक चार बनाये गये, वह चमस कैसा था ? हे ऋत्विको ! आनन्द के निमित्त सोम को सिद्ध

श्रेष्ठं वः पेशो अधि धायि दर्शतं स्तोमो वाजा ऋभवस्तं जुजुष्टन ।
धीरासो हि ष्ठा कवयो विपश्चितस्तान्व एना ब्रह्मणा वेदयामसि ॥७
यूयमस्मभ्यं धिषणाभ्यस्परि विद्वांसो विश्वा नर्याणि भोजना ।
द्युमन्तं वाजं वृषशुष्ममुत्तममा नो रयिमृभवस्तक्षता वयः ॥८
इह प्रजामिह रयिं रराणा इह श्रवो वीरवत्तक्षता नः ।
येन वयं चितयेमात्यन्यान्तं वाजं चित्रमृभवो ददा नः ॥९ ।८

जिस व्यक्ति की ऋभुगण रक्षा करते हैं, वह व्यक्ति पराक्रमी एवं युद्ध कौशल में चतुर होता है। वह ऋषि होता हुआ स्तुतियों से सम्पन्न होता है। वह वीर शत्रुओं को हटाकर संग्राम में ऊँचा उठता है तथा धनवान्, संतानवान् और बलवान् होता है ॥ ६ ॥ हे ऋभुओ ! तुम अत्यन्त उत्कृष्ट और दर्शन के योग्य स्वरूप वाले हो। हमने यह सुन्दर स्तोत्र तुम्हारे लिए ही रचा है। तुम इसे ग्रहण करो। तुम मेधावी, ज्ञानी और कवि हो। स्तोत्र द्वारा हम तुम्हारी प्रार्थना करते हैं ॥ ७ ॥ हे ऋभुओ ! हमारी स्तुति के निमित्त मनुष्यों का हित करने वाली सब भोग्य सामग्री को तुम ग्रहण करो और हमारे निमित्त अत्यन्त तेजस्वी तथा बल उत्पन्न करने वाला, शत्रुओं का शोषण करने वाला अन्न-धन प्राप्त कराओ ॥ ८ ॥ हे ऋभुगण ! तुम हमारे यज्ञ में प्रीतिवान् होकर पुत्र-पुत्रादि तथा धन, भृत्यादि से युक्त यश प्राप्त कराओ। हम जिस धन से दूसरों पर विजय पा सकें, वह सुन्दर धन हमको प्रदान करो ॥ ९ ॥ [८]

३७ सूक्त

(ऋषि—वामदेवः। देवता—ऋभवः। छन्द—त्रिष्टुप्। पंक्तिः, अनुष्टुप्)

उप नो वाजा अध्वरमृभुक्षा देवा यात पथिभिर्देवयानैः ।
यथा यज्ञं मनुषो विक्ष्वा सु दधिध्वे रण्वाः सुदिनेष्वह्नाम् ॥१
ते वो हृदे मनसे सन्तु यज्ञा जुष्टासो अद्य घृतनिर्णिजो गुः ।
प्र वः सुतासो हरयन्त पूर्णाः क्रत्वे दक्षाय हर्षयन्त पीताः ॥२

ऋयुदायं देवहितं यथा वः स्तोमो वाजा ऋभुक्षणो ददे वः ।
जुह्वे तनुष्वदुपरासु विक्षु युष्मे सचा बृहद्दिवेषु सोमम् ॥३
पीवो अश्वाः शुचद्रथा हि भूतायः शिप्रा वाजिनः सुनिष्काः ।
इन्द्रस्य सूनो शवसो नपातोऽनु नश्चेत्यग्रियं मदाय ॥४
ऋभुमृभुक्षणो रयिं वाजे वाजिन्तमं युजम् ।
इन्द्रस्वन्तं हवामहे सदासातममश्विनम् ॥५ ॥६

हे ऋभुगण ! तुम जैसे दिनों को श्रेष्ठ दिन बनाने के लिए मनुष्यों के यज्ञ का पालन करते हो वैसे ही तुम देवताओं के श्रेष्ठ मार्ग से हमारे यज्ञ में आओ ॥ १ ॥ आज सब यज्ञ तुम्हारे अन्तःकरण को स्नेह प्रदान करें। घृत मिश्रित सोम रस पर्याप्त मात्रा में तुम्हारे हृदय में प्रवेश करे। चमस में रखा हुआ सोम तुम्हारी इच्छा करता है, वह स्नेहमय होकर तुम्हें उत्तम कर्मों की प्रेरणा दे ॥ २ ॥ हे ऋभुओ ! जो व्यक्ति तीनों सवनों में तुम्हारे निमित्त देवताओं का हित करने वाले सोम को धारण करते हैं, उनमें हम अत्यन्त मनस्वी हुए तुम्हारे लिए सोम रस देते हैं ॥ ३ ॥ हे ऋभुओ ! तुम्हारे घोड़े हृष्ट-पुष्ट हैं, तुम्हारे रथ दैदीप्यमान हैं। तुम्हारी ठोड़ी लोहे के समान दृढ़ है। तुम अन्नों के स्वामी तथा उत्तम दान वाले हो। हे बलवानो ! तुम्हारी पुष्टि के निमित्त हम इस प्रथम सवन में अनुष्ठान करते हैं ॥ ४ ॥ हे ऋभुओ ! हम महान् बढ़े हुए धन की याचना करते हैं। युद्धकाल उपस्थित होने पर अत्यन्त शक्तिशाली रक्षक को बुलाते हैं तथा सदा दानशील, अश्वों के स्वामी तुम्हारे गणों को हम बुलाते हैं ॥ ५ ॥ [६]

सेदृभवो यमवथ यूयमिन्द्रश्च मर्त्यम् ।
स धीभिरस्तु सनिता मेधसाता सो अर्वता ॥६
वि नो वाजा ऋभुक्षणः पथश्चितन यष्टवे ।
अस्मभ्यं सूरयः स्तुता विश्वा आशास्तरीषणि ॥७
तं नो वाजा ऋभुक्षण इन्द्र नासत्या रयिम् ।
समश्वं चर्षणिभ्य आ पुरु शस्त मघत्तये ॥८ ॥१०

हे ऋभुओ ! तुम और इन्द्र जिसके रक्षक होते हो, वह मनुष्य सबमें श्रेष्ठ होता है। वह अपने कार्य द्वारा धन-भाग प्राप्त करे तथा यज्ञ में घोड़े से युक्त हो ॥ ६ ॥ हे ऋभुओ ! हमको यज्ञ-मार्गगामी बनाओ । तुम मेधावी हो। तुम पूजित होकर हमारे लिए सब दिशाओं में सफल होने की सामर्थ्य बांटने वाले होओ ॥ ७ ॥ हे ऋभुओ ! हे इन्द्र ! हे अश्विनीकुमारो ! हम स्तोताओं को तुम धन-दान के निमित्त श्रेष्ठ धन और घोड़ों के दान की प्रेरणा करो ॥ ८ ॥ [१०]

३८ सूक्त

(ऋषि—वामदेवः । देवता—द्यावापृथिव्यौ, दधिक्राः । छन्द—पंक्तिः त्रिष्टुप्,)

उतो हि वां दात्रा सन्ति पूर्वा या पूरुभ्यस्त्रसदस्युर्नितोशे ।
क्षेत्रासां ददथुरुर्वरासां घनं दस्युभ्यो अभिभूतिमुग्रम् ॥१
उत वाजिनं पुरुनिष्षिध्वानं दधिक्रामु ददथुर्विश्वकृष्टिम् ।
ऋजिप्यं श्येनं प्रुषितप्सुमाशुं चर्कृत्यमर्यो नृपतिं न शूरम् ॥
यं सीमनु प्रवतेव द्रवन्तं विश्वः पूरुर्मदति हर्षमाणः ।
पड्भिर्गृध्यन्तं मेधयुं न शूरं रथतुरं वातमिव ध्रजन्तम् ॥३
यः स्मारुन्धानो गध्या समत्सु सनुतरश्चरति गोषु गच्छन् ।
आविर्ऋजीको विदथा निचिक्यत्तिरो अरतिं पर्याप आयोः ॥४
उत स्मैनं वस्त्रमथिं न तायुमनु क्रोशन्ति क्षितयो भरेषु ।
नीचायमानं जसुरिं न श्येनं श्रवश्चाच्छा पशुमच्च यूथम् ॥५ ।११

हे आकाश पृथिवी, "त्रसदस्यु" नामक दानी राजा ने तुमसे बहुत धन पाकर मांगने वालों को दिया ! तुमने उनको घोड़ा और पुत्र प्रदान किया था तथा राक्षसों का संहार करने के लिए विपक्षियों को हराने वाला तीक्ष्ण अस्त्र दिया था ॥ १ ॥ अनेक शत्रुओं को रोकने वाले, सभी मनुष्यों की रक्षा करने वाले, सुन्दर चाल वाले, विशेष प्रकाश वाले, द्रुतगामी, पराक्रमी भूमिपति के समान शत्रुओं का नाश करने वाले दधिक्रादेव (अश्व-रूप अग्नि) को तुम दोनों धारण करने वाली हो ॥ २ ॥ सब मनुष्य प्रसन्न होकर जिस

पूजा करते हैं, वे नीचे जाने वाले के समान गमन करते हैं, न पैरों से दिशाओं को उलांघने वाले, रथ में चलने वाले तथा न शीघ्र चाल वाले हैं ॥ ३ ॥ जो युद्ध में एकत्र हुए पदार्थों को व दिशाओं में जाते हुए वेग से चलते हैं, जिनकी शक्ति साथ रहती है वे जानने योग्य कर्मों के ज्ञाता स्तोता यजमानों को यशस्वी नहीं होने देते ॥ ४ ॥ जैसे लोग वस्त्र चुराने वाले को : चिल्लाते हैं, वैसे ही युद्ध-भूमि में दधिक्राव को देखकर शत्रुगण जैसे नीचे की ओर आते हुए भूखे बाज को देखकर पक्षी भागते ही मनुष्य अन्न और पशुओं के निमित्त जाते हुए दधिक्रा देव को भागते हैं ॥५॥ [१६]

; प्रथमः सरिष्यन्नि वेवेति श्रेणिभी रथानाम् ।
नो जन्यो न शुभ्वा रेणुं रेरिहत्किरणं ददश्वान् ॥६
जी सहुरिऋतावा शुश्रूषमाणस्तन्वा समर्ये ।
ु तुरयन्नृजिष्योऽधि भ्रुवोः किरते रेणुमृञ्जन् ॥७
य तन्यतोरिव द्योर्ऋघायतो अभियुजो भयन्ते ।
मभि योधीद्र्दतुः स्मा भवति भीम ऋञ्जन् ॥८
य पनयन्ति जना जूतिं कृष्टिप्रो अभिभूतिमाशोः ।
: समिथे चियन्तः परा दधिक्रा असरत्सहस्रैः ॥९
ः शवसा पंच कृष्टीः सूर्यइव ज्योतिषापस्ततान ।
शतसा वाज्यर्वा पृणक्तु मध्वा समिमा वचांसि ॥१०॥२

राक्षस-सेनाओं में जाने की इच्छा से रथों की पंक्ति के समान गमन वे सुशोभित हैं और मनुष्यों का हित करने वाले घोड़े के समान है। वे मुख में पड़ी लगाम को चबाते और पाँव से उड़ती हुई टते हैं ॥ ६ ॥ इस प्रकार वह घोड़ा अन्नवान्, सहनशील और ारा युद्ध कार्य को सिद्ध करता है। वह वेग से चलने वाला शत्रुओं में वेग से दौड़ता है। वह मुख को पाँव से उठाकर अपनी भौंहे

में धारण करता है ॥ ७ ॥ युद्ध की कामना करने वाले व्यक्ति निनाद वाले उज्ज्वल वज्र के समान घातक दधिक्रा से डरते हैं। जब वे सब प्रहार करते हैं, तब वे महापराक्रमी हो जाते हैं। उस समय उन्हें कोई नहीं सकता ॥ ८ ॥ मनुष्यों की इच्छा पूर्ण करने वाले, अत्यन्त वेग से दधिक्रादेव के विजयोल्लास युक्त वेग की स्तोता स्तुति करते हुए कहते हैं 'शत्रु हारेंगे', दधिक्रादेव हजार संख्यक सैन्य बल के साथ युद्ध में जाते हैं सूर्य अपने तेज से जैसे जल-वृष्टि करते हैं वैसे ही दधिक्रादेव जल 'पञ्चकृष्टि' की वृद्धि करते हैं सैकड़ों तथा हजारों फलों के देने वाले द देव हमारे स्तुति रूप वचनों को मिष्ठ फल देते हुये सम्पादन करें ॥१०॥

[

३९ सूक्त

(ऋषि—वामदेवः । देवता—दधिक्राः । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्ति, अनुष्टुप

आशुं दधिक्रां तमु नु ष्टवाम दिवस्पृथिव्या उत चर्किराम ।
उच्छन्तीर्मामुषसः सूदयन्त्वति विश्वानि दुरितानि पर्षन् ॥१
महश्चर्कर्म्यर्वतः क्रतुप्रा दधिक्राव्णः पुरुवारस्य वृष्णः ।
यं पूरुभ्यो दीदिवांसं नाग्निं ददथुर्मित्रावरुणा ततुरिम् ॥२
यो अश्वस्य दधिक्राव्णो अकारीत्समिद्धे अग्ना उषसो व्युष्टौ ।
अनागसं तमदितिः कृणोतु स मित्रेण वरुणेना सजोषाः ॥३
दधिक्राव्ण इष ऊर्जो महो यदमन्महि मरुतां नाम भद्रम् ।
स्वस्तये वरुणं मित्रमग्निं हवामह इन्द्रं वज्रबाहुम् ॥४
इन्द्रमिवेदुभये वि ह्वयन्त उदीराणा यज्ञमुपप्रयन्तः ।
दधिक्रामु सूदनं मर्त्याय ददथुर्मित्रावरुणा नो अश्वम् ॥५
दधिक्राव्णो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः ।
सुरभि नो मुखा करत्प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥६

उन शीघ्रगामी दधिक्रादेव की हम मनुष्य शीघ्र ही पूजा करें आकाश पृथिवी के निकट से उनके सामने घास डालेंगे । अन्धकार को

करने वाली उषा हमारी रक्षिका हों और वह सभी सङ्कटों से हमको पार लगावें ॥ १ ॥ हम यज्ञ कार्य के सम्पादनकर्त्ता हैं। बहुतों द्वारा वरण किये जाने वाले, कामनाओं की वर्षा की करने वाले दधिक्रादेव का हम स्तवन करेंगे। हे मित्रा-वरुण ! तुम देदीप्यमान अग्नि के समान दुःखों से तारने वाले दधिक्रा को मनुष्यों के हितार्थ धारण करने वाले हो ॥२ ॥ जो यजमान उषा काल में अग्नि के प्रज्वलित होने पर अश्व रूप दधिक्रा का स्तवन करते हैं, उनको मित्र वरुण अदिति और दधिक्रा पापों से बचावें ॥ ३ ॥ अन्न का साधन करने वाले, बल सम्पादन करने वाले, स्तुति करने वालों का मङ्गल करने वाले महान् दधिक्रा देव का नाम संकीर्तन करते हैं। सुख प्राप्ति के निमित्त हम मित्र, वरुण, अग्नि और बाहु में वज्र धारण करने वाले इन्द्र को बुलाते हैं ॥ ४ ॥ जो युद्ध की तैयारी करते हैं, और जो यज्ञ-कर्म करते हैं, वह दोनों ही इन्द्र के समान दधिक्रादेव को बुलाते हैं। हे मित्रावरुण ! तुम मनुष्यों को प्रेरणा देने वाले, घोड़े के रूप वाले दधिक्रादेव को हमारे निमित्त धारण करो ॥ ५ ॥ विजय से युक्त, व्यापक और वेग वाले दधिक्रा का हम स्तवन करते हैं। वे हमारी नेत्रादि मुख इन्द्रियों को सुरभित करें और हमारी आयु को बढ़ावें ॥ ६ ॥ [१३]

४० सूक्त

(ऋषि—वामदेवः। देवता—दधिक्रावा, सूर्यः। छन्द—त्रिष्टुप्)

दधिक्राव्ण इदु नु चर्किराम विश्वा इन्मामुषसः सूदयन्तु ।
अपामग्नेरुषसः सूर्यस्य बृहस्पतेराङ्गिरसस्य जिष्णोः ॥१
सत्वा भरिषो गविषो दुवन्यसच्छ्रवस्यादिष उषसस्तुरण्यसत् ॥
सत्यो द्रवो द्रवरः पतङ्गरो दधिक्रावेषमूर्जं स्वर्जनत् ॥२
उत स्मास्य द्रवतस्तुरण्यतः पर्णं न वेरनु वाति प्रगर्धिनः ।
श्येनस्येव ध्रजतो अङ्कसं परि दधिक्राव्णः सहोर्जा तरित्रतः ॥३
उत स्य वाजी क्षिपणिं तुरण्यति ग्रीवायां बद्धो अपिकक्ष आसनि ।
क्रतुं दधिक्रा अनु संतवीत्वत्पथामङ्कांस्यन्वापनीफणत् ॥४
हंसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्ष सद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत् ।

नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतम् ॥५॥१४

उन दधिक्रादेव का हम बारम्बार पूजन करेंगे। सभी उषायें हमको कर्मों में लगावें। जल, अग्नि, उषा, सूर्य, बृहस्पति और अंगिरा-वंशज जिष्णु का हम स्तवन करेंगे ॥ १ ॥ भरण-पोषण कार्य, चतुर, गमनशील, गौओं का प्रेरणा देने वाले, परिचारकों के साथ रहने वाले दधिक्रा इच्छा करने योग्य उषा वेला में अन्न की कामना करें। वे वेगवान्, शीघ्र चलने वाले दधिक्रा अन्न, बल और दिव्य गुणों के प्रकट करने वाले हों ॥ २ ॥ जैसे सभी पक्षी, पक्षियों की परम्परागत चाल पर चलते हैं वैसे ही सब वेगवान् जीव शीघ्रता से युक्त एवं कामना वाले दधिक्रा की चाल पर चलते हैं। श्येन के समान शीघ्रगामी एव रक्षा करने वाले दधिक्रा के सब ओर एकत्र होकर सभी अन्न के निमित्त जाते हैं ॥ ३ ॥ यह देवता घोड़े के रूप वाले हैं। यह कण्ठ, कक्ष और मुख में बँधे हुए होते हैं और पैदल ही तेजी से चलते हैं। वे दधिक्रा अत्यन्त पराक्रमी होकर टेढ़े मार्गों को भी पार करते हुए यज्ञ के सामने मुख करके सब ओर जाते हैं ॥ ४ ॥ आदित्य आकाश में, वायु अन्तरिक्ष में और होता रूप यज्ञादि वेदी पर अवस्थित होते हैं, अतिथि के समान पूजनीय होकर घर में वास करते हैं। ऋतु मनुष्यों में वरणीय स्थान तथा यज्ञस्थल में रहते हैं। वे जल, रश्मि, सत्य और पर्वतों में उत्पन्न हुए हैं ॥५॥ [१४]

४१ सूक्त

(ऋषि—वामदेवः। देवता—इन्द्रावरुणौ। छन्द—त्रिष्टुप्, पङ्क्तिः)

इन्द्रा को वां वरुणा सुम्नमाप स्तोमो हविष्मां अमृतो न होता।
यो वां हृदि क्रतुमां अस्मदुक्तः पस्पर्शदिन्द्रावरुणा नमस्वान् ॥१
इन्द्रा ह यो वरुणा चक्र आपी देवौ मर्तः सख्याय प्रयस्वान्।
स हन्ति वृत्रा समिथेषु शत्रूनवोभिर्वा महद्भिः स प्र शृण्वे ॥
इन्द्रा ह रत्नं वरुणा धेष्ठेत्था नृभ्यः शशमानेभ्यस्ता।
यदी सखाया सख्याय सोमैः सुतेभिः सुप्रयसा मादयैते ॥३
इन्द्रा युवं वरुणा दिद्युमस्मिन्नोजिष्ठमुग्रा नि वधिष्टं वज्रम्।

यो नो दुरेवो वृकतिर्दभीतिस्तस्मिन्मिमाथामभिभूत्योजः ॥४
इन्द्रा युवं वरुणा भूतमस्या धियः प्रेतारा वृषभेव धेनोः ।
सा नो दुहीयद्यवसेव गत्वी सहस्रधारा पयसा मही गौः ॥५॥१५

हे इन्द्र ! हे वरुण ! अमरत्व प्राप्त होता ! अग्नि के समान, हवियुक्त कौनसा स्तोत्र तुम दोनों की कृपा प्राप्त कर सकता है ? वह स्तोत्र हमारे द्वारा अर्पित हुआ हवियों से युक्त होकर तुम दोनों के अन्तःकरण में घुस जाय ॥ १ ॥ हे इन्द्रावरुण ! तुम दोनों प्रसिद्ध हो। जो मनुष्य तुम्हारे निमित्त हविरन्न से युक्त बन्धुत्व प्रदर्शित करता है, वह मनुष्य पापों को नष्ट करने में समर्थ है। वह युद्ध में शत्रु का संहार करता है और विशाल रक्षा साधनों द्वारा प्रसिद्धि प्राप्त करता है ॥ २ ॥ हे प्रख्यात इन्द्र और वरुण ! तुम दोनों देवता हम स्तोताओं को सुन्दर धन प्रदान करने वाले बनो। यदि तुम यजमान के सखा रूप हो तो मित्र-भाव के निमित्त सिद्ध किये गए इस सोम रस से पुष्टि को प्राप्त होओ और धन देने वाले बनो ॥ ३ ॥ हे इन्द्र और वरुण ! तुम दोनों विकराल कर्म वाले हो। इस शत्रु पर तुम दोनों ही अत्यन्त तेजवाले वज्र का प्रहार करो। जो शत्रु अदानशील, हिंसक तथा हमारे द्वारा दमन किये जाने योग्य नहीं है, उस शत्रु के विरुद्ध तुम दोनों उसे हराने वाली शक्ति से हराओ ॥ ४ ॥ हे इन्द्र और वरुण ! जैसे बैल गौ को प्रेम करता है वैसे ही तुम दोनों स्तुतियों को प्रेम करने वाले हो। तृणादि को खाकर जैसे धेनु दूध देती है, वैसे ही तुम्हारी स्तुति रूप धेनु हमारी कामनाओं को सदा देती रहे ॥ ५ ॥   [१५]

तोके हिते तनय उर्वरासु सूरो दृशीके वृषणश्च पौंस्ये ।
इन्द्रा नो अत्र वरुणा स्यातामवोभिर्दस्मा परितक्म्यायाम् ॥६
युवामिद्ध्यवसे पूर्व्याय परि प्रभूती गविषः स्वापी ।
वृणीमहे सख्याय प्रियाय शूरा मंहिष्ठा पितरेव शम्भू ॥७
ता वां धियोऽवसे वाजयन्तीराजिं न जग्मुर्युवयूः सुदानू ।
श्रिये न गाव उप सोममस्थुरिन्द्रं गिरो वरुणं मे मनीषाः ॥८

इमा इन्द्रं वरुणं मे मनीषा अग्मन्नुप द्रविणमिच्छमानाः ।
उपेमस्थुर्जोष्टार इव वस्वो रघ्वीरिव श्रवसो भिक्षमाणाः ॥९
अश्व्यस्य त्मना रथ्यस्य पुष्टेर्नित्यस्य रायः पतयः स्याम ।
ता चक्राणा ऊतिभिर्नव्यसीभिरस्मत्रा रायो नियुतः सचन्ताम् ॥१०
आ नो बृहन्ता बृहतीभिरूती इन्द्र यातं वरुण वाजसातौ ।
यद्दिद्यवः पृतनासु प्रक्रीळान्तस्य वां स्याम सनितार आजेः ॥११॥१६

हे इन्द्र और वरुण ! रात्रि काल में तुम दोनों अपने रक्षा-साधनों से पूर्ण होकर शत्रुओं का संहार करने के लिए चल दो, जिससे हम संतानादि धन एवं उर्वरा पृथिवी को पा सकें और आयु पर्यन्त सूर्य के दर्शन करते रहें ॥ ६ ॥ हे इन्द्र-वरुण ! गाय की कामना करने वाले हम, तुमसे, हमारे प्राचीन काल से चले आ रहे पोषण-सामर्थ्य की याचना करते हैं। तुम दोनों ही सब कार्यों के करने में समर्थ, मित्र रूप और अत्यन्त पूजनीय हो। तुम दोनों से हम पुत्र को सुख देने वाले पिता के समान अत्यन्त स्नेह प्रदान करने की याचना करते हैं ॥ ७ ॥ इन्द्रावरुण ! तुम दोनों देवता सुन्दर फल प्रदान करने वाले हो। जैसे वीर पुरुष युद्ध की इच्छा करते रहते हैं, वैसे ही हमारी स्तुतियाँ रत्नादि धन की अभिलाषा से रक्षा-प्राप्ति के निमित्त तुम्हारे पास जाती हैं। जैसे गौऐं दूध दही आदि सुन्दर पदार्थों के निमित्त सोम के पास रहती हैं, वैसे ही हमारी हार्दिक प्रार्थनाएं इन्द्र के पास पहुँचती हैं ॥८॥ जैसे सेवकगण धन के निमित्त धनिकों की सेवा करने को जाते हैं वैसे ही हमारी स्तुतियाँ धन की कामना करती हुई इन्द्र और वरुण के पास जावें। वे स्तुतियाँ अन्न की भीख माँगने वाले भिखारियों के समान इन्द्र के पास पहुँचें ॥ ९ ॥ वे इन्द्रावरुण दोनों देवता गमनशील हैं। अपने अभिनव रक्षा-साधनों सहित हमारे सामने अश्वादि पशु एवं धन सम्पादित करें। तब हम बिना प्रयत्न किए ही घोड़ों, रथों बलों और स्थिर धनों के अधीश्वर होंगे ॥ १० ॥ हे इन्द्रावरुण ! तुम महान हो। तुम अपने महान् रक्षा-साधनों सहित आओ। अन्न-प्राप्ति वाले जिस संग्राम में शत्रु-सेना के हथियार आघात करते हैं, उस संग्राम में हम साधकगण तुम दोनों देवताओं की कृपा से विजय प्राप्त करें ॥ ११ ॥　　　　[१६]

४२ सूक्त

(ऋषि–त्रसदस्युः, पौरुकुत्स्यः। देवता—आत्माः, इन्द्रावरुणः।
छन्द–त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

मम द्विता राष्ट्रं क्षत्रियस्य विश्वायोर्विश्वे अमृता यथा नः।
क्रतुं सचन्ते वरुणस्य देवा राजामि कृष्टेरुपमस्य वव्रेः ॥१
अहं राजा वरुणो मह्यं तान्यसुर्याणि प्रथमा धारयन्त।
क्रतुं सचन्ते वरुणस्य देवा राजामि कृष्टेरुपमस्य वव्रेः ॥२
अहमिन्द्रो वरुणस्ते महित्वोर्वी गभीरे रजसी सुमेके।
त्वष्टेव विश्वा भुवनानि विद्वान्त्समैरयं रोदसी धारयं च ॥३
अहमपो अपिन्वमुक्षमाणा धारयं दिवं सदन ऋतस्य।
ऋतेन पुत्रो अदितेर्ऋतावोत त्रिधातु प्रथयद्वि भूम ॥४
मां नरः स्वश्वा वाजयन्तो मां वृताः समरणे हवन्ते।
कृणोम्याजिं मघवाहमिन्द्र इयर्मि रेणुमभिभूत्योजाः ॥५॥१७

हम क्षत्रिय हैं। सब मनुष्यों के हम स्वामी हैं। हमारा राष्ट्र दो प्रकार का है। जैसे सब देवता हमारे हैं, वैसे ही सम्पूर्ण प्रजाजन भी हमारे ही हैं। हम सुन्दर रूप वाले एवं वरुण के समान यशस्वी हैं। देवता हमारे यज्ञ की रक्षा करते हैं ॥ १ ॥ हम वरुण तेजस्वी राजा हैं। देवता हमारे निमित्त ही राक्षसों का संहार करने वाला पराक्रम धारण करते हैं। हम सुन्दर रूप वाले वरुण अन्तकस्थ हैं। हमारे यज्ञ की देवता रक्षा करते हैं और हम मनुष्यों के भी स्वामी हैं ॥ २ ॥ हम इन्द्र और वरुण हैं। महत्व के कारण विशालता को प्राप्त, सुन्दर रूप वाले आकाश और पृथिवी भी हम हैं। हम प्राणीमात्र को प्रजापति के समान प्रेरणा देने वाले हैं हम आकाश और पृथिवी के धारण करने वाले तथा प्रज्ञावान् है ॥ ३ ॥ हमने ही वृष्टिरूप जल को सींचा है। सूर्य के आश्रय स्थान आकाश को हमने ही धारण किया है। हम अदिति पुत्र जलके निमित्त यज्ञवान् हुए हैं। हमने ही व्यापक आकाश को तीन लोकों के रूप

में परिवर्तित किया है ॥ ४ ॥ युद्ध में नेतृत्व करने वाले, सुन्दर अश्ववान् वीर हमारे ही पीछे चलते हैं। वे सब संकल्पवान् हुए युद्ध में हमको ही बुलाते हैं। हम ऐश्वर्यशाली इन्द्र के रूप में युद्ध करते हैं। हम शत्रु को हराने वाले बल से परिपूर्ण हैं। हमारे प्रबल वेग से युद्धस्थल में धूल उड़कर आकाश में छा जाती है ॥ ५ ॥ [१७]

अहं ता विश्वा चकरं नकिर्मा दैव्यं सहो वरते अप्रतीतम् ।
यन्मा सोमासो ममदन्यदुक्थोभे भयेते रजसी अपारे ॥६
विदुष्टे विश्वा भुवनानि तस्त ता प्र ब्रवीषि वरुणाय वेधः ।
त्वं वृत्राणि शृण्विषे जघन्वान्त्वं वृताँ अरिणा इन्द्र सिन्धून् ॥७
अस्माकमत्र पितरस्त आसन्त्सप्त ऋषयो दौर्गहे वध्यमाने ।
त आयजन्त त्रसदस्युमस्या इन्द्रं न वृत्रतुरमर्धदेवम् ॥८
पुरुकुत्सानी हि वामदाशद्धव्येभिरिन्द्रावरुणा नमोभिः ।
अथा राजानं त्रसदस्युमस्या वृत्रहणं ददथुरर्धदेवम् ॥६
राया वयं ससवांसो मदेम हव्येन देवा यवसेन गावः ।
तां धेनुमिन्द्रावरुणा युवं नो विश्वाहा धत्तमनपस्फुरन्तीम् ॥१०।१८

हम दिव्य बल से परिपूर्ण हैं। हमको हमारे कार्यों से कोई नहीं रोक सकता। हमने उन सब कार्यों को पूर्ण किया है। जब सोम-रस और स्तोत्र हमको पुष्ट करते हैं तब हमारे बल को देखकर विशाल आकाश और भू-मण्डल दोनों ही चलायमान हो जाते हैं ॥ ६ ॥ हे वरुण! तुम्हारे कार्य को सभी प्राणी जानते हैं। हे स्तुति करने वालो! वरुण की स्तुति करो। हे इन्द्र! तुमने शत्रुओं का संहार किया है—तुम्हारे इस कर्म को सभी जानते हैं। तुमने रुकी हुई नदियों को भी छोड़ा—प्रवाहित किया है ॥ ७ ॥ "पुरुकुत्स" के बन्धन में पड़ने पर सप्तर्षि ने इस पृथिवी का पालन किया था। उन्होंने इन्द्रावरुण की कृपा से पुरुकुत्स की पत्नी के निमित्त यज्ञ किया और "त्रसदस्यु" को प्राप्त किया था। वह त्रयदस्यु इन्द्र के समान शत्रुओं का शत्रु-हन्ता हुआ और वह अर्द्ध देवत्व का भी अधिकारी हुआ ॥ ८ ॥ हे इन्द्रा-वरुण देवताओं! ऋषि की प्रेरणा से "पुरुकुत्स" की भार्या ने तुम दोनों को हविरन्न

स्तुतियों द्वारा प्रसन्न किया। फिर तुम दोनों ने उसे अर्द्ध देवत्व प्राप्त
ओं का नाश करने वाले त्रसदस्यु को प्रदान किया ॥ ६ ॥ तुम दोनों की
ा करके हम धन-प्राप्त कर सन्तुष्ट होंगे । देवता हविरन्न से तथा गायें
दि से तृप्ति को प्राप्त होती हैं। हे इन्द्रावरुण! तुम दोनों विश्व के उत्पत्ति
संहारकर्त्ता हो हमको स्थिर धन प्रदान करो ॥ १० ॥ [१८]

४३ सूक्त

(ऋषि--पुरमीह्ळाजमीह्ळौ सौहत्रो । देवता--अश्विनौ । छंद--त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

श्रवत्कतमो यज्ञियानां वन्दारु देवः कतमो जुषाते ।
मां देवीममृतेषु प्रेष्ठां हृदि श्रेषाम सुष्टुतिं सुहव्याम् ॥१
मृळाति कतम आगमिष्ठो देवानामु कतमः शम्भविष्ठः ।
रथमाहुर्द्रवदश्वमाशुं यं सूर्यस्य दुहितावृणीत् ॥२
हि ष्मा गच्छथ ईवतो द्यूनिन्द्रो न शक्ति परितक्म्यायाम् ।
आजाता दिव्या सुपर्णा कया शचीनां भवथः शचिष्ठा ॥३
ां भूदुपमातिः कया न आश्विना गमथो हूयमाना ।
ां महश्चित्त्यजसो अभीक उरुष्यतं माध्वी दस्रा न ऊती ॥४
ां रथः परि नक्षति द्यामा यत्समुद्रादभि वर्तते वाम् ।
माध्वी मधु वां प्रुषायन्यत्सीं वां पृक्षो भुरजन्त पक्वाः ॥५
हं वां रसया सिञ्चदश्वान्घृणा वयोऽरुषासः परि ग्मन् ।
वामजिरं चेति यानं येन पती भवथः सूर्यायाः ॥६
यद्वां समना पपृक्षे सेयमस्मे सुमतिर्वाजरत्ना ।
तं जरितारं युवं ह श्रितः कामो नासत्या युवद्रिक् ॥७ ॥१९

यज्ञ के देवताओं में कौन से देवता इस स्तुति को सुनेंगे? कौन से इस पूजा के योग्य स्तोत्र को ग्रहण करेंगे? देवताओं में ऐसे किस देवता अपनी स्नेहमयी, उज्ज्वल, हविरन्न वाली सुन्दर स्तुति को सुनावें जो अधिकारी हों ॥ १ ॥ हमको कौन से देवता सुख प्रदान करेंगे?

हमारे यज्ञ में कौन से देवता सर्वाधिक आते हैं ? देवताओं में कौन से देवता हमको कल्याणकारी होंगे ? जिसका रथ सुन्दर घोड़ों से युक्त और अधिक वेगवान् है, जिसका सूर्य की पुत्री सूर्या ने आदर किया था ? उपरोक्त कार्यों के करने वाले दोनों अश्विनीकुमार ही हैं ॥ २ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! रात्रि के अवसान होने पर इन्द्र जैसे अपना पराक्रम दिखाते हैं, वैसे ही तुम दोनों भी सोमाभिषव के समय आओ। तुम दोनों आकाश-मार्ग से आते हो। तुम सुन्दर गति वाले तथा दिव्य गुण वाले हो। तुम्हारे कार्यों में कौन-सा कार्य सबसे अधिक उत्तम है ? ॥ ३ ॥ तुम दोनों के उपयुक्त कौन-सी स्तुति है ? तुम किस स्तोत्र द्वारा बुलाये जाने पर आओगे ? तुम दोनों के विकराल क्रोध को सहन करने की सामर्थ्य किस में है ? हे मीठे जल के उत्पन्न करने वालो ! तुम शत्रुओं का नाश करने वाले हो। तुम अपना आश्रय प्रदान करते हुए हमारी रक्षा करो ॥ ४ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! तुम्हारा रथ आकाश में चतुर्दिक अधिकाधिक गमनशील है। वह समुद्र में भी चलता है। तुम्हारे निमित्त परिपक्व जौ के साथ सोम रस मिश्रित हुआ है। तुम मधुर जल के उत्पन्न करने वाले हो और शत्रुओं का नाश करने में समर्थ हो। यह अध्वर्यु तुम्हारे निमित्त सोम रस में दूध मिला रहे हैं ॥ ५ ॥ मेघ द्वारा तुम्हारे अश्वों को अभिषिक्त किया गया है। दीप्ति से प्रकाशमान हुए तुम्हारे अश्व पक्षियों के समान चलते हैं। जिस रथ द्वारा तुम दोनों ने सूर्या की रक्षा की थी, तुम दोनों का वह प्रसिद्धि प्राप्त रथ शीघ्रता से चलने वाला है ॥ ६ ॥ हे अश्विनीकुमारो! तुम दोनों एक समान हो। इस यज्ञ में हम स्तुति द्वारा तुम दोनों को समान मानते हुए एकत्र आहूत करते हैं। यह सुन्दर स्तुति हमको उत्तम फल देने वाली हो। हे अश्विद्वय ! तुम शोभन अन्न से युक्त हो। हम स्तोताओं के रक्षक होओ। हमारी कामना तुम्हारे पास पहुचते ही पूर्ण हो जाती है ॥७॥[१६]

४४ सूक्त

(ऋषि -पुरुमीह्ळाजमीह्ळौ सौहोत्रौ। देवता--अश्विनौ। छन्द--त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

तं वां रथं वयमद्या हुवेम पृथुज्रयमश्विना सङ्गति गोः

यः सूर्यां वहति वन्धुरायुर्गिर्वाहसं पुरुतमं वसूयुम् ॥१
युवं श्रियमश्विना देवता तां दिवो नपाता वनथः शचीभिः ।
युवोर्वपुरभि पृक्षः सचन्ते वहन्ति यत्ककुहासो रथे वाम् ॥२
को वामद्या करते रातहव्य ऊतये वा सुतपेयाय वार्कैः ।
ऋतस्य वा वनुषे पूर्व्याय नमो येमानो अश्विना ववर्तत् ॥३
हिरण्ययेन पुरुभू रथेनेमं यज्ञं नासत्योप यातम् ।
पिबाथ इन्मधुनः सोम्यस्य दधथो रत्नं विधते जनाय ॥३
आ नो यातं दिवो अच्छा पृथिव्या हिरण्ययेन सुवृता रथेन ।
मा वामन्ये नि यमन्देवयन्तः सं यद्ददे नाभिः पूर्व्या वाम् ॥५
नू नो रयिं पुरुवीरं बृहन्तं दस्रा मिमाथामुभयेष्वस्मे ।
नरो यद्वामश्विना स्तोममावन्त्सधस्तुतिमाजमीळहासोः अग्मन् ॥६
इहेह यद्वां समना पपृक्षे सेयमस्मे सुमतिर्वाजरत्ना ।
उरुष्यतं जरितारं युवं ह श्रितः कामो नासत्या युवद्रिक् ॥७।२०

हे अश्विद्वय ! हम तुम्हारे गोदाता एवम् प्रसिद्ध वेगवान् रथ को बुलाते हैं। वह रथ सूर्या को आश्रय दे चुका है। उसमें वैठने का स्थान काठ का बना है। तुम्हारा वह रथ स्तुतियों को वहन करने वाला तथा अन्न-धन से युक्त परमैश्वर्य वाला है ॥ १ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! तुम दोनों ही देवता हो। तुम दोनों ही अपने उत्तम कर्म द्वारा सुशोभित होते हो। तुम दोनों के शरीर मे सोम-रस व्याप्त होता है। तुम्हारे रथ को उत्तम अश्व ढोते हैं ॥ २ ॥ हे अश्विद्वय ! सोम प्रदान करने वाला कौनसा यजमान सोम-पान के निमित्त और अपनी रक्षा-कामना करता हुआ तुम्हारा स्तवन करता है ? कौनसा नमस्कार कर्त्ता यजमान तुम दोनों को यज्ञ की ओर बुलाता है ? ॥ ३ ॥ हे अश्विनी-कुमारो ! तुम दोनों अनेक कर्म वाले हो । तुम अपने स्वर्ण युक्त रथ सहित इस यज्ञ में आओ और मधुर सोम रस को पीओ । हम साधकों को सुन्दर धन प्रदान करो ॥ ४ ॥ हे अश्विद्वय ! तुम अपने स्वर्णिम रथ से आकाश से हमारे पास आओ। तुम्हें आहूत करने वाले अन्य यजमान तुम्हें यहाँ आने से

वहीं रोक न लें, इसलिए हमने अपनी स्तुतियों को पहिले ही निवेदन कर
दिया है ।। ५ ।। हे अश्विनी कुमारो ! तुम दोनों हमको बहुत संतानयुक्त धन
दो। मुझ "पुरमीह्ल" के ऋत्विकों ने अपने स्तोत्र की शक्ति से तुम्हें यहाँ
बुलाया है और "अजमीह्ल" के ऋत्विकों ने जो स्तोत्र-पाठ किया है, उनकी
शक्ति भी उसी के साथ मिली हुई है ।। ६ ।। हे अश्विनीकुमारो ! तुम दोनों
इस यज्ञ में समान मन वाले होओ। हम जिस स्तोत्र द्वारा तुम दोनों को एक
करते हैं, वह सुन्दर स्तोत्र हमारे निमित्त उत्तम फल वाला हो। तुम दोनों
श्रेष्ठ अन्न वाले हो। मुझ स्तुति करने वाले के तुम रक्षक बनो। हमारी
कामना तुम्हारे पास पहुँचने से पूरी हो जाती है ।। ७ ।। [२०

४५ सूक्त

(ऋषि—वामदेवः । देवता—अश्विनौ । छंद—जगती, त्रिष्टुप्)

एष स्य भानुरुदियर्ति युज्यते रथः परिज्मा दिवो अस्य सानवि ।
पृक्षासो अस्मिन्मिथुना अधि त्रयो दृतिस्तुरीयो मधुनो वि रप्शते ।।१
उद्वां पृक्षासो मधुमन्त ईरते रथा अश्वास उषसो व्युष्टिषु ।
अपोर्णुवन्तस्तम आ परीवृतं स्वर्ण शुक्रं तन्वन्त आ रजः ।।२
मध्वः पिबतं मधुपेभिरासभिरुत प्रियं मधुने युञ्जाथां रथम् ।
आ वर्तनिं मधुना जिन्वथस्पथो दृतिं वहेथे मधुमन्तमश्विना ।।३
हंसासो ये वां मधुमन्तो अस्रिधो हिरण्यपर्णा उहुव उषर्बुधः ।
उदप्रुतो मन्दिनो मन्दिनिस्पृशो मध्वो न मक्षः सवनानि गच्छथः ।।४
स्वध्वरासो मधुमन्तो अग्नय उस्रा जरन्ते प्रति वस्तोरश्विना ।
यन्निक्तहस्तस्तरणिर्विचक्षणः सोमं सुषाव मधुमन्तमद्रिभिः ।।५
आकेनिपासो अहभिर्दविध्वतः स्वर्ण शुक्रं तन्वन्त आ रजः ।
सूरश्चिदश्वान्युयुजान ईयते विश्वां अनु स्वधया चेतथस्पथः ।।६
प्र वामवोचमश्विना धियन्धा रथः स्वश्वो अजरो यो अस्ति ।
येन सद्यः परि रजांसि याथो हविष्मन्तं तरणिं भोजमच्छ ।।७।२१

प्रकाशमान् सूर्य उदय हो रहे हैं। अश्विनीकुमारों का श्रेष्ठ रथ सब ओर गमन करता है। वह तेजस्वी रथ से जुड़ा हुआ है। इस रथ के ऊपर की ओर त्रिविध अन्न है तथा सोम रस से भरा हुआ चमस चतुर्थ रूप से सुशोभित है ॥ १ ॥ हे अश्विद्वय! उपारम्भ में तुम्हारा सुन्दर त्रिविध अन्न और सोम रस से युक्त रथ सब ओर व्याप्त अंधेरे को मिटाता हुआ सूर्य के समान उज्ज्वल प्रकाश को फैलाता हुआ ऊपर की ओर चलता है ॥ २ ॥ हे अश्विद्वय! तुम अपने सोम पीने के अभ्यस्त मुख द्वारा सोम-रस पीओ। सोम रस पीने के लिए अपने रथ को जोड़कर यजमान के घर में आओ। अपने गमन मार्ग को सोम की कामना करते हुए शीघ्र पूरा कर लो और सोम-पूर्ण पात्र को ग्रहण करो ॥ ३ ॥ हे अश्विद्वय! तुम्हारे पास तेज चाल वाले, मधुरिमा से युक्त, द्वेष से शून्य, सुवर्ण के समान तेज वाले, पङ्ख से युक्त उषा काल में चैतन्य होने वाले, प्रसन्न मन वाले, जलों को प्रेरित करने वाले एवं सोम को स्पर्श करने की इच्छावाले सुन्दर अश्व हैं, जिनके द्वारा तुम मधुमक्खी के मधु के पास जाने के समान हमारे यज्ञों में आगमन करते हो ॥ ४ ॥ कर्मवान् अध्वर्यु जब अभिमन्त्रित जल द्वारा हाथ धोकर पाषाण से मधुर सोम कूटते हैं तब यज्ञ के साधन रूप गार्हपत्यादि अग्नि अश्विनीकुमारों का स्तवन करते हैं ॥ ५ ॥ पास में ही पड़ती हुई किरणें दिन के द्वारा अंधेरे को नष्ट करती और सूर्य के समान प्रकाश को फैलाती हैं। उस समय सूर्य अपने घोड़ों पर चढ़कर चलते हैं। हे अश्विनीकुमारो! तुम दोनों सोमरस सहित उनके चलते हुए सम्पूर्ण मार्ग को पूरा करो ॥ ६ ॥ हे अश्विद्वय! हम याज्ञिकगण तुम दोनों का स्तवन करते हैं। जो तुम्हारा सुन्दर घोड़े से युक्त नित्य नवीन रथ है तथा जिस रथ द्वारा तुम तीनों लोकों का भ्रमण करते हो, अपने उसी रथ के सहित तुम हविरन्न वाले हमारे यज्ञ में आओ ॥ ७ ॥ [२१]

४६ सूक्त (पाँचवां अनुवाक)

(ऋषि—वामदेवः। देवता—इन्द्रवायुः। छन्द—गायत्री)

अग्रं पिबा मधूनां सुतं वायो दिविष्टिषु। त्वं हि पूर्वपा असि ॥ १

शतेना नो अभिष्टिभिर्नियुत्वाँ इन्द्रसारथिः। वायो सुतस्य तृम्पतम् ॥

आ वां सहस्रं हरय इन्द्रवायू अभि प्रयः । वहन्तु सोमपीतये ॥३
रथं हिरण्यवन्धुरमिन्द्रवायू स्वध्वरम् । आ हि स्थाथो दिविस्पृशम् ॥४
रथेन पृथुपाजसा दाश्वांसमुप गच्छतम् । इन्द्रवायू इहा गतम् ॥५
इन्द्रवायू अयं सुतस्तं देवेभिः सजोषसा । पिबतं दाशुषो गृहे ॥६
इह प्रयाणमस्तु वामिन्द्रवायू विमोचनम् । इह वां सोमपीतये ॥७ ॥२२

हे वायो ! स्वर्ग में स्थान बनाने वाले यज्ञ में इस अभिपुत सोम-रस को आकर पीओ, क्योंकि तुम सबसे पहले सोम-रस का पान करने वाले हो ॥ १ ॥ हे वायो ! हे इन्द्र ! तुम दोनों सोम-पान द्वारा तृप्ति को प्राप्त होओ । हे वायो ! तुम लोक के कल्याणकारी कर्म में नियुक्त किए हो । तुम इन्द्र के सारथि होकर हमारी बलवती इच्छाओं को पूर्ण करने के लिए यहाँ आगमन करो ॥ २ ॥ हे इन्द्र और वायो ! तुम दोनों को हजारों घोड़े शीघ्रतापूर्वक सोमपान के निमित्त यहाँ ले आवें ॥ ३ ॥ हे इन्द्र और वायो ! तुम दोनों सुवर्ण के उज्ज्वल काठ के आधार वाले तथा आकाश को स्पर्श करते रहने वाले सुन्दर रथ पर चढ़ो ॥ ४ ॥ हे इन्द्र और वायो ! तुम दोनों ही श्रेष्ठ शक्ति वाले रथ से ही हवि देने वाले यजमान के समीप आओ । तुम दोनों, यजमान के लिए ही इस श्रेष्ठ यज्ञ में पधारो ॥ ५ ॥ हे इन्द्र ! हे वायो ! यह सुसिद्ध सोम रखा है । तुम दोनों समान प्रीति वाले होकर हवि-दाता यजमान के यज्ञ-स्थान में आकर सोमरस का पान करो ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! हे वायो ! इस यज्ञ में तुमको सोमपान कराने के निमित्त अश्व खोल दिए जावें । तुम दोनों इस यज्ञ-स्थान में आओ ॥ ७ ॥ [२२]

४७ सूक्त

(ऋषि—वामदेवः । देवता—वायुः । छन्द—अनुष्टुप्, उष्णिक्)

वायो शुक्रो अयामि ते मध्वो अग्रं दिविष्टिषु ।
आ याहि सोमपीतये स्पार्हो देव नियुत्वता ॥१
इन्द्रश्च वायवेषां सोमानां पीतिमर्हथः ।
युवां हि यन्तीन्दवो निम्नमापो न सध्र्यक् ॥२
वायविन्द्रश्च शुष्मिणा सरथं शवसस्पती ।

नियुत्वन्ता न ऊतयः आ यातं सोमपीतये ॥३
या वां सन्ति पुरुस्पृहो नियुतो दाशुषे नरा ।
अस्मे ता यज्ञवाहसेन्द्रवायू नि यच्छतम् ॥ ।२३

हे वायो ! श्रेष्ठ कर्मानुष्ठानों द्वारा पवित्र हुए हम दिव्यलोक प्राप्ति की कामना करते हुए पहले तुम्हारे लिए ही सोम रस को लाते हैं। तुम कामना के योग्य हो। अपने वाहन सहित, सोम पीने के निमित्त इस स्थान में पधारो ॥ १ ॥ हे वायो ! इस ग्रहण किए गए सोम को पीने के पात्र तुम हो और इन्द्र हैं। जैसे जल गड्ढे की ओर जाता है, वैसे ही सब प्रकार के सोम तुम्हारे पास जाते हैं। इस प्रकार तुम दोनों ही सोम को प्राप्त करने वाले हो ॥ २ ॥ हे वायो ! हे इन्द्र ! तुम दोनों ही शक्ति के अधिपति हो, तुम दोनों अत्यन्त पराक्रम वाले एव घोड़ों से युक्त हो। तुम दोनों एक ही रथ पर बैठकर सोम पीने तथा हमको शरण देने के निमित्त यहाँ आगमन करो ॥ ३ ॥ हे इन्द्र और वायो ! तुम दोनों ही यज्ञ के वहन करने वाले एवं सब देवताओं में अग्रणी हो। हम तुमको हविरन्न प्रदान करने वाले यजमान हैं। तुम्हारे पास कामना के योग्य जो अश्व हैं, वह हमको प्रदान करो ॥ ४ ॥ [२३]

३६ सूक्त

(ऋषि—वामदेवः। देवता—वायुः। छन्द—अनुष्टुप्,)

विहि होत्रा अवीता विपो न रायो अर्यः ।
वायवा चन्द्रेण रथेन याहि सुतस्य पीतये ॥१
निर्युवाणो अशस्तीर्नियुत्वाँ इन्द्र सारथिः ।
वायवा चन्द्रेण रथेन याहि सुतस्य पीयते ॥२
अनु कृष्णे वसुधिती ये माते विश्वपेशासा ।
वायवा चन्द्रेण रथेन याहि सुतस्य पीतये ॥३
वहन्तु त्वा मनोयुजो युक्तासो नवतिर्नव ।
वायवा चन्द्रेण रथेन याहि सुतस्य पीतये ॥४
वायो शतं हरीणां युवस्व पोष्याणाम् ।

उत वा ते सहस्त्रिणो रथ आ यातु पाजसा ॥५ ।२४

हे वायो ! हे शत्रुओं को कम्पायमान करने वाले राजा के समान तुम अन्य के द्वारा न पिए गए सोमरस को पहले ही पीलो और स्तुति करने वालों के लिए धनों को प्राप्त कराओ। तुम अपने कल्याणकारी रथ द्वारा सोम पीने के लिए यहाँ आओ ॥ १ ॥ हे वायो ! तुम इन्द्र के साथ ही सारथि रूप में सुवर्णमय रथ द्वारा अश्वादि से युक्त होकर सौम्य होकर स्वभाव वाले बलवान व्यक्तियों से युक्त तथा अनेक दुष्ट व्यक्तियों से रहित रहते हो। तुम हर्षकारी सोम का रस पान करने के लिए यहाँ पधारो ॥ २ ॥ हे वायो ! काले वर्ण वाली, वसुओं को धारण करने वाली, विश्वरूपा आकाश-पृथिवी तुम्हारे पद चिह्न पर चलती है। तुम अपने प्रसन्नतादायक रथ के द्वारा सोम पीने के लिए यहाँ आओ ॥ ३ ॥ हे वायो ! मन के समान वेगवान्, परस्पर मिले हुए निन्यानवे अश्व तुम्हारे लिए यहाँ लाते हैं। तुम सोम पीने के निमित्त सुन्दर प्रसन्नताप्रद रथ पर पधारो ॥ ४ ॥ हे वायो ! तुम सैकड़ों घोड़ों को रथ में जोड़ो और उनके सहित तुम्हारा रथ वेग सहित यहाँ आगमन करे ॥ ५ ॥ [२४]

४९ सूक्त

(ऋषि–वामदेवः । देवता–इन्द्र बृहस्पती । छन्द–गायत्री)

इदं वामास्ये हविः प्रियमिन्द्राबृहस्पती । उक्थं मदश्च शस्यते ॥१
अयं वां परि षिच्यते सो इन्द्रा बृहस्पती । चारुमर्दाय पीतये ॥२
आ न इन्द्रा बृहस्पती गृह मिन्द्रश्च गच्छतम् । सोमपा सोम पीयते ॥३
अस्मे इन्द्रा बृहस्पती रयिं धत्तं शतग्विनम् । अश्वावन्तं सहस्रिणम् ॥४
इन्द्रा बृहस्पती वयं सुते गीर्भिर्हवामहे । अस्य सोमस्य पीतये ॥५
सोममिन्द्रा बृहस्पती पिबतं दाशुषो गृहे । मादयेथां तदोकसा ॥६ ।२५

हे इन्द्र और बृहस्पति ! इस परम प्रिय सोम रूप हविरन्न को हम तुम दोनों के मुख में डालते हैं। तुम दोनों को हम हर्षकारी सोम रस प्रदान

करते हैं ॥ १ ॥ हे इन्द्र और बृहस्पति ! तुम दोनों की हृष्टि के नि
तथा पीने के लिए यह सुस्वादु सोम-रस हम तुम्हारे मुख में डालते हैं ॥
हे इन्द्र और बृहस्पति ! तुम दोनों सोम पान करने वाले हो। तुम
हमारे यज्ञ-गृह में सोम पीने के लिए आओ ॥ ३ ॥ हे इन्द्र और बृहस्
तुम दोनों ही हमको सैकड़ों गायों और हजारों घोड़ों से युक्त धन
करो ॥ ४ ॥ हे इन्द्र और बृहस्पते ! सोम के सिद्ध किये जाने पर हम
अपने स्तोत्र द्वारा तुम दोनों को सोम रस पीने के लिए बुलाते हैं ॥ ५
इन्द्र ! हे बृहस्पते ! हवि देने वाले यजमान के घर में निवास करते हुए
दोनों सोम पीकर हृष्ट होओ॥ ६ ॥

५० सूक्त

(ऋषि—वामदेवः । देवता—बृहस्पतिः, इन्द्राबृहस्पती । छन्द—त्रिष्टुप्

यस्तस्तम्भ सहसा वि ज्मो अन्तान्बृहस्पतिस्त्रिषधस्थो रवेण ।
तं प्रत्नास ऋषयो दीध्यानाः पुरो विप्रा दधिरे मन्द्रजिह्वम् ॥
धुनेतयः सुप्रकेतं मदन्तो बृहस्पते अभि ये नस्ततस्रे ।
पृषन्तं सृप्रमदब्धमूर्वं बृहस्पते रक्षतादस्य योनिम् ॥२
बृहस्पते या परमा परावदत आ त ऋतस्पृशो नि षेदुः ।
तुभ्यं खाता अवता अद्रिदुग्धा मध्वः श्चोतन्त्यभितो विरप्शम् ॥३
बृहस्पतिः प्रथमं जायमानो महो ज्योतिषः परमे व्योमन् ।
सप्तास्यस्तुविजातो रवेण वि सप्तरश्मिरधमत्तमांसि ॥४
स सुष्टुभा स ऋक्वता गणेन वलं रुरोज फलिगं रवेण ।
बृहस्पतिरुस्रिया हव्यसूदः कनिक्रदद्वावशतीरुदाजत् ॥५।२६

वेद-रक्षक बृहस्पति ने अपने बल से पृथिवी की दसों दिशाओं
अपने वश में किया। वे शब्द द्वारा तीनों लोकों में व्याप्त हैं। उन वि
जिह्वा वाले, प्रसन्नता देने वाले बृहस्पति को प्राचीन ऋषियों ने पुरोहित प
स्थापित किया ॥ १ ॥ हे मेधावी बृहस्पतिदेव ! तुम्हारी चाल से श
कांपने लगते है। जो तुमको पुष्ट करने के निमित्त स्तुति करते हैं, तुम

लिये फलदायक, बढ़ाने वाले तथा हिंसा रहित होते हो और तुम उनके महान् यज्ञ के पालन करने वाले हो ॥२॥ हे बृहस्पतिदेव ! जो दूरस्थ दिव्य लोक हैं, वह अत्यन्त उत्कृष्ट हैं। वहाँ से तुम्हारे घोड़े इस यज्ञ में आते हैं। जैसे खाद से भरे हुए कुए के चारों ओर जल उबलता है, वैसे ही पाषाण द्वारा निष्पन्न मधुर सोम रस स्तुतियों के द्वारा तुम्हें चारों ओर से सींचता है ॥ ३ ॥ जब वे मन्त्रज्ञ बृहस्पति सूर्य मण्डल में प्रथम बार प्रकट हुए तब मुख से सप्त छन्दोमय तथा शब्द से युक्त होकर उन गमनशील बृहस्पति ने अपने तेज से अँधेरे को नष्ट किया ॥ ४ ॥ उन बृहस्पति ने स्तुति करते हुए अङ्गिराओं के साथ घोर शब्द द्वारा "बल" नामक दैत्य का नाश किया। उन्होने शब्द से ही उत्तम दूध देने वाली गौओं को गुफा से निकाला था ॥ ५ ॥ [२६]

एवा पित्रे विश्वदेवाय वृष्णे यज्ञैर्विधेम नमसा हविर्भिः।
बृहस्पते सुप्रजा वीरवन्तो वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥६
स इद्राजा प्रतिजन्यानि विश्वा शुष्मेण तस्थावभि वीर्येण।
बृहस्पतिं यः सुभृतं बिभर्ति वल्गूयति वन्दते पूर्वभाजम् ॥७
स इत्क्षेति सुधित ओकसि स्वे तस्मा इळा पिन्वते विश्वदानीम्।
तस्मै विशः स्वयमेवा नमन्ते यस्मिन्ब्रह्मा राजनि पूर्व एति ॥८
अप्रतीतो जयति सं धनानि प्रतिजन्यान्युत या सजन्या।
अवस्यवे यो वरिवः कृणोति ब्रह्मणे राजा तमवन्ति देवाः ॥९
इन्द्रश्च सोमं पिबतं बृहस्पतेऽस्मिन्यज्ञे मन्दसाना वृषण्वसू।
आ वां विशन्त्विन्दवः स्वाभुवोऽस्मे रयिं सर्ववीरं नि यच्छतम् ॥१०
बृहस्पत इन्द्र बर्धतं नः सचा सा वां सुमतिर्भूत्वस्मे।
अविष्टं धियो जिगृतं पुरन्धीर्जजस्तमर्यो वनुषामरातीः ॥११॥२७

वे बृहस्पति सबके देवतास्वरूप, पालन करने वाले कामनाओं की वर्षा करने वाले हैं, हम यज्ञ में हविरन्न द्वारा स्तुति करते हुए उनकी पूजा करेंगे, जिससे हम सन्तान तथा बलयुक्त ऐश्वर्य का स्वामित्व प्राप्त कर

सकें ॥ ६ ॥ जो राजा बृहस्पति की भले प्रकार रक्षा करता है तथा प्रथम हव्य ग्रहण करने वाला मानकर उनको हवि देता हुआ नमस्कारयुक्त स्तुति करता है, वह राजा अपनी शक्ति से शत्रुओं की शक्ति को निरर्थक करता हुआ उसे हरा देता है ॥ ७ ॥ जिसके पास बृहस्पति सबसे पहले जाते हैं, वह राजा सन्तुष्ट होकर अपने स्थान में रहता है। उसके लिए पृथिवी भी हर ऋतु में फल देने वाली होती है। उसकी प्रजा उसके सामने सदा सिर झुकाए रहती है ॥ ८ ॥ जो राजा रक्षा चाहने वाले धनहीन विद्वान को धन देता है, वह शत्रुओं के धन का विजेता होता है। देवता सदा उसके रक्षक रहते है ॥ ९ ॥ हे बृहस्पते ! तुम और इन्द्र दोनों ही इस यज्ञ में प्रसन्न होकर यजमानों को धन दो। यह सोम-रस सर्वव्यापक है। यह तुम्हारे शरीरों में प्रविष्ट हो। तुम दोनों ही हमारे निमित्त सन्तान से युक्त रमणीय धन प्रदान करो ॥ १० ॥ हे बृहस्पते ! हे इन्द्र ! तुम दोनों ही हमको हर प्रकार से बढ़ाओ। हमारे प्रति तुम दोनों की कृपा एक साथ ही प्रेरित हो। हमारे इस यज्ञ की तुम दोनों ही रक्षा करो। स्तुति करने वालों के शत्रुओं से युद्ध करो। तुम दोनों ही हमारी स्तुति से चैतन्यता को प्राप्त हो जाओ ॥ ११ ॥ [२७]

५१ सूक्त

(ऋषि-वामदेवः। देवता—उषा। छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

इदमु त्यत्पुरुतमं पुरस्ताज्ज्योतिस्तमसो वयुनावदस्थात् ।
नूनं दिवो दुहितरो विभातीर्गातुं कृणवन्नुषसो जनाय ॥१
अस्थुरु चित्रा उषसः पुरस्तान्मिता इव स्वरवोध्वरेषु ।
व्यू व्रजस्य तमसो द्वारोच्छन्तीरव्रञ्छुचयः पावकाः ॥२
उच्छन्तीरद्य चितयन्त भोजान्राधोदेयायोषसो मघोनीः ।
अचित्रे अन्तः पणयः ससन्त्वबुध्यमानास्तमसो विमध्ये ॥३
कुविस्त देवी सनयो नवो वा यामो बभूयादुषसो वो अद्य ।
येना नवग्वे अङ्गिरे दशग्वे सप्तास्ये रेवती रेवदूष ॥४

यूयं हि देवीर्ऋतयुग्भिरश्वैः परिप्रयाथ भुवनानि सद्यः ।
प्रबोधयन्तीरुषसः ससन्तं द्विपाच्चतुष्पाच्चरथाय जीवम् ॥५ ।१

जो तेज हमारे द्वारा स्तुत है, वह सर्व विख्यात अत्यन्त प्रकाशमान तेज अन्धकार को चीरता हुआ पूर्व दिशा में प्रकट होता है । सूर्य की पुत्री, प्रकाश से पूर्ण उषा यजमानों के चलने के कार्य में सहायता देने में सर्वथा समर्थ है ॥१॥ जैसे यज्ञ में गढ़े हुए यूपांश स्थिर होते हैं, वैसे ही सुशोभित उषाऐं पूर्व दिशा में व्याप्त होती है । ये बाधा देने वाले अन्धकार को खोलकर पवित्र उज्ज्वल हुई प्रकाश देती हैं ॥ २ ॥ अन्धकार को मिटाने वाली, ऐश्वर्य से युक्त उषाऐं हवि देने वाले यजमान को सोमादि अन्न देने के निमित्त प्रेरित करती हैं । उसी प्रकार श्रीसम्पन्न गृहणियाँ अपने गुणों को प्रकट करती हुई प्रगाढ़ अन्धकार के अन्त होने पर अपने पतियों को सचेत करती हैं ॥ ३ ॥ हे प्रकाशमान उषाओ ! जिस रथ से तुमने नवग्व अर्थात् सदा तरुण और दशग्व अर्थात् दशों इन्द्रियों को जीतने वाले अङ्गिराओं को तेजस्वी बनाया था, तुम्हारा वही प्राचीन रथ हमारे इस यज्ञ स्थान में आकर प्राप्त हो ॥ ४ ॥ हे प्रकाशमान उषाओ ! तुम सोते हुए चौपायों को अपने चलने-फिरने आदि कर्मों में प्रेरित करती हुई अपने गतिमान अश्व द्वारा घरों के चारों ओर क्षण भर में घूमती हो ॥ ५ ॥ [१]

क्व स्विदासां कतमा पुराणी यया विधाना विदधुर्ऋभूणाम् ।
शुभं यच्छुभ्रा उषसश्चरन्ति न वि ज्ञायन्ते सदृशीरजुर्या ॥६
ता घा ता भद्रा उषसः पुरासुरभिष्टिद्युम्ना ऋतजातसत्याः ।
यास्वीजानः शशमान उक्थैः स्तुवञ्छंसन्द्रविणं सद्य आप ॥७
ता आचरन्ति समना पुरस्तात्समानतः समना पप्रथानाः ।
ऋतस्य देवीः सदसो बुधाना गवां न सर्गा उषसो जरन्ते ॥८
ता इन्न्वेव समना समानीरमीतवर्णा उषसश्चरन्ति ।
गूहन्तीरभ्वमसितं रुशद्भिः शुक्रास्तनूभिः शुचयो रुचानाः ॥९
रयिं दिवो दुहितरो विभातीः प्रजावन्तं यच्छतास्मासु देवीः ।

स्योनादा व प्रतिबुध्यमानाः सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥१०
तद्वो दिवो दुहितरो विभातीरुप ब्रुव उषसो यज्ञकेतुः।
वयं स्याम यशसो जनेषु तद् द्यौश्च धत्तां पृथिवी च देवी ॥११॥२

ऋभुगण ने जिन उषाओं के निमित्त चमस आदि बनाए थे, वे प्राचीन उषाऐं अब कहाँ हैं ? प्रकाशमान्, नवीन सुन्दर रूप वाली उषाऐं जब उज्ज्वल प्रकाश करती हैं, तब वे एक रूप रहती हैं। उस समय वे प्राचीन हैं या नवीन, यह बात पहचानने में नहीं आती ॥ ६ ॥ यज्ञ करने वाले यजमान जिन उषाओं का स्तोत्रों द्वारा पूजन करते हुए धन प्राप्त करते है, वे उषाऐं कल्याण करने वाली हैं। वे प्राचीनकाल से आने वाली उषाऐं यजमान को धन दें। वे यज्ञ के निमित्त प्रकट हुई हैं। वे उषाऐं सत्य फल प्रदान करने वाली हैं ॥ ७ ॥ एक रूप वाली समान उषाऐं अन्तरिक्ष से पूर्व दिशा मे अवतरित होती हुई सर्वत्र जाती हैं। प्रकाश से पूर्ण उषाऐं यज्ञ स्थान को लक्ष्य करती हुई किरणों के समान पूजी जाती है ॥ ८ ॥ वे उषाऐं एक रूप वाली समान, सुन्दर वर्ण वाली उज्ज्वल तथा कान्तिमती हैं। वे अपने शरीर द्वारा प्रकाशमान हैं और अन्धकार को छुपाकर सर्वत्र घूमती हैं ॥ ९ ॥ हे प्रकाशमान् सूर्य की पुत्रियो ! तुम हमको सन्तान और धन से परिपूर्ण करो। हम अपने सुख के निमित्त तुम से निवेदन करते हैं, जिससे हम सन्तान से युक्त ऐश्वर्य के अधिपति हो सकें ॥ १० ॥ हे प्रकाशमान् सूर्य की पुत्रियो ! हम याज्ञिक तुमसे प्रार्थना करते हैं कि हम सब मनुष्यों के मध्य में यशस्वी और ऐश्वर्यवान् बनें आकाश और कान्ति से परिपूर्ण पृथिवी हमारे निमित्त सुख को धारण करने वाली हो ॥ ११ ॥ [२]

५२ सूक्त

(ऋषि—वामदेवः। देवता—उषा। छन्द—गायत्री)

प्रति ष्या सूनरी जनी व्युच्छन्ती परि स्वसुः। दिवो अदर्शि दुहिता ॥१
अश्वेव चित्रारुषी माता गवामृतावरी। सखाभूदश्विनोरुषाः ॥२
उत सखास्यश्विनोरुत माता गवामसि। उतोषो वस्व ईशिषे ॥३

यावयद् द्वेषसं त्वा चिकित्वित्सूनृतावरि । प्रति स्तोमैरभुत्स्महि ॥४
प्रति भद्रा अदृक्षत गवां सर्गा न रश्मयः । ओषा अप्रा उरु ज्रयः ॥५
आपप्रुषी विभावरि व्यावर्ज्योतिषा तमः । उषो अनु स्वधामव ॥६
आ द्यां तनोषि रश्मिभिरान्तरिक्षमुरु प्रियम् ।
उषः शुक्रेण शोचिषा ॥७॥३

वह सूर्य की पुत्री उषा दिखाई देती है । वह स्तुति के योग्य, प्राणियों का नेतृत्व करने वाली और सुन्दर फलों को उत्पन्न करने वाली है । वह अपनी बहिन स्वरूपा रात्रि की समाप्ति पर अंधेरे को नष्ट करती है ॥१॥ घोड़े के समान सुन्दर दीखने वाली, प्रकाशमयी, किरणों की माला और यज्ञ को सम्पन्न करने वाली उषा अश्विनीकुमारों से बन्धु-भाव स्थापित करती है ॥२॥ हे उषे ! तुम अश्विनीकुमारों से बन्धुत्व रखने वाली और किरणों की जननी हो । तुम ऐश्वर्य की अधीश्वरी हो ॥३॥ हे सत्य वचन वाली उषे ! तुम शत्रुओं को दूर भगा दो । तुम हमको ज्ञान प्रदान करो । हम स्तुतियों से तुमको नमस्कार करते हैं ॥ ४ ॥ वर्षा की धारा के समान महान् तेजवाली उषा ने संसार को परिपूर्ण किया है । स्तुति के योग्य किरणें दर्शनीय होती हैं ॥ ५ ॥ हे उषे ! तुम सुन्दर प्रकाश वाली हो । अपने तेज से अन्धकार को नष्ट करती हुई संसार को सम्पन्न बनाओ । तुम इस हविरन्न का पालन करो ॥ ६ ॥ हे उषे ! तुम अपने प्रकाशमान तेज से परिपूर्ण होकर किरणों द्वारा आकाश और विस्तृत अन्तरिक्ष में व्याप्त होओ ॥ ७ ॥ [३]

५३ सूक्त

(ऋषि—वामदेवः । देवता—सविता । छन्द—जगती)

तद्देवस्य सवितुर्वार्यं महद्वृणीमहे असुरस्य प्रचेतसः ।
छर्दिर्येन दाशुषे यच्छति त्मना तन्नो महाँ उदयान्देवो अक्तुभिः ॥१
दिवो धर्ता भुवनस्य प्रजापतिः पिशङ्गं द्रापिं प्रति मुञ्चते कविः ।
विचक्षणः प्रथयन्नापृणन्नुर्वजीजनत्सविता सुम्नमुक्थ्यम् ॥२
आप्रा रजांसि दिव्यानि पार्थिवा श्लोकं देवः कृणुते स्वाय धर्मणे ।

प्र बाहू अस्राक्सविता सवीमनि निवेशयन्प्रसुवन्नक्तुभिर्जगत् ॥३
अदाभ्यो भुवनानि प्रचाकशद् व्रतानि देवः सविताभि रक्षते ।
प्रास्राग्बाहू भुवनस्य प्रजाभ्यो धृतव्रतो महो अज्मस्य राजति ॥४
त्रिरन्तरिक्षं सविता महित्वना त्री रजांसि परिभूस्त्रीणि रोचना ।
तिस्रो दिवः पृथिवीस्तिस्र इन्वति त्रिभिर्व्रतैरभि नो रक्षति त्मना ॥५
बृहत्सुम्नः प्रसवीता निवेशनो जगतः स्थातुरुभयस्य यो वशी ।
स नो देवः सविता शर्म यच्छत्वस्मे क्षयाय त्रिवरूथ मंहसः ॥६
आगन्देव ऋतुभिर्वर्धतु क्षयं दधातु नः सविता सुप्रजामिषम् ।
स नः क्षपाभिरहभिश्च जिन्वतु प्रजावन्तं रयिमस्मे समिन्वतु ॥७ ।४

सवितादेव बलवान् एवं मेधावी हैं। हम उनसे वरण करने योग्य और पूजनीय धन की याचना करते हैं, उस धन को वे हविर्दान करने वाले यजमान को अपनी इच्छा से प्रदान करें ॥ १ ॥ आकाश तथा सभी लोकों को धारण करने वाले प्राणियों को प्रकाश और वर्षा आदि द्वारा पालन करने वाले मेधावी सवितादेव सुवर्ण कवच को धारण करते हुए अपने तेज से संसार को भली प्रकार परिपूर्ण करते और प्रशंसा के योग्य श्रेष्ठ सुख प्रकट करते हैं ॥ २ ॥ वे सवितादेव अपने तेज से आकाश और पृथिवी को परिपूर्ण करते हुए अपने उत्तम कार्यों द्वारा प्रशंसा को प्राप्त करते हैं। वे नित्य-प्रति संसार को कार्य की ओर प्रेरित करते तथा सृष्टि के निर्माण-कार्य के लिए भुजा फैलाते हैं ॥ ३ ॥ वे सवितादेव अहिंसा-भावना सहित लोकों को प्रकाशित करते हैं और संकल्पों का पालन करते हैं। वे सब लोकों में रहने वाले प्राणियों की रक्षा के लिए अपनी भुजा फैलाते हैं। व्रतों को धारण करने वाले हैं और इस विशाल संसार के स्वामी हैं ॥ ४ ॥ अपनी महिमा द्वारा सवितादेव तीनों अन्तरिक्षों को व्याप्त करते हैं। वे लोकत्रय में भी व्याप्त हैं। वे प्रकाशमान् सवितादेव अग्निवायु और आदित्य को तथा तीनों आकाशों और तीनों पृथिवियों को व्याप्त करते हैं। वे तीनों व्रतों द्वारा हमारी कृपा-पूर्वक रक्षा करें ॥ ५ ॥ जो कर्मों को निर्धारित करते हैं, जिनके पास महान् ऐश्वर्य है, जो सबके जानने योग्य तथा सब प्राणियों को वश में रखने वाले हैं,

वे सवितादेव हमारे पापों को नष्ट करें और तीनों लोकों में स्थित महान् सुख के प्रदान करने वाले हों ॥ ६ ॥ वे प्रकाशमान् सवितादेव ऋतुओं द्वारा संसार का पालन करें, हमारे ऐश्वर्य को बढ़ावें, हमको सन्तानयुक्त धन प्रदान करें। वे दिन में तथा रात्रि में भी हम पर स्नेह रखें। वे हमको पुत्र-पौत्रादि से युक्त ऐश्वर्य प्रदान करने वाले हों ॥ ७ ॥ [४]

५४ सूक्त

(ऋषि—वामदेवः । देवता—सविता । छन्दः—त्रिष्टुप्)

अभूद्देव सविता वन्द्यो नु न इदानीमह्न उपवाच्यो नृभिः ।
वि यो रत्ना भजति मानवेभ्यः श्रेष्ठं नो अत्र द्रविणं यथा दधत् ॥१
देवेभ्यो हि प्रथमं यज्ञियेभ्योऽमृतत्वं सुवसि भागमुत्तमम् ।
आदिद्दामानं सवितर्व्यूर्णुषेऽनूचीना जीविता मानुषेभ्यः ॥२
अचित्ती यच्चकृमा दैव्ये जने दीनैर्दक्षैः प्रभूती पूरुषत्वता ।
देवेषु च सवितर्मानुषेषु च त्वं नो अत्र सुवतादनागसः ॥३
न प्रमिये सवितुर्दैव्यस्य तद्यथा विश्वं भुवनं धारयिष्यति ।
यत्पृथिव्या वरिमन्ना स्वङ्गुरिर्वर्ष्मन्दिवः सुवति सत्यमस्य तत् ॥४
इन्द्रज्येष्ठान्बृहद्भ्यः पर्वतेभ्यः क्षयाँ एभ्यः सुवसि पस्त्यावतः ।
यथायथा पतयन्तो वियेमिर एवैव तस्थुः सवितः सवाय ते ॥५
ये ते त्रिरहन्त्सवितः सवासो दिवेदिवे सौभगमासुवन्ति ।
इन्द्रो द्यावापृथिवी सिन्धुरद्भिरादित्यैर्नो अदितिः शर्म यंसत् ॥६ ।५

सवितादेव प्रकट हो गए। हम शीघ्र ही उनको नमस्कार करेंगे। तीसरे सवन में होताओं द्वारा उनकी स्तुति की जाय। जो मनुष्यों को रत्नादि धन प्रदान करते हैं, वे इस यज्ञ में हमारे लिए उत्तम धन प्रदाता हों ॥ १ ॥ तुम पहले यज्ञ में श्रेष्ठ साधन रूप अमरत्व सोम के श्रेष्ठ भाग को प्रकट करो। हे सवितादेव ! तुम हविदाता यजमान को प्रकाश से युक्त करो और पिता, पुत्र-पौत्रादि के क्रम से मनुष्यों को दीर्घ आयु प्रदान करो ॥ २ ॥ हे सवितादेव ! अज्ञानवश अथवा धन के मद में प्रमादी होकर या बल और

कुटुम्ब के अहङ्कार से हमने तुम्हारा या अन्य देवताओं और विद्वान् मनुष्यों का कोई अपराध किया हो तो तुम हमको इस यज्ञ में उसके पाप से मुक्त करो ॥ ३ ॥ वे सवितादेव संसार के धारण करने वाले हैं। उनके सभी कर्म अहिंसनीय हैं। वे भूमण्डल तथा आकाश को विस्तृत होने के निमित्त प्रेरित करते हैं। उनका यह कर्म किसी के द्वारा नष्ट नहीं किया जा सकता ॥ ४ ॥ हे सवितादेव ! महान् ऐश्वर्यशाली इन्द्र हममें पूजित होते हैं। तुम हमको पर्वतों से भी अधिक उन्नत करो। इन सब यजमानों को घरों से युक्त निवास-स्थान दो। तुम अपने द्वारा नियत सभी गमनागमन कालों को नियमित करो ॥ ५ ॥ हे सवितादेव ! तुम्हारी प्रीति से जो यजमान तीनों सवनों में तुम्हारे निमित्त शोभनीय सोम को सिद्ध करते हैं, उन यजमानों को आकाश पृथिवी महान एवं गम्भीर सिन्धु, देवता और आदित्यों के साथ अदिति श्रेष्ठ सुख प्रदान करें और हमको भी सुखी बनावें ॥ ६ ॥ [५]

५५ सूक्त

(ऋषि—वामदेवः। देवता—विश्वेदेवाः। छन्द—त्रिष्टुप्, गायत्री)

को वस्त्राता वसवः को वरूता द्यावाभूमी अदिते त्रासीथां नः।
सहीयसो वरुण मित्र मर्तात्को वोऽध्वरे वरिवो धाति देवाः ॥१
प्र ये धामानि पूर्व्याण्यर्चान्वि यदुच्छान्वियोतारो अमूराः।
विधातारो वि ते दधुरजस्रा ऋतधीतयो रुरुचन्त दस्माः ॥२
प्र पस्त्यामदितिं सिन्धुमर्कैः स्वस्तिमीळे सख्याय देवीम्।
उभे यथा नो अहनी निपात उषासानक्ता करतामदब्धे ॥३
व्यर्यमा वरुणश्चेति पन्थामिषस्पतिः सुवितं गातुमग्निः।
इन्द्राविष्णू नृवदु षु स्तवाना शर्म नो यन्तममवद्वरूथम् ॥४
आ पर्वतस्य मरुतामवांसि देवस्य त्रातुरव्रि भगस्य।
पात्पतिर्जन्यादंहसो नो मित्रो मित्रियादुत न उरुष्येत् ॥५ ।६

हे वसुओ ! तुममें कौन दुःखों से छुड़ाने वाला है ? कौन रक्षा करने वाला है ? हे आकाश-पृथिवी, तुम कभी खण्ड होने योग्य नहीं हो। तुम

हमारी रक्षा करो। हे मित्रावरुण ! हमारे रक्षक बनो। हे देवताओ ! तुममें से कौनसा देवता यज्ञ में धन प्रदान करने वाला है ॥ १ ॥ जो देवगण स्तुति करने वालों को प्राचीन स्थान देते हैं, जो दुःखों को हटाते हैं, जो ज्ञानी और अँधेरे को नष्ट करने वाले हैं, वही देवता मनुष्यों के कर्मों के विधायक एवं कामनाओं को परिपूर्ण करने वाले हैं। वे सत्य कर्मों से युक्त एवं सुन्दर और सुशोभित हैं ॥ २ ॥ सबके लिए स्नेह देने वाली माता अदिति की हम सुख एवं कल्याण प्राप्ति के लिए स्तुति करते हैं जिससे आकाश और पृथिवी दोनों ही हमारी रक्षा करें। दिवस, रात्रि और उषा हमारी कामनाओं का सम्पादन करने वाली हों ॥ ३ ॥ अर्यमा और वरुण उचित मार्ग दिखाते हैं। हविरन्न के स्वामी अग्निदेव ने कल्याणकारी यज्ञमार्ग को दिखाया है। इन्द्र और विष्णु सुशोभित हुए हमारे द्वारा पूजित होने पर सन्तान, बल और रमणीय धनयुक्त सुख प्रदान करें ॥ ४ ॥ इन्द्र के मित्र मरुद्गण, पर्वत और भगदेवता से हम रक्षा की याचना करते हैं। वरुणदेव हमको पाप से बचावें और मित्र देवता हमारे सखा होते हुए हमारा पालन करें ॥ ५ ॥　　[६]

नू रोदसी अहिना बुध्न्येन स्तुवीत देवी अप्येभिरिष्टैः।
समुद्रं न संचरणे सनिष्यवो घर्मस्वरसो नद्यो अप व्रन् ॥६
देवैर्नो देव्यदितिर्नि पातु देवस्त्राता त्रायतामप्रयुच्छन्।
नहि मित्रस्य वरुणस्य धासिमर्हामसि प्रमियं सान्वग्नेः ॥७
अग्निरीशे वसव्यस्याग्निर्महः सौभगस्य तान्यस्मभ्यं रासते ॥८
उषो मघोन्या वह सूनृते वार्या पुरु। अस्मभ्यं वाजिनीवति ॥९
तत्सु नः सविता भगो वरुणो मित्रो अर्यमा।
इन्द्रो न राधसा गमत् ॥१० ॥७

हे आकाश-पृथिवी रूप देवियो ! जैसे धन की कामना वाला मनुष्य समुद्र-यात्रा में जाने के लिए समुद्र का स्तवन करता है, वैसे ही हम भी अपने इच्छित कार्य के लिए तुम दोनों की स्तुति करते हैं ॥ ६ ॥ देवमाता अदिति अन्य देवताओं के साथ हमारी रक्षा करें। दुःखों से छुड़ाने वाले इन्द्र महारे रक्षक हों। मित्र, वरुण और अग्नि से सोम रूप अन्न को हम रोक नहीं

सकते, बल्कि यज्ञानुष्ठानों द्वारा इन्हें प्रबद्ध कर सकते हैं ॥ ७ ॥ अग्निदेव धन और महान् सौभाग्य के स्वामी हैं। इसलिए वे हमको श्रेष्ठ धन और सौभाग्य से सम्पन्न करें ॥ ८ ॥ हे सत्य वाणी रूपिणी, धन और अन्न की स्वामिनी उषा देवी! हमको अत्यन्त शोभायुक्त धन प्रदान करो ॥ ९ ॥ जिस धन सहित सविता, भग, वरुण, मित्र, अर्यमा और इन्द्र यज्ञ-स्थान में आते हैं, वे अपने उस धन को हमारे लिए प्रदान करें ॥ १० ॥ [७]

५६ सूक्त

(ऋषि—वामदेवः । देवता—द्यावापृथिव्यौ । छन्द—त्रिष्टुप्, गायत्री)

मही द्यावापृथिवी इह ज्येष्ठे रुचा भवतां शुचयद्भिरर्कैः ।
यत्सीं वरिष्ठे बृहती विमिन्वन्रुवद्धोक्षा पप्रथानेभिरेवैः ॥१
देवी देवेभिर्यजते यजत्रैरमिनती तस्थतुरुक्षमाणे ।
ऋतावरी अद्रुहा देवपुत्रे यज्ञस्यनेत्री शुचयद्भिरर्कैः ॥२
स इत्स्वपा भुवनेष्वास य इमे द्यावापृथिवी जजान ॥
उर्वी गभीरे रजसी सुमेके अवंशे धीरः शच्या समैरत् ॥३
नू रोदसी बृहद्भिर्नो वरूथैः पत्नीवद्भिरिषयन्ती सजोषाः ।
उरूची विश्वे यजते निपातं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥४
प्र वां महि द्यवी अभ्युपस्तुतिं भरामहे । शुची उप प्रशस्तये ॥५
पुनाने तन्वा मिथः स्वेन दक्षेण राजथः । ऊह्याथे सनादृतम् ॥६
मही मित्रस्य साधथस्तरन्ती पिप्रती ऋतम् ।
परि यज्ञं नि षेदथुः ॥६ ।८

सुश्रेष्ठ, महत्ववती आकाश-पृथिवी इस यज्ञ में शोभन स्तोत्र और सोम रस से परिपूर्ण होकर प्रकाश से युक्त हों। इस कार्य के निमित्त सिंचन कर्म में समर्थ पर्जन्य विस्तृत और महत्ववती आकाश-पृथिवी की स्थापना करते हुए मरुद्गण के साथ विशेष शब्द करते हैं ॥ १ ॥ यज्ञ के योग्य,

कामनाओं के वर्षक, हिंसा से शून्य, द्रोह से शून्य, सत्य से युक्त, देवताओं के अभिभूनकर्त्ता, यज्ञ-सम्पादक आकाश पृथिवी रूप दोनों देव अन्य देवताओं से सुसंगत हो हविरन्नों से परिपूर्ण हों ॥ २ ॥ जिन्होंने इस आकाश-पृथिवी को बनाया, जिन्होंने इस विस्तृत, अविचलित, सुन्दर रूप वाली, आधार से शून्य आकाश पृथिवी को समान रूप से सुन्दर ढङ्ग से चला रहा है, वे इस समस्त लोकों के मध्य में शोभा पाने वाले हैं ॥ ३ ॥ हे आकाश-पृथिवी ! तुम दोनों ही हमको अन्न प्रदान करने की कामना करती हो तथा परस्पर सुसंगत हो। तुम व्याप्त, विस्तृत और यज्ञ के योग्य होती हुई हमको गृहिणीयुक्त घर प्रदान करो और हमारी रक्षा करो। हम अपने श्रेष्ठ कर्मों द्वारा रथयुत सेवकों को प्राप्त करें ॥ ४ ॥ हे आकाश-पृथिवी ! तुम कान्तिमती हो। हम तुम्हारे निमित्त इस महान् स्तोत्र को प्रस्तुत करते हैं। तुम दोनों ही पवित्र हो। हम तुम्हारी स्तुति के लिए तुम्हारे पास आते हैं ॥ ५ ॥ हे देवियो ! तुम दोनों अपने तेज और जल से परस्पर एक दूसरी को पवित्र करती हु सुशोभित होओ और सदा ही यज्ञ को वहन करने वाली बनो ॥ ५ ॥ हे आकाश-पृथिवी ! तुम महत्ववती हो। तुम मित्र रूप स्तुति करने वाले की सहायक बनो। तुम अन्नादि धनों को धारण करती हुई, यज्ञ-स्थान की परिक्रमा करती हुई विराजमान होओ ॥ ७ ॥ [७

५७ सूक्त

(ऋषि—वामदेवः । देवता—क्षेत्रपतिः आदि । छन्द—अनुष्टुप्, त्रिष्टुप् उष्णिक्

क्षेत्रस्य पतिना वयं हितेनेव जयामसि ।
गामश्वं पोषयित्न्वा स नो मृळातीदृशे ॥१
क्षेत्रस्य पते मधुमन्तमूर्मिं धेनुरिव पयो अस्मासु धुक्ष्व ।
मधुश्चुतं घृतमिव सुपूतमृतस्य नः पतयो मळयन्तु ॥२
मधुमतीरोषधीर्द्याव आपो मधुमन्नो भवत्वन्तरिक्षम् ।
क्षेत्रस्य पतिर्मधुमान्नो अस्त्वरिष्यन्तो अन्वेनं चरेम ॥३
शुनं वाहाः शुनं नरः शुनं कृषतु लाङ्गलम् ।

शुनं वरत्रा बध्यन्तां शुनमष्ट्रामुदिङ्गय ॥ ४
शुनासीराविमां वाचं जुषेथां यद्दिवि चक्रथुः पयः ।
तेनेमामुप सिञ्चतम् ॥५

अर्वाची सुभगे भव सीते वन्दामहे त्वा ।
यथा नः सुभगाससि यथा नः सुफलाससि ॥ ६
इन्द्रः सीतां न गृह्णातु तां पूषानु यच्छतु ।
सा नः पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरां समाम् ॥ ७
शुनं नः फाला वि कृपन्तु भूमिं शुनं कीनाशा अभियन्तु वाहैः ।
शुनं पर्जन्यो मधुना पयोभिः शुनासीरा शुनमस्मासु धत्तम् ॥८ ।६

बन्धु के समान क्षेत्रपति के साथ हम यजमानगण क्षेत्र को जीतेंगे । वे क्षेत्रपति हमारी गौओं और घोड़ों को पुष्ट करें । वे हमको देने योग्य धन देकर हमारा कल्याण करें ॥ १ ॥ हे क्षेत्रपते ! जैसे गौ दूध देती है, वैसे ही तुम मीठा, शुद्ध, घृत के समान सुस्वादु जल हमको दो । तुम जलों के स्वामी हमको हर प्रकार से सुखी बनाओ ॥ २ ॥ ओषधियाँ हमारे लिए मधुर गुण वाली हों, पृथिवी अन्नों से युक्त हो, नदियाँ मीठे जल वाली हों । अन्त-रिक्ष मधुर जलवर्षक हो । क्षेत्रपति मधुर अन्न से युक्त हों । हम किसी की हिंसा न करते हुए उनके अनुकूल रहें ॥ ३ ॥ हल चलाने वाले पशु सुखी हों । मनुष्य भी सुखपूर्वक हल चलायें । हल भी सुख से खेत को खोदें । रस्सियाँ सुख से पशुओं को बाँधें । चाबुक को भी सुख पूर्वक चलाया जावे ॥ ४ ॥ हे अन्नपति और स्वामिन् ! तुम दोनों ही हमारी स्तुतियों को सुनो । तुमने आकाश में जिस जल की रचना की है, उसके द्वारा ही इस पृथिवी को सींचो ॥ ५ ॥ हे सीते ! तुम सौभाग्यवती हो । तुम पृथिवी के नीचे जाने वाली हो । तुम्हारे गुणों की हम प्रशंसा करते हैं, क्योंकि तुम सुन्दर सौभाग्य को प्रदान करती हो । सुन्दर फल तुम देने में समर्थ हो (सीता हल के अग्र भाग अर्थात् फाली को कहते हैं) ॥ ६ ॥ इन्द्रदेव सीता को ग्रहण करें । पूषा उसे भले प्रकार

पकड़ें, जिससे पृथिवी जल और अन्न से सम्पन्न होकर उत्तरो
प्राप्त हो ॥ ७ ॥ वह हल की फाली सुख पूर्वक भूमि को खो
सुख पूर्वक बैलों को चलावें। मेघ मधुर जल की वृष्टि करता
जल से परिपूर्ण करे। हे अन्न और क्षेत्र के अधिपतियो
करो ॥ ८ ॥

५८ सूक्त

(ऋषि—वामदेवः देवता—अग्निः सूर्यो वाऽपो वा गावो
छन्दः—त्रिष्टुप्, पंक्तिः, अनुष्टुप्, उष्णिक्)

समुद्रादूर्मिर्मधुमाँ उदारदुपांशुना सममृतत्वमानट् ।
घृतस्य नाम गुह्यं यदस्ति जिह्वा देवानाममृतस्य नाभिः ।
वयं नाम प्र ब्रवामा घृतस्यास्मिन्यज्ञे धारयामा नमोभिः ।
उप ब्रह्मा शृणवच्छस्यमानं चतुः शृङ्गोऽवमीद्गौर एतत्
चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्यां आ विवेश
त्रिधा हितं पणिभिर्गुह्यमानं गवि देवासो घृतमन्वविन्दन्
इन्द्रः एकं सूर्य एकं जजान वेनादेकं स्वधया निष्टतक्षुः ॥४
एता अर्षन्ति हृद्यात्समुद्राच्छतव्रजा रिपुणा नावचक्षे ।
घृतस्य धारा अभि चाकशीमि हिरण्ययो वेतसो मध्य आस

समुद्र से माधुर्यमयी किरणें आविर्भूत हुई हैं। मनु
अमृतत्व प्राप्त करते हैं। घृत का जो स्थान
देवताओं की जिह्वा और अमृत का आश्रय रूप है
यजमान घृत की प्रशंसा करते हुए उसे नमस्कार
में ग्रहण करते हैं। ब्रह्मा इस वाक्य को श्रवण करें। चार सीं
समान चारों वेदों का ज्ञाता विद्वान् वेद वाणी का निर्वाह करने
यज्ञात्मक अग्नि के चार सींग, सवन रूप तीन पाद, ब्रह्मोदन
दो शिर तथा छन्द रूप सात हाथ हैं। यह सब कामनाओं के

मन्त्र, कल्प और ब्राह्मण द्वारा तीन प्रकार से बँधे हुए अत्यन्त शब्द करते हैं । ये देवरूप से मरणधर्मा मनुष्यों के बीच विद्यमान हैं ॥ ३ ॥ पणियों ने गौओं के मध्य दुग्ध, दधि और घृत इन तीन पदार्थों को रखा । देवताओं ने उन्हें ढूँढकर प्राप्त किया । इन्द्र ने एक पदार्थ क्षीर को तथा सूर्य ने एक पदार्थ को उत्पन्न किया । देवताओं ने दीप्तिमान अग्नि के पास से अन्न के द्वारा एक पदार्थ घृत को प्राप्त किया था ॥ ४ ॥ अपार गति वाला यह जल अन्तरिक्ष से नीचे गिरता है । शत्रु उसे देखने में समर्थ नहीं है । उस सम्पूर्ण घृतधारा को देखने में हम समर्थ हैं तथा इसके मध्य में हम अग्नि को भी देख सकते हैं ॥ ५ ॥ [१०]

सम्यक्स्रवन्ति सरितो न धेना अन्तर्हृदा मनसा पूयमानाः ।
एते अर्षन्त्यूर्मयो घृतस्य मृगा इव क्षिपणोरीषमाणाः ॥ ६
सिन्धोरिव प्राध्वने शूघनासो वातप्रमियः पतयन्ति यह्वाः ।
घृतस्य धारा अरुषो न वाजी काष्ठा भिन्दन्नूर्मिभिः पिन्वमानः ॥७
अभि प्रवन्त समनेव योषाः कल्याण्यः स्मयमानासो अग्निम् ।
घृतस्य धाराः समिधो नसंत ता जुषाणो हर्यति जातवेदाः ॥८
कन्या इव वहतुमेतवा उ अंज्यंजाना अभि चाकशीमि ।
यत्र सोमः सूयते यत्र यज्ञो घृतस्य धारा अभि तत्पवन्ते ॥९
अभ्यर्षत सुष्टुतिं गव्यमाजिमस्मासु भद्रा द्रविणानि धत्त ।
इमं यज्ञं नयत देवता नो घृतस्य धारा मधुमत्पवन्ते ॥१०
धामन्ते विश्वं भुवनमधि श्रितमन्तः समुद्रे हृद्यंतरायुषि ।
अपामनीके समिथे य आभृतस्तमश्याम मधुमन्तं त ऊर्मिम् ॥११ । ११

स्नेहदायिनी नदी के समान यह घृत धाराऐं अथवा वाणियाँ अन्तःकरण में चित्त द्वारा पवित्र होती हुई बाहर आती हैं । जल की तरङ्गों के समान यह वेग पूर्वक दौड़ती हैं, जैसे व्याध के डर से मृग दौड़ते हैं ॥ ६ ॥ जैसे नदी का जल नीचे स्थान की ओर वेगपूर्वक जाता है, वैसे ही घृत धारा भी वेगपूर्वक निकलती हुई जाती है । यह घृत-राशि

सीमाओं को पार करती हुई तरङ्गित होती हुई बढ़ती है, जैसे स्वाभिमानी अश्व तरङ्ग में बढ़ता जाता है ॥ ७ ॥ जैसे श्रेष्ठ आचरणवाली मङ्गलमयी प्रसन्नवदना नारी एक चित्त से पति से ही प्रेम करती है, वैसे ही घृत की धारा अग्नि से प्रेम करती हुई उनकी ओर जाती है और समान रूप से प्रदीप्तियुक्त होकर मिल जाती है। वे मेधावी अग्नि उन घृतधाराओं की सदा इच्छा करते हैं ॥ ८ ॥ जैसे कन्या अपने सुन्दर रूप और वेश-विन्यास को प्रकट करती हुई पति को प्राप्त करने के लिए जाती है, वैसे ही यह घृतधारायें गमन करती हैं। जहाँ सोम-याग होता है वहाँ कान्तिमय एवं उज्ज्वल घृत-धाराऐं अग्नि को प्राप्त होती हैं ॥ ९ ॥ हे ऋत्विको ! गौओं के समीप जाओ और उनकी स्तुति करो। हम यजमानों के निमित्त ये स्तुतियाँ ऐश्वर्य धारण करने वाली हों और हमारे यज्ञ को देवताओं के पास पहुंचावें। घृत धाराऐं माधुर्यमयी होती हुई गमन करें ॥ १० ॥ हे अग्ने ! सम्पूर्ण विश्व तुम्हारे आश्रय पर टिका है। तुम्हारा महान् बल समुद्र में, हृदय में, प्राण में, जलों के मन्थन रूप विद्युत में, जीवन-युद्ध मे प्रकट होता है। हम तुम्हारे उस मधुर रस को प्राप्त करने में समर्थ हों ॥ ११ ॥ [११]

॥ इति चतुर्थं मण्डलं समाप्तम् ॥

॥ अथ पञ्चमं मण्डलम् ॥

३९ सूक्त

(ऋषि—बुधगविष्ठिरावात्रेयौ । देवता—अग्निः । छन्द--त्रिष्टुप् पंक्तिः)

अबोध्यग्निः समिधा जनानां प्रति धेनुमिवायतीमुषासम् ।
यह्वा इव प्र वयामुज्जिहानाः प्र भानवः सिस्रते नाकमच्छ ॥१
अबोधि होता यजथाय देवानूर्ध्वो अग्निः सुमनाः प्रातरस्थात् ।
समिद्धस्य रुशददर्शि पाजो महान्देवस्तमसो निरमोचि ॥२
यदीं गणस्य रशनामजीगः शुचिरङ्क्ते शुचिभिर्गोभिरग्निः ।
आद्दक्षिणा युज्यते वाजयन्त्युत्तानामूर्ध्वो अधयज्जुहूभि. ॥३

अग्निमच्छा देवयतां मनांसि चक्षूंषीव सूर्ये सं चरन्ति ।
यदीं सुवाते उषसा विरूपे श्वेतो वाजी जायते अग्रे अह्लाम् ॥४
जनिष्ट हि जेन्यो अग्रे अह्लां हितो हितेष्वरुषो वनेषु ।
दमेदमे सप्त रत्ना दधानोऽग्निर्होता नि षसादा यजीयान् ॥५
अग्निर्होता न्यसीदद्यजीयानुपस्थे मातुः सुरभा उ लोके ।
युवा कविः पुरुनिःष्ठ ऋतावा धर्ता कृष्टीनामुत मध्य इद्धः ॥६।११

गौ के समान आने वाली उषा के प्रकट होने पर अग्नि अध्वर्युओं के काष्ठ से प्रदीप्त होते हुए बढ़ते हैं । उनकी शिखाएँ ऊँची फैलती हुई विस्तृत वृक्ष के समान अन्तरिक्ष की ओर बढ़ती जाती हैं ॥१॥ होता रूप अग्निदेव देवताओं के यजन के निमित्त बढ़ते हैं । वे उषाकाल में प्रसन्नचित्त से ऊँचे की ओर उठते है । समृद्ध हुए अग्नि का प्रकाशित बल दिखाई देता है । वे महान् देवता अन्धकार से स्वयं मुक्त होते हुए अन्यों को भी मुक्त करते हैं ॥२ जब वे अग्नि विश्व के अन्धकार को दूर करते हैं, तब प्रदीप्त होकर अपनी किरणों द्वारा संसार को प्रकाश देते हैं । फिर वे बढ़ी हुई एवं कामनायुक्त घृत-धाराओं से युक्त होते हुए ऊंचे उठकर उन घृत-धाराओं का पान करते हैं॥३ प्रकाशयुक्त किरणों की कामना करने वाले मनुष्य के नेत्र जैसे सूर्य के दर्शन के लिए बढ़ते हैं, वैसे यजमानों के हृदय अग्नि के सामने बढ़ते हैं । जब विभिन्न रूप वाली आकाश पृथिवी उषाकाल में अग्नि को प्रकट करती हैं, तब वे उज्ज्वल वर्ण वाले एवं बलयुक्त अग्नि उत्पन्न होते हैं ॥४॥ प्रादुर्भाव होने के सामर्थ्य से युक्त अग्नि उदयकाल में प्रकट होते हैं । ये दीप्ति से युक्त हुए वनों में अवस्थित रहते हैं । वे सप्त ज्वालायें धारण कर यज्ञ के योग्य होता होकर यज्ञ-स्थान में विराजमान होते हैं ॥५॥ यज्ञ योग्य होता होकर माता पृथिवी की गोद में सुन्दर वेदी पर अग्नि देवता प्रतिष्ठित होते है । वे युवा, विद्वान्, निष्ठावान् जनों के मध्य स्थिर होकर सबका पालन करते हैं ।६। [१२]

प्र णु त्यं विप्रमध्वरेषु साधुमग्निं होतारमीळते नमोभिः ।
आ यस्ततान रोदसी ऋतेन नित्यं मृजन्ति वाजिनं घृतेन ॥७

मार्जाल्यो मृज्यते स्वे दमूनाः कविप्रशस्तो अतिथिः शिवो नः ।
सहस्रशृङ्गो वृषभस्तदोजा विश्वाँ अग्ने सहसा प्रास्यन्यान् ॥८
प्र सद्यो अग्ने अत्येष्यन्यानाविर्यस्मै चारुतमो बभूथ ।
ईळेन्यो वपुष्यो विभावा प्रियो विशामतिथिर्मानुषीणाम् ॥९
तुभ्यं भरन्ति क्षितयो यविष्ठ बलिमग्ने अन्तित ओत दूरात् ।
आ भन्दिष्ठस्य सुमतिं चिकिद्धि बृहत्ते अग्ने महि शर्म भद्रम् ॥१०
आद्य रथं भानुमो भानुमन्तमग्ने तिष्ठ यजतेभिः समन्तम् ।
विद्वान्पथीनामुर्वन्तरिक्षमेह देवान्हविरद्याय वक्षि ॥११
अवोचाम कवये मेध्याय वचो वन्दारु वृषभाय वृष्णे ।
गविष्ठिरो नमसा स्तोममग्नौ दिवीव रुक्ममुरुव्यंचमश्रेत् ॥१२॥१३

जो आकाश पृथिवी को परिपूर्ण करते हैं, उन ज्ञानी, यज्ञ के फल को सिद्ध करने वाले, होता रूप अग्नि का स्तोत्र द्वारा यजमान स्तवन करते हैं। यजमान उन अन्न के स्वामी अग्नि की घृत-सिंचन द्वारा नित्य प्रति पूजा करते हैं ॥७॥ सबको पवित्र करने वाले अग्निदेव अपने स्थान में पूजे जाते हैं। वे ज्ञानी हैं। विद्वजन उनका स्तवन करते हैं। उनको हम अतिथि के समान पूजा करते हुए सुख पाते हैं। उनकी शिखाऐं सीमा रहित हैं। वे विश्वविहित बल वाले एवं कामनाओं की वर्षा से तृप्त करने वाले हैं। हे अग्निदेव! तुम सबको अपनी शक्ति से परिपूर्ण करते हो ॥८॥ हे अग्ने! तुम यज्ञ को प्राप्त करते हुए अत्यन्त सुन्दर रूप से प्रकट होते हो। तुम शीघ्र ही अन्यों को पार कर उनसे बढ़ते और अग्रसर होते हो। तुम स्तुति के पात्र, प्रकाश देने वाले एवं स्वयं प्रकाशमान हो। तुम सभी प्राणियों के लिए पूजनीय तथा अतिथि रूप हो ॥९॥ हे अत्यन्त युवा अग्निदेव! साधकगण पास में तथा दूर से तुम्हारी परिचर्या करते हैं। अधिक स्तुति करने वाले उपासक की स्तुतियों को तुम ग्रहण करते हो। तुम्हारा दिया हुआ सुख सदा स्थिर रहने वाला तथा प्रशंसनीय होता है ॥ १० ॥ हे अग्ने! तुम अत्यन्त प्रकाशमान् हो। तुम सर्वांग सुन्दर रथ पर देवताओं के साथ सवार होओ। तुम विभिन्न मार्गों को जानकर उन्हें अतिक्रमण करने में समर्थ हो तथा देवगण

को हवि ग्रहण करने के निमित्त यज्ञ-स्थान में लाते हो ॥ ११ ॥ हम मेधावी-जन कामनाओं की वर्षा करने वाले, पवित्र अग्नि के लिये स्तुति योग्य श्रेष्ठ स्तोत्र को कहते हैं। स्थिर चित्त वाले ऋषिजन आकाशस्थ गतिमान, प्रकाशमान और विस्तीर्ण सूर्य रूप अग्नि के लिए नमस्कारयुक्त स्तुति करते हैं ॥ १२ ॥ [१३]

२ सूक्त

(ऋषि—कुमार आत्रेयो वृशो । देवता—अग्निः । छन्द–त्रिष्टुप्, पंक्तिः, जगती)

कुमारं माता युवतिः समुब्धं गुहा बिभर्ति न ददाति पित्रे ।
अनीकमस्य न मिनज्जनासः पुरः पश्यन्ति निहितमरतौ ॥१
कमेतं त्वं युवते कुमारं पेषी बिभर्षि महिषी जजान ।
पूर्वीर्हि गर्भः शरदो ववर्धापश्यं जातं यदसूत माता ॥२
हिरण्यदन्तं शुचिवर्णमारात्क्षेत्रादपश्यमायुधा मिमानम् ।
ददानो अस्मा अमृतं विपृक्वत्किं मामनिन्द्राः कृणवन्ननुक्थाः ॥३
क्षेत्रादपश्यं सनुतश्चरन्तं सुमद्यूथं न पुरु शोभमानम् ।
न ता अगृभ्रन्नजनिष्ट हि षः पलिक्नीरिद्युवतयो भवन्ति ॥४
के मे मर्यकं वि यवन्त गोभिर्न येषां गोपा अरणश्चिदास ।
य ईं जगृभुरव ते सृजन्त्वाजाति पश्व उप नश्चिकित्वान् ॥५
वसां राजानं वसतिं जनानामरातयो नि दधुर्मर्त्येषु ।
ब्रह्माण्यत्रेरव तं सृजन्तु निन्दितारो निन्द्यासो भवन्तु ॥६।१४

बालक को जन्म देने वाली माता गर्भ में धारण करती है और उत्पन्न होने पर स्वयं पालती है और उसके पिता को नहीं देती। उस सुरक्षित बालक को द्वेषी जन विनष्ट नहीं कर सकते और उसके अरणि स्थान में स्थित होने पर देखते हैं ॥ १ ॥ हे रमणी ! तुम बालक को गर्भ में धारण करती और फिर उसका पोषण करती हो। तब उस उत्पन्न हुए बालक को सभी जान जाते हैं। वह बालक प्रारम्भिक वर्षों में बढ़ता है। उसी प्रकार

माता रूप अरणि जिस बालक को उत्पन्न करती है, उसे हम देखते हैं ।। २ ।। हमने निकटवर्ती स्थान से सुवर्ण के समान ज्वाला वाले, प्रदीप्त अग्निदेव को देखा । हमने उन्हें सर्वत्र व्याप्त तथा अमरत्व से युक्त स्तोत्र निवेदन किया । जो व्यक्ति इन्द्र को आराध्य नहीं मानते अथवा उनका पूजन नहीं करते, वे हमारा क्या बिगाड़ सकते हैं ? ।। ३ ।। गौओं के झुंड के समान निश्चित भाव से वन में विचरते हुए तथा विभिन्न प्रकार से सुशोभित एवम् प्रकाशमान अग्नि के हमने दर्शन किए । उनकी ज्वालाऐं प्रदीप्त होती हुई युवतियों के बालक जनते-जनते वृद्धा हो जाने के समान ही निर्वीर्य होने लगती हैं, तब हवि रत्न प्राप्त करती हुई वे वृद्धाओं के समान निर्बल ज्वाला भी युवतियों के समान हृष्ट-पुष्ट हो जाती हैं ।। ४ ।। जो सदाचारी पुरुष नहीं होते, वे सम्पत्तियों से हीन होते हैं । जिनमें कोई नायक या स्वामी नहीं है, ये कौन हैं ? कौन मुक्ष राष्ट्रवासी के रक्षक को भूमिहीन कर सकता है ? उसे पकड़ने वाले शत्रु, उसे मुक्त करें । वे अग्नि हमारे पशुओं के रक्षक होते हुए हमारे निकट रहें ।। ५ ।। अग्निदेव सब जीवों के ईश्वर तथा आश्रयदाता हैं । शत्रु लोग मरणधर्माओं में उनको छिपा देते हैं । अत्रि वंशियों की स्तुति उन्हें बन्धन से छुड़ावे । निन्दा करने वालों की निन्दा हो ।।६।।　　[१४]

शुनश्चिच्छेपं निदितं सहस्राद्यूपादमुञ्चो अशमिष्ट हि षः ।
एवास्मदग्ने वि मुमुग्धि पाशान्होतश्चिकित्व इह तू निपद्य ।।७
हृणीयमानो अप हि मदैयेः प्र मे देवानां व्रतपा उवाच ।
इन्द्रो विद्वां अनु हि त्वा चचक्ष तेनाहमग्ने अनुशिष्ट आगाम् ।।८
वि ज्योतिषा बृहता भात्यग्निराविर्विश्वानि कृणुते महित्वा ।
प्रादेवीर्मायाः सहते दुरेवाः शिशीते शृङ्गे रक्षसे विनिक्षे ।।९
उत स्वानासो दिवि षन्त्वग्नेस्तिग्मायुधा रक्षसे हन्तवा उ ।
मदे चिदस्य प्र रुजन्ति भामा न वरन्ते परिबाधो अदेवीः ।।१०
एतं ते स्तोमं तुविजात विप्रो रथं न धीरः स्वपा अतक्षम् ।
यदीदग्ने प्रति त्वं देव हर्याः स्वर्वतीरप एना जयेम ।।११

तुविग्रीवो वृषभो वावृधानोऽशत्र्वर्यः समजाति वेदः ।
इतीममग्निममृता अवोचन्बर्हिष्मते मनवे शर्म यंसद्धविष्मते
मनवे शर्म यंसत् ॥१२॥१५

हे अग्ने ! तुमने शुनःशेप को सहस्र यूप से छुड़ाया, क्योंकि उन्होंने तुम्हारी स्तुति की थी। हे होतारूप अग्निदेव ! तुम मेधावी हो। इस वेदी पर प्रतिष्ठित होओ। हम साधकों को भी बन्धन से छुड़ाने की कृपा करो हे अग्ने ! जब तुम क्रोधित होते हो, तब हमसे दूर चले जाते हो। देवताओं के कार्यों को सिद्ध करने वाले इन्द्र ने मुझे उपदेश दिया था। वे मेधावी हैं, उन्होंने तुम्हें प्रेरण किया था। उनके द्वारा अनुशासित होने वाले हम तुम्हारे समक्ष उपस्थित होते हैं ॥ ८ ॥ वे अग्निदेव अपने महान् तेज द्वारा अत्यन्त प्रकाशमान होते हैं। वे अपनी महानता से ही सब पदार्थों को प्रकट करते हैं। ये अग्निदेव वृद्धि पाकर असुरों की कष्टकर योजना को विनष्ट करते हैं। असुरों का नाश करने के लिए ये अपनी ज्वालाओं को दीप्ति विशिष्ट करते हैं ॥ ९ ॥ अग्नि की शब्दमयी ज्वाला तेज धार वाले हथियार के समान असुरों का नाश करने के लिए आकाश में प्रकट होती है। ये जब पुष्ट होकर विकराल रूप धारण करते हैं, तब उनका क्रोध दुष्टों को सन्तापजनक होता है। दुष्टों की सेनायें उनके किसी कार्य में बाधक नहीं हो सकतीं ॥ १० ॥ हे बहुकर्मा अग्निदेव ! हम तुम्हारी स्तुति करने वाले साधक हैं। जैसे चतुर व्यक्ति रथ को बनाता है, वैसे ही हम तुम्हारे उद्देश्य से स्तोत्र को बनाते हैं। हे अग्ने ! हमारे स्तोत्र को स्वीकार करो जिससे हम विजय प्राप्त कर सकें ॥ ११ ॥ बहुत ज्वालाओं वाले, कामनाओं के वर्षक, प्रवृद्ध अग्निदेव निर्बाध रूप से शत्रुओं के धन को छीन कर देते हैं। इसी कारण देवगण उन्हें अग्नि कहते हैं। वे याज्ञिकों को सुख दें तथा हविदाता यजमान को भी सुख प्रदान करें ॥ १२ ॥ [१५]

३ सूक्त

(ऋषि—वसुश्रुत आत्रेयः । देवता—अग्निः । छन्द—पंक्तिः, त्रिष्टुप्)

त्वमग्ने वरुणो जायसे यत्त्वं मित्रो भवसि यत्समिद्धः ।

त्वे विश्वे सहसस्पुत्र देवास्त्वमिन्द्रो दाशुषे मर्त्याय ॥१
त्वमर्यमा भवसि यत्कनीनां नाम स्वधावन्गुह्यं बिभर्षि ।
अञ्जन्ति मित्रं सुधितं न गोभिर्यद्दम्पती समनसा कृणोषि ॥२
तव श्रिये मरुतो मर्जयन्त रुद्र यत्ते जनिम चारु चित्रम् ।
पदं यद्विष्णोरुपमं निधायि तेन पासि गुह्यं नाम गोनाम् ॥३
तव श्रिया सुदृशो देव देवाः पुरू दधाना अमृतं सपन्त ।
होतारमग्निं मनुषो नि षेदुर्दशस्यन्त उशिजः शंसमायोः ॥४
न त्वद्धोता पूर्वो अग्ने यजीयान्न काव्यैः परो अस्ति स्वधावः ।
विशश्च यस्या अतिथिर्भवासि स यज्ञेन वनवद्देव मर्तान् ॥५
वयमग्ने वनुयाम त्वोता वसूयवो हविषा बुध्यमानाः ।
वयं समर्ये विदथेष्वह्नां वयं राया सहसस्पुत्र मर्तान् ॥६ ॥१६

हे अग्ने ! तुम प्रकट होते ही वरुण के समान होते हो । समृद्ध होकर मित्र के समान होते हो । सब देवता तुम्हारे पद-चिह्नों पर चलते हैं । हे बल के पुत्र अग्निदेव ! तुम हविदाता यजमान के लिए इन्द्र के समान ही पूजनीय हो ॥१ हे अग्ने ! तुम कन्याओं के अर्यमा अर्थात् विधानकर्ता के तुल्य हो । गोपनीय नाम धारण करने वाले हो । तुम जब पति-पत्नी को समान मन वाला बनाते हो, तब वे तुम्हें घृत, दुग्ध द्वारा बन्धु के समान सींचते हैं ॥ २ ॥ हे अग्ने ! मरुद्गण तुम्हारे आश्रय हेतु अन्तरिक्ष का शोधन करते हैं । हे रुद्र रूप ! विष्णु का व्यापक पद तुम्हारे निमित्त अवस्थित हुआ है, उसके द्वारा तुम प्रजाओं के बल का पालन करो ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! इन्द्रादि देवता भी तुम्हारे समृद्ध होने पर ही दर्शनीय होते हैं । वे देवता लोग तुमसे अनन्य स्नेह करते हुए अमृत को प्राप्त करते हैं । फल की कामना करने वाले यजमान के निमित्त ऋत्विग्गण हवियाँ देते हुए होता रूप अग्नि की सेवा करते हैं ॥ ४ ॥ हे अग्ने ! तुम्हारे सिवाय अन्य कोई होता नहीं है । कोई यज्ञ करने वाला भी तुम्हारे समान प्राचीन नहीं है । हे अन्नवान् अग्ने ! भविष्य में तुम्हारे सिवाय कोई अन्य स्तुति का पात्र नहीं होगा । तुम जिसके अतिथि रूप होते हो, वह

ऋत्विक् यज्ञ कर्म द्वारा अपने शत्रुओं का नाश करने में समर्थ होता है ॥ ५ ॥ हे अग्ने ! हम जब तुम्हारा आश्रय प्राप्त कर लेंगे तब शत्रुओं को पीड़ित करेंगे। हम धन की इच्छा करते हैं। हम तुम्हें हविरन्न द्वारा बढ़ाते हैं। हम युद्ध में विजय प्राप्त करें और नित्य प्रति यज्ञ द्वारा बल लाभ करें। हे बल के पुत्र अग्ने ! हम धन तथा सन्तान प्राप्त करें ॥ ६ ॥ [१६]

यो न आगो अभ्येनो भरात्यधीदघमघशंसे दधात ।
जही चिकित्वो अभिशस्तिमेतामग्ने यो नो मर्चयति द्वयेन ॥७
त्वामस्या व्युषि देव पूर्वे दूतं कृण्वाना अयजन्त हव्यैः ।
संस्थे यदग्न ईयसे रयीणां देवो मर्तैर्वसुभिरिध्यमानः ॥८
अव स्पृधि पितरं योधि विद्वान्पुत्रो यस्ते सहसः सून ऊहे ।
कदा चिकित्वो अभि चक्षसे नोऽग्ने कदाँ ऋतचिद्यातयासे ॥९
भूरि नाम वन्दमानो दधाति पिता वसो यदि तज्जोषयासे ।
कुविद्देवस्य सहसा चकानः सुम्नमग्निर्वनते वावृधानः ॥१०
त्वमङ्ग जरितारं यविष्ठ विश्वान्यग्ने दुरिताति पर्षि ।
स्तेना अदृश्रन्रिपवो जनासोऽज्ञातकेता वृजिना अभूवन् ॥११
इमे यामासस्त्वद्रिगभूवन्वसवे वा तदिदागो अवाचि ।
नाहायमग्निरभिशस्तये नो न रीषते वावृधानः परा दात् ॥१२।१७

जो मनुष्य हमारा अपराध करता है या हमारे प्रति पाप व्यवहार करता है, उस पापी मनुष्य के प्रति अग्निदेव पाप-पुण्य के व्यवहार को न देखें। हे अग्ने ! तुम मेधावी हो। जो हमको पाप-कर्म अथवा अपराध द्वारा शुभ कर्मों से रोके, उसे नष्ट कर दो ॥ ७ ॥ हे अग्ने ! प्राचीन यजमान उषा-काल में यज्ञ करते हुए तुम्हें देवदूत बनाते हैं। तुम हवि ग्रहण करने के पश्चात् यजमानों द्वारा प्रवृद्ध होते हुए चलते हो ॥ ८ ॥ हे बल के पुत्र ! तुम सबके पिता समान हो। जो मेधावी पुत्र तुमको हविर्दान करता है तुम उसे सङ्कट से पार करते हुए पाप से हटाते हो। हे अग्ने ! तुम हमको कब

देखोगे और कब श्रेष्ठ मार्ग में प्रेरित करोगे ? ॥ ९ ॥ हे अग्ने ! तुम उत्तम वास देने वाले हो । तुम पालनकर्ता हो । तुम्हारे नाम की स्तुति करने पर दी जाने वाली हवियों को तुम भक्षण करते हो । यजमान उससे पुत्रवान् होता है । यजमान के बहुत हविरन्न के इच्छुक तथा बढ़ने वाले अग्निदेव शक्तिशाली होकर सुख देते हैं ॥ १० ॥ हे अत्यन्त युवा अग्निदेव ! तुम सबके स्वामी हो । तुम स्तुति करने वालों पर कृपा करने के लिए सभी विघ्नों से बचाते हो । चोर और शत्रु रूप मनुष्य सब हमारे द्वारा रोके जाते हैं ॥ ११ ॥ यह स्तोत्र तुम्हारे सामने पहुँचते हैं । हम अपने अपराधों को तुम्हारे सम्मुख निवेदन करते हैं । हमारी स्तुति से प्रवृद्ध हुए अग्निदेव हमको हिंसकों के साथ जाने से बचावें ॥ १२ ॥ [१७]

४ सूक्त

(ऋषि—वसुश्रुत आत्रेयः । देवता—अग्निः । छन्दः—पंक्तिः, त्रिष्टुप्)

त्वामग्ने वसुपतिं वसूनामभि प्र मन्दे अध्वरेषु राजन् ।
त्वया वाजं वाजयन्तो जयेमाभि ष्याम पृत्सुतीर्मर्त्यानाम् ॥१
हव्यवाळग्निरजरः पिता नो विभुर्विभावा सुदृशीको अस्मे ।
सुगार्हपत्याः समिषो दिदीह्यस्मद्र्यक्सं मिमीहि श्रवांसि ॥२
विशां कविं विश्पतिं मानुषीणां शुचिं पावकं घृतपृष्ठमग्निम् ।
नि होतारं विश्वविदं दधिध्वे स देवेषु वनते वार्याणि ॥३
जुषस्वाग्न इळया सजोषा यतमानो रश्मिभिः सूर्यस्य ।
जुषस्व नः समिधं जातवेद आ च देवान्हविरद्याय वक्षि ॥४
जुष्टो दमूना अतिथिर्दुरोण इमं नो यज्ञमुप याहि विद्वान् ।
विश्वा अग्ने अभियुजो विहत्या शत्रूयतामा भरा भोजनानि ॥५ ॥१८

हे अग्निदेव ! तुम धनों के स्वामी हो । इस यज्ञ में हम तुम्हारी स्तुति करते है । हम अन्न की कामना करने वाले हैं । तुम्हारे अनुकूल होने से हमको अन्न का लाभ होगा और हम शत्रु सेना को भगा सकेंगे ॥१॥ हवियों को वहन

करने वाले अग्नि हमारी रक्षा करें। वे हमारे सामने सर्वव्यापक रूप से तथा प्रकाशयुक्त होते हुए श्रेष्ठ दर्शन करने वाले हों। हे अग्ने ! तुम सुन्दर अन्न को प्रकट करो। हमको प्रचुर अन्न प्रदान करो ॥ २ ॥ हे ऋत्विको ! तुम मनुष्यों के ईश्वर, पवित्र, मेधावी तथा मनुष्यों को पवित्र करने वाले, यज्ञ-सम्पादक, सर्वज्ञानी और घृत की कामना वाले अग्नि को धारण करो। वे अग्नि हमारे बीच एकत्रित धन को हमारे लिए समान भाव से बाँटते हैं ॥ ६ ॥ हे अग्ने ! इला से प्रीतिमान हुए तुम सूर्य की किरणों द्वारा क्रियावान् होते हुए स्तुति को ग्रहण करो। हमारी समिधा को ग्रहण करते हुए हविर्भक्षण के निमित्त देवताओं को बुलाओ तथा हवियों के वहन करने वाले होओ ॥ ४ ॥ हे अग्ने ! तुम विद्वान् हो। तुम घर आये हुए 'अतिथि के समान पूजनीय होकर हमारे इस यज्ञ स्थान में आओ। तुम सब शत्रुओं' का नाश करते हुए शत्रुता का व्यवहार करने वाले सब मनुष्यों के धन को छीन लो ॥५॥ [१८]

वधेन दस्युं प्र हि चातयस्व वयः कृण्वानस्तन्वे स्वायै।
पिपर्षि यत्सहसस्पुत्र देवान्त्सो अग्ने पाहि नृतम वाजे अस्मान् ॥६
वयं ते अग्न उक्थैर्विधेम वयं हव्यैः पावक भद्रशोचे।
अस्मे रयिं विश्ववारं समिन्वास्मे विश्वानि द्रविणानि धेहि ॥७
अस्माकमग्ने अध्वरं जुषस्व सहसः सूनो त्रिषधस्थ हव्यम्।
वयं देवेषु सुकृतः स्याम शर्मणा नस्त्रिवरूथेन पाहि ॥८
विश्वानि नो दुर्गहा जातवेदः सिन्धुं न नावा दुरितातिं पर्षि।
अग्ने अत्रिवन्नमसा गृणानोऽस्माकं बोध्यविता तनूनाम् ॥९
यस्त्वा हृदा कीरिणा मन्यमानोऽमर्त्यं मर्त्यो जोहवीमि।
जातवेदो यशो अस्मासु धेहि प्रजाभिरग्ने अमृतत्वमश्याम् ।१०
यस्मै त्वं सुकृते जातवेद उ लोकमग्ने कृणवः स्योनम्।
अश्विनं स पुत्रिणं वीरवन्तं गोमन्तं रयिं नशते स्वस्ति ॥११॥१९

हे अग्ने ! तुम अपने पुत्र स्वरूप यजमान को अन्न देते और शस्त्रों द्वारा असुरों का नाश करते हो। तुम बल के पुत्र हो। तुम जिस कारण देव-

ताओं को बढ़ाते हो, हे श्रेष्ठदेव ! उसी कारण हम साधकों की रणभूमि में रक्षा करो ॥ ६ ॥ हे अग्ने ! हम श्रेष्ठ वचनों द्वारा तुम्हारी स्तुति करेंगे। हे पवित्र करने वाले! हम हविर्दान द्वारा तुम्हारी परिचर्या करेंगे । हे कल्याण-कारी एवम् अत्यन्त तेजसे युक्त अग्निदेव ! तुम हमको सबके वरण करने योग्य ऐश्वर्य प्राप्त कराओ। हमको सब प्रकार के धन प्रदान करो ॥ ७ ॥ हे अग्ने ! हमारे यज्ञ-स्थान में रक्षक-पद को ग्रहण करो । जल, स्थल, पर्वत इन तीन स्थानों में निवास करने वाले तुम हमारे हविरन्न को सेवन करो । हम देव-ताओं के निमित्त श्रेष्ठ कर्मों के करने वाले बनें । तुम हमारी तीनों तापों से रक्षा करो। सुन्दर आवासयुक्त घर देकर हमारा पोषण करो ॥८॥ हे सम्पूर्ण ऐश्वर्यों के स्वामी अग्निदेव ! जैसे मल्लाह नाव द्वारा सबको नदी के पार लगाता है, वैसे ही तुम हमको समस्त बाधाओं से पार लगाओ। तुम अत्रि के समान हमारे स्तोत्र द्वारा नमस्कृत होकर हमारे शरीरों की रक्षा करने वाले बनो ॥ ९ ॥ हे अमर अग्ने ! हम मनुष्य मरणधर्मा है। हम स्तुतियों से परिपूर्ण हृदय द्वारा नमस्कार करते हुए बारम्बार तुम्हारा आह्वान करते हैं। हे ऐश्वर्यों के स्वामिन् ! हमको अन्न और यश प्रदान करो । हे अग्ने ! हम तुम्हारे अविनाशी स्वरूप का ध्यान करते हुए संतानों से युक्त होकर सदा स्थिर मन वाले रहें ॥१०॥ हे ऐश्वर्यों के उत्पन्न करने वाले अग्निदेव ! जिस उत्तम कर्म करने वाले यजमान पर तुम कल्याणमय कृपा करते हो, वह यजमान अश्व, संतान, बल, गौ तथा अक्षय ऐश्वर्य को प्राप्त करता है ॥११॥ [१९]

५ सूक्त

(ऋषि—वसुश्रुत आत्रेयः। देवता—आप्रीम्। छन्द—गायत्री, उष्णिक्।)

सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन । अग्नये जातवेदसे ॥१
नराशंसः सुषूदतीमं यज्ञमदाभ्यः । कविर्हि मधुहस्त्यः ॥२
ईळितो अग्न आ वहेन्द्रं चित्रमिह प्रियम् । सुखै रथेभिरूतये ॥३
ऊर्णम्रदा वि प्रथस्वाभ्य र्का अनूषत। भवा नः शुभ्र सातये ॥४
देवीर्द्वारो वि श्रयध्वं सुप्रायणा न ऊतये। प्रप्र यज्ञं पृणीतन ॥५।२०

हे ऋत्विको ! ऐश्वर्योत्पादक, तेजस्वी एवं प्रकाशमान अग्नि के निमित्त

घृतयुक्त अन्न से यज्ञ करो ॥१॥ सब मनुष्यों में प्रशंसा के योग्य अग्नि हमारे इस यज्ञ को प्रज्ज्वलित करें । वे अग्नि कर्म कुशल, विद्वान् तथा कभी भी पीड़ित न होने वाले हैं ॥ ६ ॥ हे अग्ने ! तुम स्तुति के पात्र हो । तुम इस लोक में हमारी रक्षा के निमित्त अद्भुत एवं सबके प्रिय इन्द्र को सुखकारी रथ द्वारा इस यज्ञ स्थान में ले आओ ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! तुम उनके समान मृगु एवं सुखकारी होते हुए रक्षक बनो । हे शुभ्र ! हम स्तोतागण तुम्हारा स्तवन करते हैं । तुम विविध प्रकार से वृद्धि को प्राप्त होते हुए हमको धनैश्वर्य प्राप्त कराओ ॥ ४ ॥ हे देवियो ! तुम उत्तम गतिवाली, यज्ञ-द्वार की रक्षिका एवं श्रेष्ठ कर्म वाली हो । तुम सब हमारी रक्षा के निमित्त अपने विविध कार्यों द्वारा यज्ञ की परिचर्या करो ॥५॥ [२०]

सुप्रतीके वयोवृधा यह्वी ऋतस्य मातरा । दोषामुषासमीमहे ॥६
वातस्य पत्मन्नीळिता दैव्या होतारा मनुषः । इमं नो यज्ञमा गतम् ॥७
इळा सरस्वती मही तिस्रो देवीर्मयोभुवः । बर्हिः सीदन्त्वस्रिधः ॥८
शिवस्त्वष्टरिहा गहि विभुः पोष उत त्मना । यज्ञेयज्ञे न उदव ॥९
यत्र वेत्थ वनस्पते देवानां गुह्या नामानि । तत्र हव्यानि गामय ॥१०
स्वाहाग्नये वरुणाय स्वाहेन्द्राय मरुद्भ्यः । स्वाहा देवेभ्यो हविः ।११।२१

सुन्दर रूप वाली, अन्नों को बढ़ाने वाली, महान् कर्मों के करने में सामर्थ्यवती जल की निर्मात्री रात्रि और उषा देवियों की हम उत्तम स्तुति द्वारा पूजा करते हैं ॥ ६ ॥ हे अग्नि-आदित्य रूप दो होताओ ! तुम दोनों हमारे द्वारा पूजित हुए वायु-मार्ग से चलते हो । तुम दोनों हमारे इस यज्ञ स्थान को प्राप्त होओ ॥७॥ इला, सरस्वती, मही, तीनों देवियां सुख उत्पन्न करने वाली हों और वे हिंसा आदि कर्मों को न करती हुई, वृद्धिपूर्वक हमारे यज्ञ स्थान में स्थापित हों ॥ ८ ॥ त्वष्टादेव ! तुम व्यापक सामर्थ्य वाले, कल्याण कारी और सर्वपोषक होकर यहाँ आगमन करो और हमारे श्रेष्ठ यज्ञादि कर्मों में उत्तम पद पर प्रतिष्ठित होकर हमारे रक्षक बनो ॥ ९ ॥ हे वनस्पते ! तुम जहाँ कहीं भी हो देवताओं के गुप्त चिह्नों को वुद्धिपूर्वक जानते हो, वहाँ हव्यादि यज्ञ-साधनों को प्राप्त कराओ ॥ १० ॥ यह स्वाहाकारयुक्त हवि

अग्नि और वरुण को दी गई है । यह हवि स्वाहा रूप से मरुद्गण के निमित्त दी गई है । यह स्वाहाकारयुक्त हवि देवताओं को दी गई है ॥११॥ [२१]

६ सूक्त

(ऋषि—वसुश्रुत आत्रेयः । देवता—अग्निः । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

अग्निं तं मन्ये यो वसुरस्तं यं यन्ति धेनवः ।
अस्तमर्वन्त आशवोऽस्तं नित्यासो वाजिन इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥१
सो अग्निर्यो वसुर्गृणे सं यमायन्ति धेनवः ।
समर्वन्तो रघुद्रुवः सं सुजातासः सूरय इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥२
अग्निर्हि वाजिनं विशे ददाति विश्वचर्षणिः ।
अग्नी राये स्वाभुवं स प्रीतो याति वार्यमिषं स्तोतृभ्य आ भर ॥३
आ ते अग्न इधीमहि द्युमन्तं देवाजरम् ।
यद्ध स्या ते पनीयसी समिद्दीदयति द्यवीषं स्तोतृभ्य आ भर ॥४
आ ते अग्न ऋचा हविः शुक्रस्य शोचिषस्पते ।
सुश्चन्द्र दस्म विश्पते हव्यवाट् तुभ्यं हूयत इषं स्तोतृभ्य आ भर ।५।२२

जो उत्तम निवास देने वाले हैं, जो सबको घर के समान आश्रय रूप हैं, जिन्हें गायें द्रुतगामी अश्व तथा प्रतिदिन हवि देने वाले यजमान आहूत करते हैं, उन अग्नि की हम पूजा करते हैं । हे अग्ने ! स्तोताओं के लिए तुम अन्न और कामना योग्य धन प्राप्त कराओ ॥ १ ॥ जो अग्नि निवासदाता के रूप में आहूत होते हैं, जिनके समीप गौएं और शीघ्रगामी अश्व एकत्र होकर आते हैं, जिनके सत्संग के निमित्त विद्वज्जन भी उपस्थित होते हैं, वे देवता अग्नि ही हैं । हे अग्ने ! तुम स्तुति करने वालों को अभिलषित अन्नादि प्राप्त कराओ ॥२॥ सबके कर्मों के देखने वाले अग्नि मनुष्यों को अन्न और सन्तान देते हैं । वे प्रसन्न होकर सबके द्वारा ग्रहण करने योग्य धन प्रदान करने के लिए प्रस्थान करते हैं । हे अग्ने ! स्तुतिकर्त्ता के लिए अभिलषित अन्नादि पदार्थ प्राप्त

कराओ ॥३॥ हे अग्ने ! तुम अजर एवं प्रकाश से पूर्ण हो । हम तुम्हें सभी श्रेष्ठ भावों द्वारा प्रज्ज्वलित करते हैं। तुम्हारा प्रकाश पूजनीय है। वह आकाश में प्रकाशित होता है । हे अग्ने ! स्तुति करने वालों को इच्छित धनादि पदार्थ प्राप्त कराओ ॥४॥ हे अग्ने ! तुम तेज-पुंजों के अधीश्वर हो । तुम शत्रुओं को नष्ट करने वाले, प्रजाओं के पालनकर्त्ता, प्रसन्नताप्रद हवियों के वहन करने वाले तथा प्रकाशमान हो । तुम्हारे निमित्त भक्तों द्वारा हवियाँ दी जाती हैं । हे अग्ने ! तुम स्तुति करने वाले श्रेष्ठ जनों को अभिलषित अन्न धन प्राप्त कराओ ॥५॥ [२२]

प्रो त्ये अग्नयोऽग्निषु विश्वं पुष्यन्ति वार्यम् ।
ते हिन्विरे त इन्विरे त इषण्यन्त्यानुषगिषं स्तोतृभ्य आ भर ॥६
तव त्ये अग्ने अर्चयो महि व्राधन्त वाजिनः ।
ये पत्वभिः शफानां व्रजा भुरन्त गोनामिषं स्तोतृभ्य आ भर ॥७
नवा नो अग्न आ भर स्तोतृभ्यः सुक्षितीरिषः ।
ते स्याम य आनृचुस्त्वादूतासो दमेदम इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥८
उभे सुश्चन्द्र सर्पिषो दर्वी श्रीणीष आसनि ।
उतो न उत्पुपूर्या उक्थेषु शवसस्पत इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥९
एवाँ अग्निमजुर्यमुर्गीर्भिर्यज्ञेभिरानुषक् ।
दधदस्मे सुवीर्यमुत त्यदाश्वश्व्यमिषं स्तोतृभ्य आ भर ॥१०॥ [२३]

यह लौकिक अग्नि गार्हपत्यादि अग्नि में सभी वरण करने योग्य धनों को पुष्ट करते हैं। यह अग्नि प्रीतिपूर्वक सब ओर व्याप्त होते हैं और हविरन्न की कामना करते हैं । हे अग्ने ! स्तुति करने वालों को अभिलषित अन्नादि प्राप्त कराओ ॥६॥ हे अग्ने ! तुम्हारी किरणें अन्नवान् होकर बढ़ें । तुम्हारी किरणें हवन की अभिलाषा करने वाली हों । हे अग्ने ! तुम स्तुति-साधकों के लिए अभिलषित अन्नादि प्राप्त कराओ ॥७॥ हे अग्ने हम तुम्हारी स्तुति करने वाले हैं। तुम हमको अन्नयुक्त नवीन घर प्रदान करो, जिससे हम सभी यज्ञों में पूजा करें और दूत रूप से तुम्हें प्राप्त करें । हे अग्ने ! स्तुति-साधकों को अभिलषित धनादि प्राप्त कराने वाले होओ ॥ ८ ॥ हे अग्ने ! तुम

प्रसन्नता प्रदान करते हो । तुम शत्रुओं को नाश करने के लिए दर्वी:
मुख में रखते हो । तुम बल के रक्षक हो । इस यज्ञ में हमको फल दे
परिपूर्ण करो । हे अग्ने ! स्तुति-साधकों के लिए इच्छित अन्न-धन
कराओ ।।९।। इस प्रकार विद्वान् उत्तम वाणियों द्वारा अग्नि के समक्ष उ
होकर उन्हें प्रतिष्ठित करते हैं । वे अग्नि हम साधकों को सुन्दर सन्तान
द्रुतगति वाले अश्व प्रदान करें । हे अग्ने ! स्तुति वालों को तुम आ
धन प्राप्त कराओ ।।१०।।

७ सूक्त

(ऋषिः—इषः । देवता—अग्निः । छन्द—अनुष्टुप्)

सखायः सं वः सम्यंचमिषं स्तोमं चाग्नये ।
वर्षिष्ठाय क्षितीनामूर्जो नप्त्रे सहस्वते ।।१
कुत्रा चिद्यस्य समृतौ रण्वा नरो नृषदने ।
अर्हन्तश्चिद्यमिन्धते संजनयन्ति जन्तवः ।।२
सं यदिषो वनामहे सं हव्या मानुषाणाम् ।
उत द्युम्नस्य शवस ऋतस्य रश्मिमा ददे ।।३
सः स्मा कृणोति केतुमा नक्तं चिद्दूर आ सते ।
पावको यद्वनस्पतीन्प्र स्मा मिनात्यजरः ।।४
अव स्म यस्य वेषणे स्वेदं पथिषु जुह्वति ।
अभीमह स्वजेन्यं भूमा पृष्ठेव रुरुहुः ।।५।। [८

हे समान भाव वाले मित्रो ! तुम यजमानों के लिए अत्यन्त व
शक्तिशाली, बल के पुत्र अग्नि को, पूजन के योग्य हविरन्न देते हुए
स्तुति करो ।।१।। जिन्हें पाकर ऋत्विग्गण प्रसन्न होते हैं, जिन्हें यज्ञ
पूजते हुए प्रज्ज्वलित करते हैं, जिन्हें सर्वजन मिलकर प्रधान कर्म वाले
हैं, वे अग्नि हैं ।। २ ।। जब हम अग्नि के निमित्त हव्य देते हैं और
हमारे हव्य को भक्षण करते हैं, तब वे प्रकाशमान अग्नि अन्न के
रश्मियों को ग्रहण करते हैं ।।३।। जब अजर और पवित्र अग्नि वनस्पति

भस्म करते हैं, तब वे रात्रि के समय भी अंधकार को दूर करते हुए सब ओर प्रकाश को फैलाते हैं ॥४॥ अग्नि की परिचर्या में सींचे जाने वाले घृत को अध्वर्युगण ज्वालाओं में अवस्थित करते हैं। जैसे पुत्र पिता के अंक को प्राप्त होता है, वैसे ही घृतधारा अग्नि की गोद में गिरती है ॥५॥ [२४]

यं मर्त्यः पुरुस्पृहं विदद्विश्वस्य धायसे ।
प्र स्वादनं पितूनामस्ततातिं चिदायवे ॥६
स हि ष्मा धन्वाक्षितं दाता न दात्या पशुः ।
हिरिश्मश्रुः शुचिदन्नृभुरनिभृष्टतविषिः ॥७
शुचिः ष्म यस्मा अत्रिवत्प्र स्वधितीव रीयते ।
सुषूरसूत माता क्राणा यदानशे भगम् ॥८
आ यस्ते सर्पिरासुतेऽग्ने शमस्ति धायसे ।
ऐषु द्युम्नमुत श्रव आ चित्तं मर्त्येषु धाः ॥९
इति चिन्मन्युमध्रिजस्त्वादातमा पशुं ददे ।
आदग्ने अपृणतोऽत्रिः सासह्याद्दस्यूनिषः सासह्यान्नॄन् ॥११॥ [२५]

अग्निदेव अनेकों द्वारा कामना के योग्य, सबके धारण करने वाले, अन्नों को चखने वाले एवं यजमानों को सुन्दर निवास देने वाले हैं। यजमान उनके गुणों को भले प्रकार जानते हैं ॥ ६ ॥ तृणों को उखाड़ने वाले पशुओं के समान अग्नि जल से रहित तथा तिनके और काठ से परिपूर्ण प्रदेश को पृथक् करते हैं। वे सुवर्ण वर्ण की मूँछों वाले, उज्ज्वल दांतों वाले तथा महान् हैं। उनका बल किसी के सामने भी फीका नहीं पड़ता ॥७॥ जो कुल्हाड़े के समान वृक्षादि को विनष्ट कर देते हैं, जिनके निकट लोग अत्रि के समान जाते हैं, वे अग्नि हैं। वे दीप्तिवान अग्नि हविरन्न को ग्रहण करते तथा संसार का कल्याण करने वाले हैं। माता रूप अरणि ने उन्हीं अग्नि को उत्पन्न किया था ॥८॥ हे अग्ने ! तुम हवि भक्षण करने वाले हो। तुम सबके धारणकर्त्ता हो। हमारी स्तुतियाँ तुमको प्रसन्न करने वाली हों। तुम स्तुति करने वालों को धन, अन्न और हार्दिक स्नेह प्रदान करो ॥९॥ हे अग्ने ! अन्वों द्वारा न

किए गए स्तोत्रों को उच्चारण करने वाले ऋषिगण तुमसे पशु प्राप्त करते हैं। जो अग्नि को हवियाँ नहीं देता उस दुष्ट को अग्नि अपने वश करें तथा अन्य विद्वेषियों को भी वशीभूत करलें ॥१०॥ [२५]

३७ सूक्त

(ऋषि — इष आत्रेयः । देवता — अग्निः । छन्द — त्रिष्टुप्, जगती)

त्वामग्न ऋतायवः समीधिरे प्रत्नं प्रत्नास ऊतये सहस्कृत ।
पुरुश्चन्द्रं यजतं विश्वधायसं दमूनसं गृहपतिं वरेण्यम् ॥१
त्वामग्ने अतिथिं पूर्व्यं विशः शोचिष्केशं गृहपतिं नि षेदिरे ।
बृहत्केतुं पुरुरूपं धनस्पृतं सुशर्माणं स्ववसं जरद्विषम् ॥२
त्वामग्ने मानुषीरीळते विशो होत्राविदं विविचिं रत्नधातमम् ।
गुहा सन्तं सुभग विश्वदर्शतं तुविष्वणसं सुयजं घृतश्रियम् ॥३
त्वामग्ने धर्णसिं विश्वधा वयं गीर्भिर्गृणन्तो नमसोप सेदिम ।
स नो जुषस्व समिधानो अङ्गिरो देवो मर्तस्य यशसा सुदीतिभिः ॥४
त्वमग्ने पुरुरूपो विशेविशे वयो दधासि प्रत्नथा पुरुष्टुत ।
पुरूण्यन्ना सहसा वि राजसि त्विषिः सा ते तित्विषाणस्य नाधृषे ॥५
त्वामग्ने समिधानं यविष्ठ्य देवा दूतं चक्रिरे हव्यवाहनम् ।
उरुज्रयसं घृतयोनिमाहुतं त्वेषं चक्षुर्दधिरे चोदयन्मति ॥६
त्वामग्ने प्रदिव आहुतं घृतैः सुम्नायवः सुषमिधा समीधिरे ।
स वावृधान ओषधीभिरुक्षितो भि ज्रयांसि पार्थिवा वि तिष्ठसे ॥७।२६

हे अग्ने ! तुम प्राचीन हो। तुम बलकारक हो। प्राचीन यज्ञ करने वाले तुम्हारा आश्रय प्राप्त करने के निमित्त तुम्हें भले प्रकार प्रज्वलित करते हैं। तुम अत्यन्त स्नेह देने वाले, यज्ञ के योग्य वरण करने योग्य, अन्नवान गृह स्वामी हो ॥१॥ हे अग्ने ! तुम्हें यजमानों ने गृहपति के रूप से स्थापित किया है। तुम अतिथि के समान पूजनीय हो। तुम दीप्तियुक्त शिखा वाले, प्राचीन, ज्वालामय, धन देने वाले, बहुरूप, सुख देने वाले, मनुष्यों के रक्षक

एवं जीर्ण वृक्षों को भस्म करने वाले हो ॥२॥ हे अग्ने ! तुम शोभन धन के स्वामी हो। मनुष्य तुम्हारी पूजा करते हैं। तुम यज्ञ-कर्म के ज्ञाता, रत्नदान करने वालों में श्रेष्ठ, गुफा में अवस्थित, प्रच्छन्न रहने वाले, सबके लिए दर्शनीय, शब्दयुक्त यज्ञ करने वाले तथा घृत के ग्रहण करने वाले हो ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! तुम सबके धारणकर्त्ता हो। हम बहुत स्तोत्र और नमस्कार द्वारा पूजन करते हुए तुम्हारे समक्ष उपस्थित होते हैं। तुम हमको धन देते हुए प्रसन्न होओ। हे अग्ने ! तुम भले प्रकार प्रज्ज्वलित होते हुए यजमानों की हवियों से प्रीति करने वाले होओ ॥४॥ हे अग्ने ! तुम विभिन्न रूप वाले होकर सभी यजमानों को पहले के समान अन्न देते हो। तुम बहुत बार पूजित हो। तुम अपने बल से ही बहुत अन्नों के अधीश्वर हो। तुम प्रकाश से युक्त हो तथा तुम्हारे प्रकाश को कोई रोक नहीं सकता ॥५॥ हे अग्ने ! तुम अत्यन्त युवा हो। तुम समान रूप से प्रज्ज्वलित होते हो। देवताओं ने तुम्हें हवि वहन करने वाला बनाया। देवताओं तथा मनुष्यों ने अत्यन्त वेगवान अग्नि को दर्शनीय, प्रदीप्त एवं बुद्धि का प्रेरक-मानकर स्थापित किया ॥ ६ ॥ हे अग्ने ! घृताहुति द्वारा सुख के इच्छुक यजमान तुम्हें प्रदीप्त करते हैं। सुन्दर काष्ठों द्वारा तुम्हें बढ़ाते हैं। तुम औषधियों द्वारा सींचे जाकर पृथिवी पर के अन्नों में व्याप्त होते हुए विविध बलयुक्त कर्मों को करते हो ॥७॥ [२६]

॥ तृतीय अष्टक समाप्तम् ॥

चतुर्थ अष्टक

प्रथम अध्याय

६ सूक्त

(ऋषि—गय आत्रेयः । देवता—अग्निः । छन्द—उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती, पंक्ति

त्वामग्ने हविष्मन्तो देवं मर्तास ईळते ।
मन्ये त्वा जातवेदसं स हव्या वक्ष्यानुषक् ॥१
अग्निर्होता दास्वतः क्षयस्य वृक्तबर्हिषः ।
सं यज्ञासश्चरन्ति यं सं वाजासः श्रवस्यवः ॥२
उत स्म यं शिशुं यथा नवं जनिष्टारणी ।
धर्तारं मानुषीणां विशामग्निं स्वध्वरम् ॥३
उत स्म दुर्गृभीयसे पुत्रो न ह्वार्याणाम् ।
पुरू यो दग्धासि वनाग्ने पशुर्न यवसे ॥४
अध स्म यस्यार्चयः सम्यक्संयन्ति धूमिनः ।
यदीमह त्रितो दिव्युप ध्मातेव धमति शिशीते ध्मातरी यथा ॥
तवाहमग्न ऊतिभिर्मित्रस्य च प्रशस्तिभिः ।
द्वेषोयुतो न दुरिता तुर्याम मर्त्यानाम् ॥६
तं नो अग्ने अभी नरो रयिं सहस्व आ भर ।
स क्षेपयत्स पोषयद्भुवद्वाजस्य सातय उतैधि पृत्सु नो वृधे ॥७॥

हे अग्ने ! तुम देवता हो । तुम प्रकाशमान हो । यज्ञ-साधन करने पदार्थों से युक्त हुए मनुष्य तुम्हारा स्तवन करते हैं। तुम जीव मात्र के ज्ञा वाले हो । हम तुम्हारी स्तुति करते हैं । तुम यज्ञ-साधक हवियों के वहन वाले हो ॥ १ ॥ सभी यज्ञ अग्नि का अनुगमन करते हैं, यजमान

यश का सम्पादन करने वाले हव्य जिन अग्नि को प्राप्त होते हैं, वह अग्नि कुश उखाड़ने वाले यजमान के यज्ञ के निमित्त देवताओं को बुलाने वाले बनते हैं ।।२।। भोजनादि को पकाकर मनुष्यों का पोषण करने वाले तथा यज्ञ को सुशोभित करने वाले अग्नि को दो अरणियाँ शिशु के समान उत्पन्न करती हैं ।। ३ ।। हे अग्ने ! तुम टेढ़ी चाल वाले सर्प या अश्व के बालक के समान कठिनाई से धारण किए जाते हो । जैसे घास के ढेर पर छोड़ा हुआ पशु घास को खाता है, वैसे ही वन में छोड़े जाने पर तुम वन को भक्षण करते हो ।। ४ ।। अग्नि की शिखाएं धूम्रयुक्त होती हैं । वे सुन्दर रूप वाली सब ओर व्यापती हैं । सर्वत्र व्याप्त अग्नि अपनी ज्वालाओं को अन्तरिक्ष की ओर उठाते हैं । जैसे कर्मकार भट्टी में अग्नि को बढ़ाते हैं, वैसे ही कर्मकार द्वारा प्रकट किए गए अग्नि के समान अग्निदेव स्वयं अपने को तीक्ष्ण करते हैं ।।५।। हे अग्ने ! तुम सब से मैत्री-भाव रखते हो । स्तुति करने पर तुम्हारे आश्रय द्वारा हम शत्रु-भाव रखने वाले व्यक्तियों के पाप षड़यन्त्रों पर विजय प्राप्त करें । तुम्हारे रक्षा-साधनों के बल पर हम बाहरी और भीतरी शत्रुओं को जीतें ।। ६ ।। हे अग्ने ! तुम हवियों के वहन करने वाले एवं सशक्त हो । तुम हमारे पास प्रसिद्ध धनों को ले आओ । हमारे शत्रुओं को हटाकर हमारा पालन करो । युद्ध में हमारी समृद्धि के साधन उपलब्ध करते हुए हमको शोभन अन्न प्रदान करो ।।७।।   [१]

१० सूक्त

(ऋषि—गय आत्रेयः । देवता—अग्निः । छन्द—अनुष्टुप्, उष्णिक्, बृहती, पंक्तिः)

अग्न ओजिष्ठमा भर द्युम्नमस्मभ्यमध्रिगो ।
प्र नो राया परीणसा रत्सि वाजाय पन्थाम् ।।१
त्वं नो अग्ने अद्भुत क्रत्वा दक्षस्य मंहना ।
त्वे असुर्यं मारुहत्क्राणा मित्रो न यज्ञियः ।।२
त्वं नो अग्न एषां गयं पुष्टिं च वर्धय ।
ये स्तोमेभिः प्र सूरयो नरो मघान्यानशुः ।३

ये अग्ने चन्द्र ते गिरः शुम्भन्त्यश्वराधसः ।
शुष्मेभिः शुष्मणो नरो दिवश्चिद्येषां बृहत्सुकीर्तिर्बोधति त्मना ।४
तव त्ये अग्ने अर्चयो भ्राजन्तो यन्ति धृष्णुया ।
परिज्मानो न विद्युतः स्वानो रथो न वाजयुः ॥५
नू नो अग्न ऊतये सबाधसश्च रातये ।
अस्माकासश्च सूरयो विश्वा आशास्तरीषणि ॥६
त्वं न अग्ने अङ्गिरः स्तुतः स्तवान आ भर ।
होतर्विभ्वासहं रयिं स्तोतृभ्यः स्तवसे च न उतैधि पृत्सु नो वृधे ॥७।२

हे अग्ने हमारे लिए अत्यन्त श्रेष्ठ धन लेकर आओ । तुम्हारी गति कभी भी मन्द नहीं होती । तुम हमको सब जगह उपलब्ध होने वाले धन से परिपूर्ण करो । अन्न प्राप्त कराने के लिए हमारे लिए उत्तम मार्ग बनाओ ॥१॥ हे अग्ने ! तुम सबसे अद्भुत हो । तुम हमारे यज्ञादि श्रेष्ठ कर्मों से प्रसन्न होते हुए हमको श्रेष्ठ धन प्रदान करो । तुम्हारा बल राक्षसों को संहार करने में समर्थ है । तुम आदित्य के समान उत्तम-कर्म को नित्य पूर्ण करते हो ॥२॥ हे अग्ने ! प्रसिद्ध स्तोत्र द्वारा तुम्हारी पूजा करने वाले साधकगण तुम्हारी स्तुति द्वारा उत्तम धन प्राप्त करते हैं । इसलिए हमारे निमित्त भी धन की वृद्धि करते हुए हमारा पोषण करो । हे अग्ने ! हम साधक भी तुम्हारी स्तुति करते हैं ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! तुम सुखदाता हो । जो साधक तुम्हारी स्तुतियों का उच्चारण करते हैं, वे अश्वयुक्त ऐश्वर्य-लाभ करते हैं । वे साधक अत्यन्त शक्तिशाली होकर अपनी शक्ति से शत्रुओं को मारते हैं । उन्हें स्वर्ग से भी अधिक यश प्राप्त होता है । हे अग्ने ! तुमको गय नामक ऋषि ने चैतन्य किया था ॥ ४ ॥ हे अग्ने तुम्हारी चंचल गति वाली ज्वालाएं, सर्वत्र स्थित विद्युत के समान तथा शब्द करते हुए रथ के समान एवं अन्न की कामना से गमन करने वाले मनुष्यों के समान सर्वत्र जाती हैं ॥ ५ ॥ हे अग्ने ! तुम हमारी शीघ्र रक्षा करो । हमको धन देकर हमारे दारिद्रय को दूर करो । हमारे पुत्रादि एवं बांधव तुम्हारी स्तुति करते हुए अपनी कामनाओं को प्राप्त हों ॥ ६ ॥ हे अग्ने ! प्राचीन ऋषियों ने तुम्हारा स्तव किया है

और अथ के ऋषिगण भी तुम्हारा स्तवन करते हैं । जो धन ऐश्वर्यशाली व्यक्तियों को महान् बनाता है, वह धन हमारे लिए प्राप्त कराओ । तुम देवताओं को बुलाने वाले हो । हमको स्तुति करने में समर्थ करो । हम तुम्हारी पूजा करते हैं । तुम हमको समृद्ध बनाओ ॥७॥ [२]

११ सूक्त

(ऋषि–सुतम्भर आत्रेयः । देवता—अग्निः । छन्द—जगती)

जनस्य गोपा अजनिष्ट जागृविरग्निः सुदक्षः सुविताय नव्यसे ।
घृतप्रतीको बृहता दिविस्पृशा द्युमद्वि भाति भरतेभ्यः शुचिः ॥१
यज्ञस्य केतुं प्रथमं पुरोहितमग्निं नरस्त्रिषधस्थे समीधिरे ।
इन्द्रेण देवैः सरथं स बर्हिषि सीदन्नि होता यजथाय सुक्रतुः ॥
असम्मृष्टो जायसे मात्रोः शुचिर्मन्द्रः कविरुदतिष्ठो विवस्वतः ।
घृतेन त्वावर्धयन्नग्न आहुत धूमस्ते केतुरभवद्दिवि श्रितः ॥३
अग्निर्नो यज्ञमुप वेतु साधुयाग्निं नरो वि भरन्ते गृहेगृहे ।
अग्निर्दूतो अभवद्धव्यवाहनोऽग्निं वृणाना वृणते कविक्रतुम् ॥४
तुभ्येदमग्ने मधुमत्तमं वचस्तुभ्यं मनीषा इयमस्तु शं हृदे ।
त्वां गिरः सिन्धुमिवावनीर्महीरा पृणन्ति शवसा वर्धयन्ति च ॥५
त्वामग्ने अङ्गिरसो गुहा हितमन्वविन्दञ्छिश्रियाणं वनेवने ।
स जायसे मथ्यमानः सहो महत्त्वामाहुः सहसस्पुत्रमङ्गिरः ॥६ ।३

बलशाली अग्नि सदा प्रवृद्ध रहते हैं । वे सबकी रक्षा करने वाले हैं, वे जन-कल्याण के निमित्त प्रादुर्भूत हुए हैं । घृत द्वारा प्रज्वलित होने पर वे तेज से युक्त होते हैं तथा ऋत्विकों के लिए पवित्र दीप्ति से प्रकाशमान होते हैं ॥ १ ॥ अग्नि यजमानों द्वारा स्थापित [illegible] । वे यज्ञ के ध्वज रूप हैं । वे इन्द्रादि देवताओं के समान ही प्रभुता-सम्[illegible] ऋत्विकों ने तीन स्थानों में उन्हें स्थापित किया था । वे देवताओं को [illegible]ाले तथा शुभ कर्मों के कर्त्ता है । वे यज्ञ-कर्म के लिए कुश पर स्थापित किए जाते है ॥ २ ॥ हे

अग्ने ! माता रूप दो अरणियों से तुम जन्म लेते हो। तुम विद्वान् एवं पवित्र कर्मा हो। तुम यजमानों द्वारा प्रज्ज्वलित किये जाते हो। तुम्हें प्राचीनकालीन ऋषियों ने भी घृत द्वारा प्रवृद्ध किया था। तुम हवियों के वहन करने वाले हो। अन्तरिक्ष तक जाने वाला तुम्हारा धूम्र ध्वज के समान महत्वशाली है ॥ ३ ॥ यज्ञ-स्थान में मनुष्य अग्नि की स्थापना करते हैं वे सब कार्यों को सिद्ध करने वाले हमारे यज्ञ में पधारें। वे हवियों के वहन करने वाले तथा देवताओं के दूत-स्वरूप हैं। स्तोतागण उन्हें यज्ञ का सम्पादन करने वाले मानते हैं ॥ ४ ॥ हे अग्ने ! यह मधुर स्तोत्र तुम्हारे निमित्त प्रयुक्त है। यह स्तोत्र तुम्हारे हृदय को सुखी करे। जैसे समुद्र को नदियाँ परिपूर्ण करती हैं, वैसे ही हमारी स्तुतियाँ तुम्हें बलवान बनाती हुई परिपूर्ण करती हैं ॥ ५ ॥ हे अग्ने ! तुम गुफा में रहते हुए वन के आश्रय में अवस्थान करते हो। तुम्हें अँगिराओं ने प्रकट किया था। तुम मंथन द्वारा महान बल के सहित प्रकट होते हो, इसी कारण तुम बल के पुत्र कहे जाते हो ॥६॥ [३]

१२ सूक्त

(ऋषि—सुतम्भर आत्रेयः । देवता—अग्निः । छन्द—पंक्तिः, त्रिष्टुप्)

प्राग्नये बृहते यज्ञियाय ऋतस्य वृष्णे असुराय मन्म ।
घृतं न यज्ञ आस्ये सुपूतं गिरं भरे वृषभाय प्रतीचीम् ॥१
ऋतं चिकित्व ऋतमिच्चिकिद्ध्यृतस्य धारा अनु तृन्धि पूर्वीः ।
नाहं यातुं सहसा न द्वयेन ऋतं सपाम्यरुषस्य वृष्णः ॥२
कया नो अग्न ऋतयन्नृतेन भुवो नवेदा उचथस्य नव्यः ।
वेदा मे देव ऋतुपा ऋतूनां नाहं पतिं सनितुरस्य रायः ॥३
के ते अग्ने रिपवे बन्धनासः के पायवः सनिषन्त द्युमन्तः ।
के धासिमग्ने अनृतस्य पान्ति क आसतो वचसः सन्ति गोपाः ॥४
सखायस्ते विषुणा अग्न एते शिवासः सन्तो अशिवा अभूवन् ।
अधूर्षत स्वयमेते वचोभिर्ऋजूयते वृजनानि ब्रुवन्तः ॥५
यस्ते अग्ने नमसा यज्ञमीट्ट ऋतं स पात्यरुषस्य वृष्णः ।

तस्य क्षय: पृथुरा साधुरेतु प्रसर्स्राणस्य नहुषस्य शेष: ॥६ ।४

अग्निदेव अपने सामर्थ्य से अत्यन्त महान् कामनाओं के पूर्ण करने वाले वृष्टि करने में कारणभूत तथा यज्ञ के योग्य हैं । यज्ञ में डाले गए पवित्र घी के समान हमारी स्तुतियाँ भी अग्नि को प्रसन्न करने वाली हों ॥ १ ॥ हे अग्ने ! हमारी स्तुतियों को जानो और इन्हें ग्रहण करो । तुम प्रचुर जल-वर्षा के लिए हमारे अनुकूल होओ । हम यज्ञ में विघ्न उपस्थित करने वाला कोई कार्य नहीं करते और न विधान के विरुद्ध ही कोई कार्य करते हैं । हे अग्ने ! तुम अभीष्टपूरक एवं प्रकाशमान् हो । हम तुम्हारा स्तवन करते हैं ॥ २ ॥ हे अग्ने ! तुम जल वर्षा करने वाले हो, तुम स्तुति के पात्र हो, तुम हमारे किस श्रेष्ठ अनुष्ठान द्वारा हमारी स्तुतियों को जानोगे ? तुम ऋभुओं की रक्षा करने वाले हो । हमको जानने वाले होओ । हम तुम्हारा भजन करते हैं क्या हम अपने पशु आदि धनों के रक्षक अग्निदेव को नहीं जानते ? ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! लोकों की रक्षा करने वाला कौन है ? शत्रुओं को बाँधने वाला कौन है ? प्रकाशमान् एवं प्रदाता कौन है ? असत्य व्यवहार करने वाले से रक्षक कौन हैं ? अर्थात् इसका विवेचन करते हुए शुभाचरण करने वाले की रक्षा करो ॥ ४ ॥ हे अग्ने ! तुम्हारे यह मित्रजन पहले तुम्हारी स्तुति नहीं करते थे, इसलिए दुःख पाते थे । फिर तुम्हारी उपासना करके हृष्ट सुखी हुए । हम सर्वदा सत्य आचरण करने में तत्पर रहते हैं । फिर भी जो व्यक्ति अपने अविवेक से हमको बुरा कहें, वह स्वयं अपने ही वचनों द्वारा विनष्ट हो जाँय ॥ ५ ॥ हे अग्ने ! तुम प्रकाशमान् हो । तुम इच्छाओं की पूर्ति करने वाले हो । जो साधक अन्तःकरण द्वारा तुम्हारे यज्ञ का पालन करता हुआ तुम्हें पूजता है, उसका घर सम्पन्न हो जाता है । जो तुम्हारी भले प्रकार सेवा करता है वह यजमान अभीष्ट सिद्ध करने वाला पुत्र-रत्न प्राप्त करता है ॥ ६ ॥ [४]

१३ सूक्त

(ऋषि—सुतम्भर आत्रेयः । देवता—अग्निः । छन्दः—त्रिष्टुप्)

अर्चन्तस्त्वा हवामहेऽर्चन्तः समिधीमहि । अग्ने अर्चन्त ऊतये ॥१

अग्नेस्तोमं मनामहे सिध्रमद्य दिविस्पृशः। देवस्य द्रविणस्य वः ॥२
अग्निर्जुषत नो गिरो होता यो मानुषेष्वा। स यक्षद्दैव्यं जनम् ॥३
त्वामग्ने सप्रथा असि जुष्टो होता वरेण्यः। त्वया यज्ञं वि तन्वते ॥४
त्वमग्ने वाजसातमं विप्रा वर्धन्ति सुष्टुतम्। स नो रास्व सुवीर्यम् ॥५
अग्ने नेमिरराँ इवा देवाँस्त्वं परिभूरसि। आ राधश्चित्रमृञ्जसे ॥६ ।५

हे अग्ने ! हम तुम्हारा पूजन करते हुए तुम्हें बुलाते हैं तथा स्तुति करते हुए साधक अपनी रक्षा के निमित्त तुम्हें चैतन्य करते हैं ॥ १ ॥ हम धन के इच्छुक होकर आकाश को छूने वाले एवं प्रकाशमान अग्नि की बल प्रदात्री स्तुति का उच्चारण करते हैं ॥ २ ॥ मनुष्यों के मध्य स्थापित हुए जो अग्नि देवताओं को आहूत करते हैं, वे अग्नि हमारे स्तोत्रों को स्वीकार करें। वे अग्नि यज्ञ साधक द्रव्यों के ज्ञाता देवताओं के साथ हमारी स्तुतियों को पहुंचावें ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! तुम यशस्वी और महान् हो तुम स्तुति के पात्र एवं अन्न प्रदान करने वाले हो। स्तुति करने वाले विद्वान् तुम्हें सुन्दर स्तोत्र द्वारा बढ़ाते हैं। हे अग्ने ! तुम हमको श्रेष्ठ पराक्रम के प्रदाता होओ ॥ ५ ॥ हे अग्ने ! जिस प्रकार परिधि चक्र के अरों से सब ओर लगी रहती है, उसी प्रकार तुम देवताओं के पालक हो। तुम हमको सब प्रकार के अद्भुत ऐश्वर्यों को प्रदान करो ॥ ६ ॥　　[५]

१४ सूक्त

(ऋषि—सुतम्भर आत्रेयः। देवता—अग्निः। छन्द—गायत्री)

अग्निं स्तोमेन बोधय समिधानो अमर्त्यम्। हव्या देवेषु नो दधत् ॥१
तमध्वरेष्वीळते देवं मर्ता अमर्त्यम्। यजिष्ठं मानुषे जने ॥२
तं हि शश्वन्त ईळते स्रुचा देवं घृतश्चुता। अग्निं हव्याय वोळ्हवे ॥३
अग्निर्जातो अरोचत घ्नन्दस्यूञ्ज्योतिषा तमः।
　　　　अविन्दद् गा अपः स्वः ॥४

अग्निमीळेन्यं कविं घृतपृष्ठं सपर्यत । वेतु मे शृणवद्धवम् ।।५
अग्निं घृतेन वावृधुः स्तोमेभिर्विश्वचर्षणम् ।
स्वाधीभिर्वचस्युभिः ।।६ ।६

हे मनुष्यो ! अविनाशी गुण वाले अग्नि को स्तोत्र द्वारा चैतन्य करो। प्रज्ज्वलित होने पर वे दिव्य पदार्थों के धारण करने वाले होते हैं। वे हमारे लिए हव्य वहन करते हैं ।। १ । प्रकाशमान्, अविनाशी, मनुष्यों में आराधना करने के योग्य अग्नि को साधकगण यज्ञ स्थान में स्तुति करते हैं ।। २ ।। अनेक स्तुति करने वाले साधक घृतयुक्त स्रुक सहित देवताओं को हवियाँ पहुँचाने के निमित्त प्रकाशमान अग्नि का स्तवन करते हैं ।। ३ ।। अग्नि अरणियों के मन्थन से आविर्भूत होते हैं। वे अपने प्रकाश से अँधेरे को दूर करते हैं तथा यज्ञ में अनिष्ट करने वाले राक्षसों का नाश करते हुए प्रदीप्त होते हैं। किरण, जल और आकाश अग्नि के द्वारा ही प्रकट हुए हैं ।। ४ ।। हे साधको ! उन मेधावी तथा आराधन करने के योग्य अग्नि देव का पूजन करो। वे घृत की आहुति से प्रदीप्त होते हुए ऊँचे उठते हैं। वे अग्नि हमारे स्तुति वचनों को श्रवण करें ।। ५ ।। घृत तथा स्तोत्रों द्वारा ऋत्विग्गण स्तुतियों की कामना करने वाले, सब के द्रष्टा अग्नि को संवर्द्धित करें ।। ६ ।। [६]

१५ सूक्त (दूसरा अनुवाक)

(ऋषि—धरुण आङ्गिरसः । देवता—अग्निः । छन्द—पंक्तिः त्रिष्टुप्)

प्र वेधसे कवये वेद्याय गिरं भरे यशसे पूर्व्याय ।
घृतप्रसत्तो असुरः सुशेवो रायो धर्ता धरुणो वस्वो अग्निः ।।१
ऋतेन ऋतं धरुणं धारयन्त यज्ञस्य शाके परमे व्योमन् ।
दिवो धर्मन्धरुणे सेदुषो नॄञ्जातैरजाताँ अभि ये ननक्षुः ।।२
अंहोयुवस्तन्वस्तन्वते वि वयो महद्दुष्टरं पूर्व्याय ।
स संवतो नवजातस्तुतुर्यात्सिहं न क्रुद्धमभितः परि ष्ठुः ।।३

मातेव यद्भरसे पप्रथानो जनञ्जनं धायसे चक्षसे च ।
वयोवयो जरसे यद्दधानः परि त्मना विषुरूपो जिगासि ॥४
वाजो नु ते शवसस्पात्वन्तमुरुं दोघं धरुणं देव रायः ।
पदं न तायुर्गुहा दधानो महो राये चितयन्नत्रिमस्पः ॥५ ।७

घृत रूप हवि से अग्नि प्रसन्न होते हैं। वे अत्यन्त बलशाली, कल्याण-रूप, धनों के स्वामी, निवासप्रद, हवियों के वहन करने वाले, स्तुतियों के पात्र, उज्ज्वलदर्शी, श्रेष्ठ एवं तेजस्वी हैं। उन अग्निदेव के निमित्त हम स्तोत्र रचते हैं ॥ १ ॥ जो यजमान आकाश के धारण करने वाले, यज्ञ स्थल में स्थापित होने वाले, नेता रूप देवगण को ऋत्विकों द्वारा आहूत करते हैं, वे यजमान यज्ञ के धारण करने वाले सत्य स्वरूप अग्नि को यज्ञस्थान में श्रेष्ठपद पर स्तुति द्वारा स्थापित करते हैं ॥ २ ॥ जो यजमान दैत्यों द्वारा दुष्प्राप्य हव्य अग्नि के लिए देते हैं, वे यजमान पवित्र होते हैं। नवोत्पन्न अग्नि क्रोधित सिंह के समान शत्रुओं को भगावें। जो शत्रु मेरे चारों ओर वर्तमान हैं, वे मुझसे दूर चले जाँय ॥ ३ ॥ अग्नि सर्वत्र प्रसिद्ध है। वे प्राणीमात्र को माता के समान पालन करते हैं। उनकी रक्षा तथा दर्शन के लिए सभी उनकी स्तुति करते हैं। जब वे धारण करने में समर्थ होते हैं तब सब अन्नों को जीर्ण करते हैं। वे हर प्रकार के बल को पुष्ट करते हैं ॥ ४ ॥ हे अग्ने ! तुम प्रकाशमान् हो। कामनाओं की पूर्ति करने वाले तथा धन के धारण करने वाले हविरन्न तुम्हारे बल को पुष्ट करें। जैसे कोई अपहृत धन को छिपाकर उसकी रक्षा करता है, वैसे ही तुम प्रचुर परिमाण में धन प्राप्त कराने के लिए सुन्दर मार्ग दिखाओ ॥ ५ ॥]७]

१६ सूक्त

(ऋषि—पूरुरात्रेयः । देवता—अग्निः । छन्द—त्रिष्टुप्, उष्णिक्, बृहती)

बृहद्वयो हि भानवेऽर्चा देवायाग्नये ।
यं मित्रं न प्रशस्तिभिर्मर्तासो दधिरे पुरः ॥
स हि द्युभिर्जनानां होता दक्षस्य बाह्वोः ।

वि हव्यमग्निरानुषग्भगो न वारमृण्वति ॥३
अस्य स्तोमे मघोनः सख्ये वृद्धशोचिषः ।
विश्वा यस्मिन्तुविष्वणि समर्ये शुष्ममादधुः ॥३
अधा ह्यग्न एषां सुवीर्यस्य मंहना ।
तमिद्यह्वं न रोदसी परि श्रवो बभूवतुः ॥
नू न एहि वार्यमग्ने गृणान आ भर ।
ये वयं ये च सूरयः स्वस्ति धामहे सचोतैधि पृत्सु नो वृधे ॥५॥८

जिन मित्रभूत अग्नि की उत्तम स्तुतियों द्वारा साधकगण, स्तुति करते हैं और उन्हें वेदी में स्थापित करते हैं, उन प्रकाशमान् अग्नि के लिए हवियाँ दी जाती हैं ॥ १ ॥ जो अग्नि अपने भुज-बल के तेज से युक्त है तथा जो देवताओं के लिए हविवहन करते हैं, वे यज्ञ यजमानों के लिये देवताओं को बुलाते हैं ॥ २ ॥ वे साधकों को सूर्य के समान, वरण करने योग्य धनों को प्रदान करते हैं ॥ २ ॥ सभी ऋत्विग् हवि और स्तुतियों के दान द्वारा, शब्द करने वाले अग्नि को भले प्रकार पुष्ट करते हैं, उन्हीं बढ़े हुए तेज वाले ऐश्वर्य सम्पन्न अग्नि की हम स्तुति करते हैं । उन अग्नि के साथ हम सख्य भाव रखते हैं ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! सब के द्वारा कामना किया हुआ धन हम यजमानों को दो । जैसे महान् सूर्य पर पृथिवी और आकाश आश्रित हैं, वैसे ही तुम महान् के आश्रय से हम अन्न और धन प्राप्त करते हैं ॥ ४ ॥ हे अग्ने ! हम यजमान तुम्हारा स्तवन करते हैं । हमारे यज्ञ में तुम शीघ्र ही आगमन करो । हमारे लिये वरण करने योग्य धनों को प्राप्त कराओ । हम यजमान स्तोताओं को तुम युद्ध क्षेत्र में रक्षा साधनों से सम्पन्न करो । हम तुम्हारी स्तुति करते हैं ॥६॥ [८]

१७ सूक्त

(ऋषि—पुरुरात्रेयः । देवता—अग्निः । छन्द—उष्णिक् अनुष्टुप्, बृहती)

आ यज्ञैर्देव मर्त्य इत्था तव्यांसमूतये ।
अग्निं कृते स्वध्वरे पुरुरीळीतावसे ॥१

अस्य हि स्वयशस्तर आसा विधर्मन्मन्यसे ।
तं नाकं चित्रशोचिषं मन्द्रं परो मनीषया ॥२
अस्य वासा उ अर्चिषा य आयुक्त तुजा गिरा ।
दिवो न यस्य रेतसा बृहच्छोचन्त्यर्चयः ॥३
अस्य क्रत्वा विचेतसो दस्मस्य वसु रथ आ ।
अधा विश्वासु हव्योऽग्निर्विक्षु प्र शस्यते ॥४
नू न इद्धि वार्यमासा सचन्त सूरयः ।
ऊर्जो नपादभिष्टये पाहि शग्धि स्वस्तय उतैधि पृत्सु नो वृधे ।५।९

हे देव ! मनुष्यगण रक्षा और ज्ञान के निमित्त उद्यम बल वाले अग्निदेव की स्तुति करते हैं और ऋत्विगण ! अपने तेज से प्रवृद्ध अग्नि को स्तुतियों से सन्तुष्ट करने के लिये यज्ञ में बुलाते हैं ॥ १ ॥ हे धर्म का अनुष्ठान करने वाले स्तोतागण ! तुम्हारा यज्ञ-कार्य श्रेष्ठ है, जिन अग्नि का अद्भुत तेज है, जो स्तुति के योग्य हैं तथा जो सदा दुःखों से दूर रहते हैं, उन अग्नि की तुम अपनी श्रेष्ठ बुद्धि और सुन्दर वचन द्वारा स्तुति करते हो ॥२॥ जो संसार की रक्षा करने वाले बल से परिपूर्ण हैं, जो सूर्य के समान प्रकाशवान् हैं, जिनकी प्रदीप्ति संसार में व्याप्त है, जिन अग्नि की कान्ति संसार में प्रकाशित होती है, उन अग्नि के तेज से ही सूर्य भी प्रकाशमय होते हैं ॥३॥ श्रेष्ठ बुद्धि वाले ऋत्विगण उन तेजस्वी अग्नि का ही पूजन करते हुये रथ-युक्त धन-लाभ करते हैं । यज्ञ के लिए आहूत किये जाने वाले अग्नि आविर्भूत होते ही सब मनुष्यों द्वारा पूजित होते हैं ॥४॥ हे अग्ने ! जिस धन को साधकगण तुम्हारी पूजा करते हुए प्राप्त करते हैं, वह वरणीय धन हमको भी शीघ्र प्रदान करो । हमको कामना किया हुआ अन्न दो । हमारी रक्षा करो । कल्याणकारी सुन्दर पशुओं की हम तुमसे कामना करते हैं । हे अग्ने ! युद्ध भूमि में उपस्थित रहते हुए तुम हमारी रक्षा करो ॥५॥ [९]

१८ सूक्त

(ऋषि–द्वितो आत्रेयः । देवता-अग्निः छन्दः-अनुष्टुप्, उष्णिक् बृहती)

प्रातरग्निः पुरुप्रियो विशः स्तवेतातिथिः ।

विश्वानि यो अमर्त्यो हव्या मर्तेषु रण्यति ॥१
द्विताय मृक्तवाहसे स्वस्य दक्षस्य मंहना ।
इन्दुं स धत्त आनुषक्स्तोता चित्ते अमर्त्य ॥२
तं वो दीर्घायुशोचिषं गिरा हुवे मघोनाम् ।
अरिष्टो येषां रथो व्यश्वदावन्नीयते ॥ ३
चित्रा वा येषु दीधितिरासन्नुक्था पान्ति ये ।
स्तीर्णं बर्हिः स्वर्णरे श्रवांसि दधिरे परि ॥ ४
ये मे पञ्चाशतं ददुरश्वानां सधस्तुति ।
द्युमदग्ने महि श्रवो बृहत्कृधि मघोनां नृवदमृत नृणाम ॥५॥१०

हे अग्ने ! तुम बहुतों के प्रिय हो । यजमानों को धन देने के लिये उनके घरों में जाते हो । इन अग्नि को प्रातः सवन में प्रज्ज्वलित किया जाता है । अमरत्व गुण वाले अग्नि यजमानों में प्रतिष्ठित होकर हविरत्न की इच्छा करते हैं ॥ १ ॥ हे अग्ने ! अत्रि-पुत्र द्वित तुम्हारे लिए पवित्र हवि पहुँचाते हैं । तुम उनको अपने समान बल दो । क्योंकि वे सदैव ही तुम्हारे लिये सोम-रस लेकर उपस्थित होते और तुम्हारी पूजा करते हैं ॥ २॥ हे अग्ने ! तुम अश्व देने वाले, लम्बी ज्वाल वाले तथा तेजस्वी हो । हम अपने सम्पन्न यज-मानों के लिये तुम्हें स्तोत्र द्वारा बुलाते हैं, जिससे उन यजमानों का रथ अहिं-सित होता हुआ रणक्षेत्र में बढ़ता चला जाय ॥ ३ ॥ जो ऋत्विक् अनेक यज्ञ-कार्यों को सम्पन्न करते हैं, जो स्तोत्रों का उच्चारण करते हुए उनकी रक्षा करते हैं (अर्थात् उन्हें भूलते नहीं), उन ऋत्विकों द्वारा यजमानों को स्वर्ग प्राप्त कराने वाले यज्ञ में कुश के आसनों पर श्रेष्ठ हविरत्न स्थापित किया जाता है ॥ ४ ॥ हे अग्ने तुम अविनाशी हो । तुम्हारी स्तुति के पश्चात् जो यजमान मुझ स्तोता को पचास घोड़े दान स्वरूप दे, तुम उस दानी मनुष्य को दासादि से युक्त यशस्वी अन्न-धन दो ॥५॥ [१०]

१९ सूक्त

(ऋषि-वव्रिरात्रेयः । देवता-अग्निः । छन्द-गायत्री, अनुष्टुप्, उष्णिक्, पंक्तिः)

अभ्यवस्थाः प्र जायन्ते प्र वव्रेर्वव्रिश्चिकेत । उपस्थे मातुर्वि चष्टे ॥१

मातेव यद्भरसे पप्रथानो जनञ्जनं धायसे चक्षसे च ।
वयोवयो जरसे यद्दधानः परि त्मना विषुरूपो जिगासि ॥४
वाजो नु ते शवसस्पात्वन्तमुरुं दोघं धरुणं देव रायः ।
पदं न तायुर्गुहा दधानो महो राये चितयन्नत्रिमस्पः ॥५ ।७

घृत रूप हवि से अग्नि प्रसन्न होते हैं। वे अत्यन्त बलशाली, कल्याण-रूप, धनों के स्वामी, निवासप्रद, हवियों के वहन करने वाले, स्तुतियों के पात्र, उज्ज्वलदर्शी, श्रेष्ठ एवं तेजस्वी हैं। उन अग्निदेव के निमित्त हम स्तोत्र रचते हैं ॥ १ ॥ जो यजमान आकाश के धारण करने वाले, यज्ञ स्थल में स्थापित होने वाले, नेता रूप देवगण को ऋत्विकों द्वारा आहूत करते हैं, वे यजमान यज्ञ के धारण करने वाले सत्य स्वरूप अग्नि को यज्ञस्थान में श्रेष्ठपद पर स्तुति द्वारा स्थापित करते हैं ॥ २ ॥ जो यजमान दैत्यों द्वारा दुष्प्राप्य हव्य अग्नि के लिए देते हैं, वे यजमान पवित्र होते हैं। नवोत्पन्न अग्नि क्रोधित सिंह के समान शत्रुओं को भगावें। जो शत्रु मेरे चारों ओर वर्तमान हैं, वे मुझसे दूर चले जाँय ॥ ३ ॥ अग्नि सर्वत्र प्रसिद्ध हैं। वे प्राणीमात्र को माता के समान पालन करते हैं। उनकी रक्षा तथा दर्शन के लिए सभी उनकी स्तुति करते हैं। जब वे धारण करने में समर्थ होते हैं तब सब अन्नों को जीर्ण करते हैं। वे हर प्रकार के बल को पुष्ट करते हैं ॥ ४ ॥ हे अग्ने ! तुम प्रकाशमान् हो। कामनाओं की पूर्ति करने वाले तथा धन के धारण करने वाले हविरन्न तुम्हारे बल को पुष्ट करें। जैसे कोई अपहृत धन को छिपाकर उसकी रक्षा करता है, वैसे ही तुम प्रचुर परिमाण में धन प्राप्त कराने के लिए सुन्दर मार्ग दिखाओ ॥ ५ ॥]७]

१६ सूक्त

(ऋषि—पूरुरात्रेयः । देवता—अग्निः । छन्द—त्रिष्टुप्, उष्णिक्, बृहती)

बृहद्वयो हि भानवेऽर्चा देवायाग्नये ।
यं मित्रं न प्रशस्तिभिर्मर्तासो दधिरे पुरः ॥
स हि द्युभिर्जनानां होता दक्षस्य बाह्वोः ।

वि हव्यमग्निरानुषग्भगो न वारमृण्वति ॥२
अस्य स्तोमे मघोनः सख्ये वृद्धशोचिषः ।
विश्वा यस्मिन्तुविष्वणि समर्ये शुष्ममादधुः ॥३
अधा ह्यग्न एषां सुवीर्यस्य मंहना ।
तमिद्यह्वं न रोदसी परि श्रवो बभूवतुः ॥
नू न एहि वार्यमग्ने गृणान आ भर ।
ये वयं ये च सूरयः स्वस्ति धामहे सचोतैधि पृत्सु नो वृधे ॥५।८

जिन मित्रभूत अग्नि की उत्तम स्तुतियों द्वारा साधकगण, स्तुति करते हैं और उन्हें वेदी में स्थापित करते हैं, उन प्रकाशमान् अग्नि के लिए हवियाँ दी जाती हैं ॥ १ ॥ जो अग्नि अपने भुज-बल के तेज से युक्त हैं तथा जो देवताओं के लिए हविवहन करते हैं, वे यज्ञ यजमानों के लिये देवताओं को बुलाते हैं ॥ २ ॥ वे साधकों को सूर्य के समान, वरण करने योग्य धनों को प्रदान करते हैं ॥ २ ॥ सभी ऋत्विक् हवि और स्तुतियों के दान द्वारा, शब्द करने वाले अग्नि को भले प्रकार पुष्ट करते हैं, उन्हीं बढ़े हुए तेज वाले ऐश्वर्य सम्पन्न अग्नि की हम स्तुति करते हैं । उन अग्नि के साथ हम सख्य भाव रखते हैं ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! सब के द्वारा कामना किया हुआ धन हम यजमानों को दो । जैसे महान् सूर्य पर पृथिवी और आकाश आश्रित हैं, वैसे ही तुम महान् के आश्रय से हम अन्न और धन प्राप्त करते हैं ॥ ४ ॥ हे अग्ने ! हम यजमान तुम्हारा स्तवन करते हैं । हमारे यज्ञ में तुम शीघ्र ही आगमन करो । हमारे लिये वरण करने योग्य धनों को प्राप्त कराओ । हम यजमान स्तोताओं को तुम युद्ध क्षेत्र में रक्षा साधनों से सम्पन्न करो । हम तुम्हारी स्तुति करते हैं ॥६॥

[८]

१७ सूक्त

(ऋषि—पुरुरात्रेयः । देवता—अग्निः । छन्द—उष्णिक् अनुष्टुप्, बृहती)

आ यज्ञैर्देव मर्त्य इत्था तव्यांसमूतये ।
अग्निं कृते स्वध्वरे पुरुरीळीतावसे ॥१

अस्य हि स्वयशस्तर आसा विधर्मन्मन्यसे ।
तं नाकं चित्रशोचिषं मन्द्रं परो मनीषया ॥२
अस्य वासा उ अर्चिषा य आयुक्त तुजा गिरा ।
दिवो न यस्य रेतसा बृहच्छोचन्त्यर्चयः ॥३
अस्य क्रत्वा विचेतसो दस्मस्य वसु रथ आ ।
अधा विश्वासु हव्योऽग्निर्विक्षु प्र शस्यते ॥४
नू न इद्धि वार्यमासा सचन्त सूरयः ।
ऊर्जो नपादभिष्टये पाहि शग्धि स्वस्तय उतैधि पृत्सु नो वृधे ॥५।९

हे देव ! मनुष्यगण रक्षा और ज्ञान के निमित्त उद्यम बल वाले अग्निदेव की स्तुति करते हैं और ऋत्विगण ! अपने तेज से प्रबुद्ध अग्नि को स्तुतियों से सन्तुष्ट करने के लिये यज्ञ में बुलाते हैं ॥ १ ॥ हे धर्म का अनुष्ठान करने वाले स्तोतागण ! तुम्हारा यज्ञ-कार्य श्रेष्ठ है, जिन अग्नि का अद्भुत तेज है, जो स्तुति के योग्य हैं तथा जो सदा दुःखों से दूर रहते हैं, उन अग्नि की तुम अपनी श्रेष्ठ बुद्धि और सुन्दर वचन द्वारा स्तुति करते हो ॥२॥ जो संसार की रक्षा करने वाले बल से परिपूर्ण हैं, जो सूर्य के समान प्रकाशवान् हैं, जिनकी प्रदीप्ति संसार में व्याप्त है, जिन अग्नि की कान्ति संसार में प्रकाशित होती है, उन अग्नि के तेज से ही सूर्य भी प्रकाशमय होते हैं ॥३॥ श्रेष्ठ बुद्धि वाले ऋत्विगण उन तेजस्वी अग्नि का ही पूजन करते हुये रथ-युक्त धन-लाभ करते हैं । यज्ञ के लिए आहूत किये जाने वाले अग्नि आविर्भूत होते ही सब मनुष्यों द्वारा पूजित होते हैं ॥४॥ हे अग्ने ! जिस धन को साधकगण तुम्हारी पूजा करते हुए प्राप्त करते हैं, वह वरणीय धन हमको भी शीघ्र प्रदान करो । हमको कामना किया हुआ अन्न दो । हमारी रक्षा करो । कल्याणकारी सुन्दर पशुओं की हम तुमसे कामना करते हैं। हे अग्ने ! युद्ध भूमि में उपस्थित रहते हुए तुम हमारी रक्षा करो ॥५॥ [९]

१८ सूक्त

(ऋषि–द्वितो आत्रेयः । देवता-अग्निः छन्दः-अनुष्टुप्, उष्णिक् बृहती)

प्रातरग्निः पुरुप्रियो विशः स्तवेतातिथिः ।

विश्वानि यो अमर्त्यो हव्या मर्तेषु रण्यति ॥१
द्विताय मृक्तवाहसे स्वस्य दक्षस्य मंहना ।
इन्दुं स धत्त आनुषक्स्तोता चित्ते अमर्त्य ॥२
तं वो दीर्घायुशोचिषं गिरा हुवे मघोनाम् ।
अरिष्टो येषां रथो व्यश्वदावन्नीयते ॥ ३
चित्रा वा येषु दीधितिरासन्नुक्था पान्ति ये ।
स्तीर्णं बर्हिः स्वर्णरे श्रवांसि दधिरे परि ॥ ४
ये मे पञ्चाशतं ददुरश्वानां सधस्तुति ।
द्युमदग्ने महि श्रवो बृहत्कृधि मघोनां नृवदमृत नृणाम ॥५॥१०

हे अग्ने ! तुम बहुतों के प्रिय हो। यजमानों को धन देने के लिये उनके घरों में जाते हो। इन अग्नि को प्रातः सवन में प्रज्ज्वलित किया जाता है। अमरत्व गुण वाले अग्नि यजमानों में प्रतिष्ठित होकर हविरत्न की इच्छा करते हैं ॥ १ ॥ हे अग्ने ! अत्रि-पुत्र द्वित तुम्हारे लिए पवित्र हवि पहुँचाते हैं। तुम उनको अपने समान बल दो। क्योंकि वे सदैव ही तुम्हारे लिये सोम-रस लेकर उपस्थित होते और तुम्हारी पूजा करते हैं ॥ २॥ हे अग्ने ! तुम अश्व देने वाले, लम्बी ज्वाल वाले तथा तेजस्वी हो। हम अपने सम्पन्न यज-मानों के लिये तुम्हें स्तोत्र द्वारा बुलाते हैं, जिससे उन यजमानों का रथ अहिं-सित होता हुआ रणक्षेत्र में बढ़ता चला जाय ॥ ३ ॥ जो ऋत्विक् अनेक यज्ञ-कार्यों को सम्पन्न करते हैं, जो स्तोत्रों का उच्चारण करते हुए उनकी रक्षा करते हैं (अर्थात् उन्हें भूलते नहीं), उन ऋत्विकों द्वारा यजमानों को स्वर्ग प्राप्त कराने वाले यज्ञ में कुश के आसनों पर श्रेष्ठ हविरत्न स्थापित किया जाता है ॥ ४ ॥ हे अग्ने तुम अविनाशी हो। तुम्हारी स्तुति के पश्चात् जो यजमान मुझ स्तोता को पचास घोड़े दान स्वरूप दे, तुम उस दानी मनुष्य को दासादि से युक्त यशस्वी अन्न-धन दो ॥५॥ [१०]

१६ सूक्त

(ऋषि-वव्रिरात्रेयः। देवता-अग्निः। छन्द-गायत्री, अनुष्टुप्, उष्णिक्, पंक्तिः)

अभ्यवस्थाः प्र जायन्ते प्र वव्रेर्वव्रिश्चिकेत । उपस्थे मातुर्वि चष्टे ॥१

जुहुरे वि चितयन्तोऽनिमिषं नृम्णं पान्ति । आ दृळहां पुरं विविशुः ॥२
आ श्वैत्रेयस्य जन्तवो द्यु मद्वर्धन्त कृष्टयः ।
निष्कग्रीवो बृहदुक्थ एना मध्वा न वाजयुः ॥ ३
प्रियं दुग्धं न काम्यमजामि जाम्योः सचा ।
घर्मो न वाजजठरोऽदब्धः शश्वतो दभः ॥४
क्रीळन्नो रश्म आ भुवः सं भस्मना वायुना वेविदानः ।
ता अस्य सन्धृषजो न तिग्माः सुसंशिता वक्ष्यो वक्षणेस्थाः ॥५॥११

पृथिवी रूप माता के निकट अवस्थित होकर जो अग्नि पदार्थ मात्र को देखते है, वे अग्नि वत्रि ऋषि की संकटमय दशा को जानते हुए उनकी हवियाँ ग्रहण करें और उन पर कृपा करें ॥ १ ॥ हे अग्ने ! जो साधक तुम्हारे प्रभाव को जानकर यज्ञ के लिये तुम्हें बुलाते हैं एवं जो साधक हविरत्न देते हुए स्तुतियों द्वारा तुम्हारे बल को पुष्ट करते हैं, वे शत्रुओं के दुर्गम दुर्गों में निःशङ्क घुस जाते हैं ॥ २ ॥ स्तोत्र रचयिता मेधावीजन, अन्न की कामना करने वाले, कण्ठ में सुवर्ण-रत्नादि के अलंकार धारण करने वाले, जन्म लेने वाले विद्वान् मनुष्य अन्तरिक्ष में स्थित विद्युत रूप अग्नि की शक्ति को स्तोत्र द्वारा बढ़ाते हैं ॥ ३ ॥ दूध-मिश्रित हविरत्न को जठरस्थ करने वाले अग्नि शत्रुओं द्वारा अहिंसित हैं और शत्रुओं की हिंसा करने में समर्थ हैं। आकाश और पृथिवी के सहायक वे अग्नि दूध के समान उज्ज्वल और दोप-रहित रहित हुए हमारी स्तुति श्रवण करें ॥ ४ ॥ हे अग्ने ! तुम प्रदीप्तमय हो । तुम अपने भस्म करने वाले गुण से वन में क्रीड़ा करते हो । तुम वायु के प्रेरण से प्रवृद्ध होकर हमारे सामने प्रतिष्ठित होओ । तुम्हारी जो ज्वालायें शत्रु का नाश करने वाली हैं, वे हम यजमानों के लिये शीतल हों ॥ ५ ॥

२२ सूक्त

(ऋषि–प्रयस्वन्त आत्रेयः । देवता–अग्निः । छन्द–अनुष्टुप्, पंक्तिः)

यमग्ने वाजसातम त्वं चिन्मन्यसे रयिम ।

तं नो गीर्भिः श्रवाय्यं देवत्रा पनया युजम् ॥१
ये अग्ने नेरयन्ति ते वृद्धा उग्रस्य शवसः।
अप द्वेषो अप ह्वरोऽन्यव्रतस्य सश्चिरे ॥२
होतारं त्वा वृणीमहेऽग्ने दक्षस्य साधनम्।
यज्ञेषु पूर्व्यं गिरा प्रयस्वन्तो हवामहे ॥३॥
इत्था यथा त ऊतये सहसावन्दिवेदिवे।
राय ऋताय सुक्रतो गोभिः ष्याम सधमादो वीरैः स्याम
सधमादः ॥४। १२

हे अग्ने ! तुम अत्यन्त अन्न दान करने वाले हो । हमारा दिया हुआ जो हविरन्न तुम्हारे पास है, उसे हमारी स्तुतियों सहित देवताओं के पास ले जाओ ॥ १ ॥ हे अग्ने ! जो व्यक्ति पशु आदि धन से सम्पन्न होकर भी तुम को हवि नहीं देता वह अन्न और बल से विहीन होता है। जो व्यक्ति वेद-विरुद्ध कार्य करता है, वह तुम्हारा विरोधी बन कर तुम्हारे द्वारा विनष्ट हो जाता है ॥ १ ॥ हे अग्ने ! तुम बल का साधन करने वाले तथा देवताओं के बुलाने वाले हो। हम अन्न से सम्पन्न हुये मनुष्य तुम्हारा वरण करते हैं। हम अपने यज्ञ-कर्म में तुम श्रेष्ठ अग्निदेव की स्तोत्रों द्वारा स्तुति करते हैं ॥३॥ हे अग्ने ! तुम शक्तिशाली हो । जिस कार्य द्वारा हम नित्यप्रति तुम्हारा आश्रय प्राप्त करते रहें, वही कार्य करो। हे सुन्दर कर्म वाले अग्निदेव ! जिससे हम यज्ञ कर सकें और धन-लाभ करें, वही कार्य करो । हम गौ तथा वीर पुत्रों को प्राप्त करें, ऐसी कृपा करो ॥४॥ [१२]

२१ सूक्त

(ऋषि—सप्त आत्रेयः। देवता—अग्निः। छन्द—अनुष्टुप्, उष्णिक्, बृहती)

मनुष्वत्त्वा नि धीमहि मनुष्वत्समिधीमहि।
अग्ने मनुष्वदङ्गिरो देवान्देवयते यज ॥१
त्वं हि मानुषे जनेऽग्ने सुप्रीत इध्यसे।
स्रुचस्त्वा यन्त्यानुषक्सुजात सर्पिरासुते ॥२

त्वां विश्वे सजोषसो देवासो दूतमक्रत ।
सपर्यन्तस्त्वा कवे यज्ञेषु देवमीळते ॥३
देवं वो देवयज्ययाग्निमीळीत मर्त्यः ।
समिद्धः शुक्र दीदिह्यृतस्य योनिमासदः ससस्य योनि

हे अग्ने ! हम तुम्हें मनु के समान स्थापित करते हैं । तुम देवताओं की कामना करने वाले मनुष्यों के सम्पन्न करो ॥ १ ॥ हे अग्ने ! तुम स्तोत्रों द्वारा प्रज्ज्वलि के लिए तेजस्वी बनते हो । घृत से युक्त हवियाँ तथा निरन्तर पुष्ट करते हैं ॥ २ ॥ हे अग्निदेव ! तुम सुन्दर का देवताओं ने प्रसन्नता-पूर्वक तुम्हें अपना दूत नियुक्त यज्ञानुष्ठान करने वाले साधक देवताओं का आह्वान करने करते हैं ॥ हे अग्ने ! तुम प्रकाशमान हो । देवताओं के यज्ञ की जाती है । तुम हव्य द्वारा बढ़ कर प्रदीप्तियुक्त होओ स्वर्ण-कामना वाले यज्ञ में तुम प्रतिष्ठित होओ ॥४॥

२० सूक्त

(ऋषि—विश्वसामा आत्रेयः । देवता-अग्निः । छन्द - अनुष्टु

प्र विश्वसामन्नत्रिवदर्चा पावकशोचिषे ।
यो अध्वरेष्वीड्यो होता मन्द्रतमो विशि ॥१
न्यग्निं जातवेदसं दधाता देवमृत्विजम् ।
प्र यज्ञ एत्वानुषगद्या देवव्यचस्तमः ॥२
चिकित्विन्मनसं त्वा देवं मर्तास ऊतये ।
वरेण्यस्य तेऽवस इयानासो अमन्महि ॥३
अग्ने चिकिद्ध्यस्य न इदं वचः सहस्य ।
तं त्वा सुशिप्र दम्पते स्तोमैर्वर्धन्त्यत्रयो गीर्भिः शुम्भ

हे विश्व भर के साम के ज्ञाता ऋषि ! तुम अग्नि के

वाले अग्नि का पूजन करो। वे सब ऋत्विकों द्वारा यज्ञ में [illegible]
वे देवताओं को बुलाने वाले तथा पूजनीय हैं ॥ २ ॥ हे मनुष्यो !
के ज्ञाता तेजस्वी, यज्ञकर्ता अग्नि को वरण करो, [illegible]
प्रिय तथा यज्ञ के साधन रूप हव्य को हम अग्नि के लिए प्रदान [illegible]
हे अग्ने ! तुम तेजस्वी हो। तुम ज्ञान में [illegible] हो। हम [illegible]
याचना के लिये उपस्थित हैं। हम तुम्हें सन्तुष्ट करने के लिए [illegible]
करते हैं ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! तुम बली हो। तुम [illegible]
जानो। तुम सुन्दर ठोड़ी, नासिका से युक्त हो। तुम [illegible]
तुम्हें अत्रि वंशज स्तोत्रों से बढ़ाते और वाणी से [illegible]

२३ सूक्त

(ऋषि—द्युम्नो विश्वचर्षणिः। देवता—अग्निः। [illegible]

अग्ने सहन्तमा भर द्युम्नस्य प्रासहा रयिम्।
विश्वा यश्चर्षणीरभ्यासा वाजेषु सासहत् ॥१
तमग्ने पृतनाषहं रयिं सहस्व आ भर।
त्वं हि सत्यो अद्भुतो दाता वाजस्य गोमतः ॥२
विश्वे हि त्वा सजोषसो जनासो वृक्तबर्हिषः।
होतारं सद्मसु प्रियं व्यन्ति वार्या पुरु ॥३
स हि ष्मा विश्वचर्षणिरभिमाति सहो दधे।
अग्न एषु क्षयेष्वा रेवन्नः शुक्र दीदिहि द्युमत्पावक दीदिहि।

हे अग्ने ! मुझ "द्युम्न" ऋषि को, शत्रुओं को जीतने [illegible]
पुत्र प्रदान करो। वह पुत्र स्तुतियों से पूर्ण होकर रणक्षेत्र में [illegible]
को वशीभूत करे ॥ १ ॥ हे अग्ने ! तुम शक्तिशाली हो। तुम [illegible]
रूप तथा गवादियुक्त धनों के देने वाले हो। तुम ऐसा एक पुत्र [illegible]
सेनाओं को वश में कर सके ॥२॥ हे अग्ने ! तुम देवताओं को [illegible]
वाले तथा सबका कल्याण करने वाले हो। कुश को उखाड़ने [illegible]
प्रीति वाले ऋत्विक् यज्ञ स्थान में तुम्हें, वरण करने योग्य [illegible]